वैदिक और उत्तर वैदिक साहित्य में अश्विनौ-एक देवशास्त्रीय अध्ययन

Ashvins in Vedic & Post Vedic Literature-A Mythological Study.

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

पर्यवेक्षक :

डॉ० सिद्धनाथ शुक्ल

प्रवक्ता, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्त्री :

कु० साधना बेदी

संस्कृत, पालि प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ० प्र०)

1983

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

- ० -

प्राक्कथन

प्रस्तुत अनुसन्धान ग्रन्थ की समाप्ति पर हम एक बार पीछे मुड़कर उस बिन्दु की ओर आकर्षित होते हैं जहां से इस अनुसन्धान का प्रारम्भ हुआ था । सन् १६७८ ई० में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मैंने राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय इलाहाबाद से एल० टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की । तत्पश्चात् चिरकाल से मन में संजोयी हुयी अनुसन्धान की अभिलाषा ने मुझे इस कार्य की ओर उन्मुख किया । प्रारम्भिक स्तर पर एक सच्चे मार्गदर्शक गुरु का अन्वेषण भी एक दुरुह कार्य बन जाता है । किन्तु विभाग के गुरुओं के स्नेह ने इस कार्य को सुगम बना दिया और गुरुवर्य डा० महावीर प्रसाद लखेड़ा के योग्य निर्देशन में यह कार्य प्रारम्भ हुआ । लगभग तीन वर्षों तक उनकी अजस्र स्नेहधारा मन मस्तिष्क को आप्लावित करती रही है । पग-पग पर अनुसन्धान सम्बन्धी जो भी कठिनाइयां उद्भूत हुयी उनका निराकरण गुरुवर्य ने बहुत ही स्नेहिल रूप में किया और अनुसन्धान सम्बन्धी सामग्री के संकलन में उनका निरन्तर सहयोग प्राप्त होता रहा । अब तक पूर्ण आशा बंध आयी थी कि मेरा यह वेद सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य पूर्ण हो जायेगा। किन्तु काल की गति को कौन जानता है । जो कब किसे अपने चपेट में ले लेगा, कल्पना भी नहीं की जा सकती । सन् १६८२ की नवम्बर में एक दु:खद प्रात:काल में पूज्य गुरुवर्य के निधन का आकस्मिक समाचार तन-मन को झकझोर गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि धरती पर आसमान टूट पड़ा ।

पूज्य गुरुवर्य डा० लखेड़ा के आकस्मिक निधन के पश्चात् मेरे समक्ष नितान्त अन्धकार था और यह नहीं समझ में आ रहा था कि यह अनुसन्धान कार्य किस प्रकार पूर्ण होगा । किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई आकस्मिक दुर्घटना मन-मस्तिष्क को तमस से आवृत कर लेती है उसी समय परमात्मा एक प्रकाश की क्षीण रेखा को उत्पन्न कर सारे अन्धकार का निराकरण कर देता है । विभाग के गुरुवों ने इस प्रकाश रेखा का कार्य

किया और मुझे तत्काल गुरुवर्य डा० सिद्धनाथ शुक्ल का निर्देशन प्राप्त करने का पूर्ण आश्वासन मिल गया ।

जनवरी १९८३ से प्रस्तुत अनुसन्धान के लेखन का कार्य डा० सिद्धनाथ शुक्ल के निर्देशन में प्रारम्भ हुआ और यह कार्य अव्याहत गति से निरन्तर आज तक चलता रहा है । जहां कहीं भी कोई कठिनाई अथवा अवरोध उत्पन्न हुआ, उनके निर्देशन में उन अवरोधों का तत्काल निराकरण हुआ । आशा के विपरीत एक निश्चित अवधि में मेरा यह कार्य सम्प्रति पूर्णता की चरम सीमा पर पहुंच रहा है ।

डी० फिल०सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य अनुसन्धान प्रक्रिया का मात्र प्रशिक्षण है, ऐसा गुरुवर्य डा० शुक्ल का मत है । इस एक वर्ष की अवधि में उन्होंने मुझे जिस प्रकार का प्रशिक्षण दिया है और अनुसन्धान के प्रति जिस अभिरुचि को जागृत किया है, उससे मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी यह पूर्व अनुसन्धान गति आगे आने वाले उच्च अनुसन्धान के लिये एक प्रशिक्षण ही रही है । अश्विनौ सम्बन्धी इस अनुसन्धान के अन्तर्गत हम कोई बात अन्तिम रूप से नहीं कह रहे हैं वरन् इससे सम्बन्धित सन्दर्भों का आकलन कर मात्र उनका समीक्षात्मक दृष्टि से प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है जो इस क्षेत्र में आगे आने वाले अनेक अनुसन्धानों के लिये एक सहायक मार्ग का उदघाटन कर सकता है । हमारा यह लघु प्रयास वैदिक अनुसन्धान के क्षेत्र में कुछ नये तथ्यों को उपस्थित कर हिन्दी भाषा के माध्यम से अनुसन्धान करने वाले अनुसन्धित्सुओं के लिये कुछ मार्ग प्रशस्त कर सकेगा और विद्वानों की ओर से कुछ उत्साह वर्धन हो सकेगा जिससे कि हम उच्च अनुसन्धान में संलग्न हो सकें, इस आशा से इसे विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है ।

इस अनुसन्धान कार्य में जिन जिन माध्यमों से सहायता प्राप्त हुयी है अथवा उत्साह संवर्धन हुआ है उनके प्रति आभार व्यक्त करना यहां

मुख्य कर्तव्य प्रतीत होता है । सर्वप्रथम मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के समस्त गुरुजनों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने अपने स्नेह एवं ज्ञान की दीपज्योति के द्वारा मेरे मन मस्तिष्क को प्रकाशित कर मुझे इस अनुसन्धान कार्य करने के योग्य बनाया । इसके पश्चात् मैं विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के समस्त अधिकारियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने समय-समय पर मुझे पुस्तकें उपलब्ध कराकर मेरे कार्य को सफल बनाने में सहायता की । इसी सन्दर्भ में गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्राचार्य एवं पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने सम्पूर्ण अनुसन्धान काल में मुझे अपने पुस्तकालय के उपयोग की अनुमति प्रदान कर मेरे दुरूह कार्य को सरल बनाया । क्रास्थवेट गर्ल्स इन्टर कालेज इलाहा० की संस्कृत प्रवक्ता कु० पूर्णिमा चतुर्वेदी के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं जिन्होंने अपने सत्परामर्शों से मुझे अनुगृहीत किया व समय-समय पर पुस्तकीय सहायता प्रदान की ।

इस अनुसन्धान का प्रारम्भ आर्थिक अभावों में नहीं किया जा सकता था । राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली, ने मुझे दो वर्ष तक छात्रवृत्ति प्रदान कर मेरी जो आर्थिक सहायता की है, उसके प्रति मैं आभारी हूं ।

मेरे माता-पिता, बहनों एवं परिवार के अन्य सदस्यों ने इस अनुसन्धान कार्य की पूर्णता में जो सहयोग दिया है, उनके प्रति आभार व्यक्त करना दिखावा मात्र होगा । किन्तु उन सब के द्वारा दी गयी सत्प्रेरणा एवं स्नेह को इस अवसर पर स्मरण करना मेरा परम कर्तव्य है ।

अनुसन्धान ग्रन्थ का टंकण श्री श्यामलाल तिवारी ने बड़ी ही तत्परता के साथ किया है । उनकी इस तत्परता के लिये उन्हें मैं धन्यवाद देती हूं ।

इस अनुसन्धान में अनेक प्रकार की त्रुटियों का होना स्वाभाविक है जिसके परिमार्जन का मैंने भरसक प्रयास किया है, किन्तु इतने पर भी यदि कुछ त्रुटियां रह गयी-तो मैं उनके लिये क्षमा प्रार्थिनी हूं। इस अनुसन्धान ग्रन्थ में जो भी कमियां हैं वह मेरी अपनी है और जो कुछ अच्छाईयां हैं, वे गुरुवर्य की हैं। गुरुजन मेरा उत्साह संवर्धित करेंगे, इस आशा और विश्वास के साथ मैं यह अनुसन्धान ग्रन्थ प्रस्तुत कर रही हूं।

प्रस्तुतकर्त्री

साधना वेदी

(कु० साधना बेदी)

इलाहाबाद

कार्तिक पूर्णिमा

सं० २०४०

संक्षेप-सरणि

१-	अ०	-	अध्याय
२-	अथर्व	-	अथर्ववेद
३-	आ० गृ० सू०	-	आश्वलायन गृह्यसूत्र
४-	आ०श्रौ० सू०	-	आश्वलायन श्रौतसूत्र
५-	आप०श्रौ० सू०	-	आपस्तम्ब श्रौत सूत्र
६-	ऋ०	-	ऋग्वेद
७-	ऋ० सं०	-	ऋग्वेदसंहिता
८-	ऐ० आ०	-	ऐतरेय आरण्यक
९-	ऐ० ब्रा०	-	ऐतरेय ब्राह्मण
१०-	क० कठ	-	कपिष्ठल कठ संहिता
११-	का० सं०	-	काण्व संहिता
१२-	का०श्रौ० सू०	-	कात्यायन श्रौत सूत्र
१३-	काठ० सं०	-	काठकसंहिता
१४-	कौ० गृ० सू०	-	कौषितकी गृह्य सूत्र
१५-	कौ० ब्रा०	-	कौषितकी ब्राह्मण
१६-	गो० ब्रा०	-	गोपथ ब्राह्मण
१७-	जै० ब्रा०	-	जैमिनीय ब्राह्मण
१८-	जै० उ०	-	जैमिनीय उपनिषद
१९-	जै० उ० ब्रा०	-	जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण
२०-	ता० ब्रा०	-	ताण्ड्यब्राह्मण
२१-	तै० सं०	-	तैत्तिरीय संहिता
२२-	तै० ब्रा०	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
२३-	तै० आ०	-	तैत्तिरीय आरण्यक
२४-	तै० उ०	-	तैत्तिरीय उपनिषद
२५-	तु० की०	-	तुलना कीजिए

२६- दे० उ० - देव्युपनिषद
२७- द्रो० - द्रोण
२८- द्र० - द्रष्टव्य
२९- निरु० - निरुक्त
३०- नी० मं० - नीतिमंजरी
३१- पं० वि० ब्रा० - पंचविंश ब्राह्मण
३२- पा० सू० - पाणिनी सूत्र
३३- पृ० - पृष्ठ
३४- भाग० - भागवतपुराण
३५- म० भा० - महाभारत
३६- मा० सं० - माध्यन्दिन संहिता
३७- मै० सं० - मैत्रायणी संहिता
३८- मा० गृ० सू० - मानव गृह्य सूत्र
३९- मही० भा० - महीधर भाष्य
४०- मुद० - मुदगल
४१- म० पु० - मत्स्यपुराण
४२- या० - यास्क
४३- रामा० - रामायण
४४- व० पु० - वराहपुराण
४५- वा० सं० - वाजसनेयी संहिता
४६- वा० श्रौ० सू० - वाराह श्रौत सूत्र
४७- वा० गृ० सू० - वाराह गृह्य सूत्र
४८- वा० पु० - वायुपुराण
४९- वि० ध० पु० - विष्णुधर्मोत्तर पुराण
५०- वि० पु० - विष्णुपुराण
५१- बृ० दे० - बृहद्देवता

५२-	वैं०	-	वेंकटमाधव
५३-	वै० श्रौ० सू०	-	वैखानस श्रौत सूत्र
५४-	बृ० जा०	-	बृहज्जाबालोपनिषद
५५-	बृ० उ०	-	बृहदारण्यक उपनिषद
५६-	श्लो०	-	श्लोक
५७-	श० ब्रा०	-	शतपथब्राह्मण
५८-	शां० ब्रा०	-	शांखायन ब्राह्मण
५९-	शां० आ०	-	शांखायन आरण्यक
६०-	शां० श्रौ० सू०	-	शांखायन श्रौत सूत्र
६१-	शु० यजु०	-	शुक्लयजुर्वेद
६२-	स्क०	-	स्कन्द स्वामी
६३-	सा०	-	सायण
६४-	सुबा०	-	सुबालोपनिषद
६५-	श्रीमद्देवी भाग०	-	श्रीमद्देवीभागवतपुराण
६६-	भाग०	-	भागवतपुराण
67-	A B O R I	-	Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona
68-	A I O C	-	All India Oriental Confrence
69-	J A O S	-	Journal of the American Oriental Society
70-	J B U	-	Journal of Bombay University
71-	J O I B	-	Journal of Oriental Research Ins. Baroda
72-	J O R M	-	Journal of Oriental Research Madras
73-	J I H	-	Journal of Indian History
74-	J R A S	-	Journal of Royal Asiatic Society

भूमिका

भूमिका

वैदिक देवताओं के स्वरूप के विवेचन की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है। ब्राह्मण ग्रन्थों में जब देवताओं का तादात्म्य अनेक वस्तुओं[1] अथवा प्राकृतिक उपादानों[2] के साथ या देवताओं में पारस्परिक सम्बन्धों के अनुरूप[3] व्यक्त किया जाता है तो वहां एक प्रकार से देवशास्त्रीय विवेचना का ही प्रारम्भ होता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मन्त्रों में भी देवताओं के स्वरूप का विवेचन है[4], किन्तु जब तक उनका विश्लेषण, वर्गीकरण और परिबृंहण न किया जाय तब तक उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं होता है। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों तक पहुंचते-पहुंचते देवताओं के सम्बन्ध में कुछ न कुछ स्पष्ट रूप में कहा जाने लगा[5] और उससे धीरे-धीरे देवशास्त्रीय विवेचन की एक परम्परा प्रारम्भ हुई। यदि समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों का देवशास्त्रीय विवेचन की प्रक्रिया की दृष्टि

----

१. ऐ० ब्रा० ३.१ : वाक् तु सरस्वती ; ३.३७ : वाग्वै पावीरवी ; श० ब्रा० २.१.४.२८ अन्नादोऽग्निः।

२. 'वृत्रो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिश्ये। यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिदं सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम तमिन्द्रो जघान।' - श० ब्रा० १.१.१.४-५.

३. अग्निर्वै रुद्रः - श० ब्रा० ५.२.४.१३.

४. यः सूर्यं य उषसं जजान - ऋ० २.१२.७.

५. 'यदग्नेः शुचिरूपं तद्दिविन्यदधत - श० ब्रा० २.२.१.१४.

से अध्ययन किया जाय तो अनेक देवताओं के सम्बन्ध में विविध प्रकार के तथ्यों का उद्‌घाटन होगा और वहां से हम देवशास्त्रीय विवेचन की परम्परा के उद्‌भव और विकास की कहानी को देखने में समर्थ होंगे ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यकों एवं उपनिषदों में भी देवताओं के दार्शनिक पक्ष का कुछ न कुछ उद्‌घाटन किया गया है जैसे - प्राण अपान आदि के साथ उनका तादात्म्य स्थापित करना,[६] और उसके पश्चात् उनके आध्यात्मिक स्वरूपों की अभिव्यक्ति करना है[७]। किन्तु यहां देवशास्त्रीय परम्परा को बहुत विकसित नहीं माना जा सकता है । इनके पश्चात् वैदिक व्याख्याकारों के अनेक सम्प्रदायों ने वैदिक देवताओं के सम्बन्ध में अनेकविध बातें कही हैं जिनका उल्लेख निरुक्तकार यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में किया है[८]। यास्क के पूर्व अनेक परम्पराओं में प्रचलित आधिदैवत,[९] आख्यानसमय या ऐतिहासिक,[१०]

----

६. अथैतस्य मनसो द्यौः शरीरं ज्योतीरूपमसावादित्यस्तद्यावदेव मनस्तावती द्यौस्तावानसावादित्यस्तौ मिथुनं समैतां ततः प्राणोऽजायत स इन्द्रः ।

- बृ० उप० १. ५.१२.

७. द्र० - वहीं १.३. १६ ; २०, २१.

८. निरु० - देवतकाण्ड

९. निरु० १३. ६.

१०. वही ७. ७ ; १२. १ ; १० ; विशेष द्र०- चमूपति, यास्क युग, पृ० २६.

याज्ञिक,[११] पूर्वयाज्ञिक,[१२] परिव्राजक,[१३] नैरुक्त[१४] आदि सम्प्रदायों में विभक्त वैदिक व्याख्याकारों ने वैदिक देवताओं के स्वरूप पर कुछ न कुछ विचार व्यक्त किये होंगे जिनके सम्बन्ध में कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होते हैं। मात्र इनके नामों का उल्लेख यास्क ने निरुक्त में किया है जिन संकेतों के आधार पर हम उस काल में विकसित देवशास्त्रीय विवेचन की परम्पराओं को संकेत रूप में ग्रहण कर सकते हैं। नैरुक्त सम्प्रदाय में देवताओं को प्राकृतिक उपादानों में ग्रहण कर उसी के अनुरूप उनका विवेचन किया गया है,[१५] जबकि ऐतिहासिकों ने वैदिक देवताओं के अन्तर्गत प्राक्-वैदिक संस्कृति तथा वैदिक संस्कृति के इतिहास को निहित मानकर वैदिक देवताओं को उस इतिहास के साथ सम्पृक्त करने का प्रयास किया।[१६] इन समस्त आकलनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक देवताओं के देवशास्त्रीय स्वरूप-विवेचन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

निरुक्त के पश्चात् भारतीय परम्परा में किसी ऐसे

----

११. निरु० ५.२ ; ७.४ ; ११.२९,३१,४२ ; ४३.

१२. वही ८. ५ : ६ ; १७ ; ६. ४१.

१३. वही २. ८.

१४. नैरुक्त सम्प्रदाय का पूर्ण प्रतिनिधित्व यास्क के निरुक्त में प्राप्त होता है.

१५. तत्को वृत्र: ? मेघ इति नैरुक्ता:
- निरु० २. १६.

१६. त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका :
- वही २. १६

ग्रन्थ की चर्चा नहीं की जा सकती जहाँ देवताओं के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया हो । यद्यपि पुराणों में देवताओं के स्वरूप का अनेकविध विवेचन किया गया है जिससे वैदिक एवं पौराणिक देवताओं के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक बातें ज्ञात होती हैं, किन्तु उसे हम इस श्रेणी में नहीं रख सकते हैं, क्योंकि वहाँ एक अलग देवशास्त्र की ही चर्चा हो रही है, जिसकी परख हम वैज्ञानिकता के साथ नहीं कर सकते । वहाँ भक्ति और ज्ञान के समन्वय ने देवताओं को बहुत कुछ ऐतिहासिक बना दिया है । इसलिये यदि हम उसे भारतीय इतिहासवृत्त के साथ समन्वित कर उसका अध्ययन करें तो अधिक उपयुक्त होगा । इनके पश्चात् देवशास्त्र के विवेचन की भारतीय कड़ी नितान्त टूटी हुई सी दृष्टिगत होती है ।

आधुनिक काल को वैदिक अध्ययन का पुनर्जागिरण काल माना जा सकता है । सन् १८२५ में रोठ द्वारा सामवेद की एक पांडुलिपि के आधार पर पाश्चात्य देशों में वैदिक अध्यय के प्रारम्भ का और भारत में उसके प्रभाव से वैदिक अध्ययन की ओर विकसित रुझान का प्रारम्भ विन्दु माना जा सकता है ।[१७] सन् १८३५ से

----

१७. द्र०_— R. N. Dandekar, 'Twentyfive years of Vedic studies', in Progress of Inlic studies, BORI, Poona, 1952; 'Vedic studies', Retrospect and Prospect', PAIOC (14th Sesion) Poona, 1948; H.Oldenberg, Vedaforschung, Stuttgart, 1965 ; L. Renou, Les maitres de la philologic vedique, Paris 1928. R.N. Dandekar, A Decade of Vedic studies in India and abroad, A B O R I 1975, PP. 1-25.

१८५५ के मध्य मैक्सम्यूलर द्वारा ऋग्वेद संहिता का संपादन और प्रकाशन एवं इसके साथ ही एच० एच० विलसन द्वारा ऋग्वेद का अनुवाद वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी प्रगति का प्रारम्भ काल है । सन् १८३८ में रोज़िन का ऋग्वेद प्रथम अष्टक का लैटिन अनुवाद और इसके पश्चात् जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड और अमेरिका में अनेक विद्वानों द्वारा वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में प्रयास वेद के विभिन्न विषयों के विश्लेषण की भूमिका को प्रस्तुत करते हैं । जहाँ एक ओर संपादन और अनुवाद कार्य का प्रारम्भ होता है वहीं वेद से सम्बन्धित अनेक विषयों के अध्ययन का सूत्रपात भी होता है ।[१८] वेद की व्याख्या में धर्म, संस्कृति, भाषा, दर्शन, देवशास्त्र आदि से सम्बन्धित अनेक बातें सहायक बनती है । इसीलिये वेद की व्याख्या के साथ-साथ देवशास्त्रीय अध्ययन की परम्परा भी प्रारम्भ होती है ।

मैक्सम्यूलर ने जिस प्रकार वैदिक ग्रन्थों के सम्पादन और उनकी व्याख्यादि का प्रारम्भ किया उसी प्रकार उन्होंने देवशास्त्रीय विवेचन की परम्परा का सूत्रपात भी किया है । उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Lectures on origin and growth of religion[19] में जहाँ एक ओर धर्म और दर्शन की चर्चा की, वहीं

----

१८. द्र० — R.N. Dandekar, 'Twentyfive years of vedic studies', Poona 1952.

19. Max Mueller, Lectures on origin and Growth of religion, London 1878.

उसके साथ वैदिक देवशास्त्र सम्बन्धी अनेक तथ्यों पर भी प्रकाश डाला। जिस समय मैक्समूलर यह कार्य कर रहे थे उसी काल में वैदिक देवशास्त्र पर सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना हो रही थी और मैक्समूलर के ग्रन्थ के प्रकाशन के ठीक एक वर्ष बाद मैकडानल के प्रसिद्ध ग्रन्थ वैदिक माइथालाजी (Vedic Mythology)[२०] का सन् १८७६ में जर्मनी में प्रकाशन होता है। जिससे वैदिक देवशास्त्र के अध्ययन की एक ठोस परम्परा प्रारम्भ होती है। इस ग्रन्थ में प्रथम बार वैदिक देवशास्त्र के अध्ययन को एक क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक आधार मिला। मैकडानल ने ऋग्वेद के समस्त देवताओं का वर्गीकरण और विश्लेषण किया तथा उनके स्वरूप की विस्तार से चर्चा की। वेद में ही नहीं, वरन् अन्यान्य धर्म एवं साहित्य में भी देव-शास्त्रीय अध्ययन की परम्परा के विकास को यहाँ से एक ठोस आधार मिलता है। मैक्समूलर और मैकडानल इस क्षेत्र में अकेले नहीं थे, अनेक अन्य विद्वानों ने भी इस कार्य में उनका हाथ बंटाया। इनके पश्चात् कैगी (Kaegie)[२१] और श्रोदर[२२] ने अपने-अपने ग्रन्थ में वैदिक देवताओं की चर्चा की। कैगी

----

20. A. A. Macdonell - Vedic Mythology strasburg 1979.

21. Adolf Kaegie Der Rigveda, die aelteste Literatur der Intder, Leipzig 1881.

22. L. Von Schroeder, Indiens Literatur und cultur in Historischer enturklurg, Leipzig 1887.

का ग्रन्थ मुख्य रूप से ऋग्वेद के संक्षिप्त परिचय के रूप में है जिसमें ऋग्वेदीय देवताओं की भी संक्षिप्त चर्चा है । इसी प्रकार औदर का ग्रन्थ साहित्य और संस्कृति दोनों के पक्षों का स्पर्श करता है जिसमें वैदिक कालीन संस्कृति एवं उसके देवताओं का संक्षिप्त परिचय है ।

जिस समय जर्मनी और इंग्लैण्ड में वैदिक साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा का विकास हो रहा था उसी समय फ्रान्स में भी वैदिक साहित्य के अध्ययन का सूत्रपात हुआ और मैकडानल आदि के समकालीन विद्वानों में प्रमुख फ्रेंच विद्वान बेर्गेन्य ने वैदिक साहित्य धर्म एवं संस्कृति के अध्ययन के क्षेत्र में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया । वैदिक धर्म और यज्ञीय परम्परा का उन्होंने विस्तारपूर्वक अध्ययन किया, जिसके परिणामस्वरूप वैदिक धर्म सम्बन्धी उनका ग्रन्थ तीन भागों में प्रकाशित हुआ ; जिसमें संहिताओं को मूल स्रोत के रूप में स्वीकार कर वैदिक धर्म और देवशास्त्र के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया ।[२३] सन् १८८१ में प्रकाशित बेर्गेन्य का वैदिक धर्म सम्बन्धी यह ग्रन्थ आज भी वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उसमें धर्म ही नहीं वरन् देवशास्त्र-सम्बन्धित अनेक तथ्यों का भी विस्तृत विवेचन है जिसमें अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है ।

----

२३. A. Bergaigne : Histoii re de la Liturgie Vedique, 1889 I, Religion de Vedique, Paris, 1881.

बेर्गेन्य के बाद बहुत वर्षों तक वैदिक देवशास्त्र एवं धर्म पर किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना नहीं हुई है। किन्तु इसका तारतम्य किसी न किसी रूप में बना रहा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ जिसमें वैदिक धर्म देवशास्त्र एवं यज्ञीय परम्पराओं को लक्ष्य मान कर ग्रन्थों का प्रणयन हुआ जिसमें वैदिक अध्ययन के क्षेत्र को विस्तार मिला। सन् १९२३ में ग्रिसवोल्ड[२४] और ओल्डेन बर्ग[२५]; सन् १९२५ में कीथ[२६]; सन् १९२७ में ड्यूमो[२७] और सन् १९२९ में हिलेब्रान्ट[२८] के ग्रन्थों का प्रकाशन पिछले तीन दशकों के विस्तृत अध्ययन के तारतम्य को द्योतित करता है। इनमें हिलेब्रान्ट को छोड़कर अन्य सभी लोगों ने मूलतः वैदिक धर्म पर ही विस्तार पूर्वक चर्चायें कीं; किन्तु हिलेब्रान्ट का ग्रन्थ मूल रूप से वैदिक देवशास्त्र का विस्तृत अध्ययन है। हिलेब्रान्ट ने वैदिक देवताओं के विवेचन में भारत से लेकर योरोप तक के देवशास्त्र का एवं उनकी सामाजिक परम्पराओं का किसी न किसी रूप में ग्रहण किया है और इस प्रकार देवताओं के विकास को लौकिक परम्पराओं

----

24. H.D. Griswold, The Religion of the Rigveda, Oxford, 1923.
25. H. Oldenberg, Die religion des Veda, Stuttgart-Berlin, 1923.
26. A.B. Keith, The Religion and Philosophy of the Veda, Cambridge, Masch ; 1925.
27. P.E. Dumont, L' Ashvamedha, Louvain, 1927.
28. A. Hillebrandt, Vedische Mythologie, Berlin 1927, Bresslan 1929.

के साथ जोड़ने का प्रयास किया है । जैसे - उषस् सम्बन्धित देव-शास्त्र में उन्होंने भारत में होली के उत्सव की परम्परा, ईरान में दीर्घकालीन शीत और हिमपात के पश्चात् प्रथम सूर्य का दर्शन और जर्मनी में कौलेन्दा (Colenda) जैसे उत्सवों को उषस् के देव-शास्त्र के विकास में सहायक माना है । मैकडानल के वैदिक देवशास्त्र के ग्रन्थ में और हिलेब्रान्ट के ग्रन्थ में यही मूलभूत अन्तर है कि जहाँ मैकडानल ने देवशास्त्रीय विवेचन में निर्णायक के रूप में मूल ग्रन्थों को स्वीकार किया है वहीं हिलेब्रान्ट ने मूल ग्रन्थों के साथ-साथ अन्य तुलनात्मक स्रोतों को भी स्वीकार किया है ; जिससे कभी-कभी निर्णय में भी बहकाव अधिक प्रतीत होता है । वेगैन्य आदि के पहले रामायण और महाभारत के देवशास्त्र से सम्बन्धित विषय पर हापकिन्स[२६] ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की, जिसमें अनेक वैदिक देवताओं की भी चर्चा है ।

प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध ने वैदिक अध्ययन की परम्पराओं को बहुत अधिक प्रभावित किया था । अनेक ग्रन्थों की रचना होने के पश्चात् उनका प्रकाशित न होना, जर्मनी से अनेक विद्वानों का इधर-उधर चला जाना, आदि अनेक प्रकार की बातों ने अध्ययन के क्षेत्र को भी प्रभावित किया । इसीलिये बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में तथा चतुर्थ और पंचम दशक में इस क्षेत्र में पर्याप्त व्यवधान प्रतीत होता है । पंचम दशक के अन्त में तथा उसके पश्चात्

----

२६. E. W. Hopkins, Epic Mythology, strassburg 1915.

पुन: अध्ययन की परम्परा तीव्र गति से आगे बढ़ती है । तुलनात्मक भाषा-शास्त्र देवशास्त्र आदि का अध्ययन वैदिक अध्ययन के क्षेत्र को अधिक समृद्ध करता है । इसीलिये वैदिक देवशास्त्र का अध्ययन भी अनेक रूपों में विस्तार प्राप्त करता है । सन् १६५० के पश्चात् अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन होता है, जिसमें लुईरेनु,[30] ल्यूडर्स,[31] यान् गोंदा,[32] मर्शिया इलियाद,[33] हांसप्टिर्स श्मिट[34] एवं अन्य

---

30. L.Renou, Etude Vedique et Panininen, Paris 1960.
    Religions of Ancient India, London 953.
31. H.Lueders, Varuna, Geetingen, 1951-59.
32. Aspects of Early visnuism, Utrecht, 1954.
    Jan Gonda, Epithets in the Rigveda, Amsterdam 1959.
    Four studies in the languate of the Veda, The Hague 1959.
    The vision of the Vedic Poets, The Hague 1963.
    Change and continuity in the Indian Religion, The Hague 1965. Savayajnas, Amster, 1965.
    Stylistic Repetitions in the Veda, 1969.
    The Vedic God Mitra, Leiden 1972.
    The dual duities in the Religion of the Veda, 1974.
33. Mirchea Eliade, Patterns in comparative Religion ; London-New York 1958.
    The two and the one, London 1965.
34. Hans Peter Schmidtt, Brhaspati und Indra, Wiesbaden 1968.

पाश्चात्य तथा प्राच्य[३५] विद्वानों के अनेक ग्रन्थों का आकलन किया जा सकता है ।

उपर्युक्त जिन अनेक विद्वानों के अनेक ग्रन्थों को सन्दर्भित किया गया है उन सभी में प्राय: किसी न किसी रूप में अश्विनौ के स्वरूप की चर्चा प्राप्त होती है, इसीलिये अश्विनौ सम्बन्धी देवशास्त्र का आधुनिक काल में विकास हम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल से ही मान सकते हैं । जहां धर्म संस्कृति एवं देवशास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों में सामूहिक रूप में अश्विनौ की चर्चा है, वहीं अनेक विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से भी अश्विनौ सम्बन्धी देवशास्त्र पर विचार करने का प्रयास किया है । सन् १८७६ में मीनान्थियस[३६] ने जर्मनी में अश्विनौ पर स्वतन्त्ररूप से अपने विचार प्रस्तुत किये, जिसके पश्चात् रेने[३७] ने अश्विनौ और दिओस कौरोई का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर कुछ नयी प्रस्थापनाओं को प्रस्तुत किया । दिओस कौरोई सम्बन्धी देवशास्त्र की चर्चा प्राय: उन अवान्तरकालीन सभी विद्वानों ने की, जिन्होंने अश्विनौ की किसी

----

35. S. Bhattacharji, The Indian theogony,cambridge 1970.

36. L. Mynantheus, Die As'vins, Muenchen 1876.

37. Ch. Renel, L'evolution dun Myth As'vins et dioscures, Paris, 1896.

भी रूप में चर्चा की है । इसी सरणि में हम हापकिन्स[३८] (Hopkins) की चर्चा कर सकते हैं जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से अश्विनों पर एक विस्तृत लेख प्रकाशन अमेरिका में किया है ।

माशेक (Machek)[३९] ने अश्विनों के उद्भव पर अपना लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने अनेक प्रकार के विचारों को प्रस्तुत किया है । भारत में सन् १९३३ में जी०सी० झाला[४०] ने और सन् १९४९ में आर० के० प्रभु (P.K.Prabhu)[४१] ने अश्विनों के स्वरूप की चर्चा अपने-अपने अनुसन्धान पत्रों में प्रस्तुत की । इन्हीं के साथ हम लोमैल[४२] और मिचाल्स्की[४३] की चर्चा कर सकते हैं, जिन्होंने क्रमशः अपने-अपने लेखों का प्रकाशन किया ।

38.. E.W.Hopkins, Asvins, J A O S, 15.

39. V..Machek, Origin of the Asvins, Archiv Orientalani 15..

40. G..C..Jhala, As'vins, J B U I 1933.

41.. R. K. Prabhu, A..I. O. C (SP). 1949,. Asvins, JOIB, No.. 15..

42.. Lommel, Nasatya, Fest. W. Sch is bring, Hamburg 1951.

43. S.F..Michalski, As'vins et discures in Roczni (Oriental) 1961..

इस प्रकार पाश्चात्य एवं प्राच्य अनेक विद्वानों ने अश्विनौ सम्बन्धी देवशास्त्र के उद्भव और विकास तथा अश्विनों के स्वरूप की अनेक प्रकार से चर्चायें की हैं।[४४]

अब प्रश्न यह उठता है कि इतने अनुसन्धानों के पश्चात् भी नये अनुसन्धान की क्या आवश्यकता हो सकती है ? विगत १५० वर्षों में जो कार्य हुआ है वह अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण होते हुये भी सदैव कुछ नये ढंग से विचार करने की प्रेरणायें भी प्रदान करता है। अश्विनौ सम्बन्धी देवशास्त्र पर जो भी विचार व्यक्त किये गये हैं, उनमें भी बहुत सी ऐसी बातें रह गयी हैं, जो नये-नये अनुसन्धानों को अवकाश प्रदान करती हैं।

----

४४. See - K.C.. Chattopadhyaya, Vedic Religion..
P.S. Subrahmanian Sastri, Semantic History of Nas_atyau and dasrau,. J O R M 15 (II), 1945. Balasubrahmaniam Iyer, A Note on Nasatyan, J O R M 17, 1949.

N.C.. Chapekar, Nasatya, ABORI 45, 1964.. R.G.Agrawal, Az'vins in Sculptures J I H. 4-1.

K.P.. Jog, The Asvins in the Rgveda and their traces in the later literature, J B U 33 (2) 1964-65..

प्रारम्भिक अनुसन्धानों में सर्वप्रथम तुलनात्मक भाषाशास्त्र, देवशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र पर अधिक बल दिया जाता रहा है। जैसे अश्विनों के उद्भव और विकास की कथा का अन्वेषण करते हुये ग्रीक, ईरानियन एवं इसी प्रकार के अन्य स्रोतों में प्राप्त अश्विनो से तादात्म्य रखने वाले देवताओं के आधार पर अश्विनों की चर्चा हुयी है। ग्रीक दिओस कौरोई,ईरानियन, नासतिया या नासत्या या अवेस्तन् नाओह॰ हैथ्या आदि ऐसे नाम हैं जिसकी तुलना नासत्यों या अश्विनों के साथ की गयी है। एक प्रकार से भारोपीय देशों में प्राप्त सभी समान गुण एवं धर्म वाले देवताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और वैदिक देवताओं को उनके साथ जोड़ा गया। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के पश्चात् यूरोपीय देशों में जब वैदिक अध्ययन का प्रारम्भ हुआ उस समय भारतीय संस्कृति एवं धर्म के सम्यक् ज्ञान के लक्ष्य के साथ-साथ पाश्चात्य धर्म एवं दर्शन की समग्रता का भारत पर आरोपण करना भी एक लक्ष्य यूरोपीय विद्वानों के समक्ष रहा है। उस समय के अनुसन्धान कर्ता इस बात को कभी नहीं स्वीकार कर सके कि वैदिक धर्म यूनानी धर्म से अधिक विकसित या आगे थे। इसलिये देवशास्त्र के अध्ययन में हर बात को उन्होंने पाश्चात्य धर्म एवं दर्शन के साथ जोड़ने का प्रयास किया और बहुत ही सूक्ष्म रूप से अपने धर्म एवं संस्कृति को आरोपित करना चाहा। इस समय यह सर्वमान्य है कि कि वैदिक धर्म एवं संस्कृति विश्व की प्राचीनतम् संस्कृति है इसलिये इस पर अन्य देशों की संस्कृतियों का प्रभाव स्वीकार करना वांछनीय नहीं माना जा सकता। आर्यों के निवास स्थान देशकाल की

समीक्षा चाहे जिस रूप में की जाये ; किन्तु वैदिक धर्म का सम्पूर्ण विकास भारत भूमि पर हुआ और यहीं से इसके अनेक तत्व पश्चिम की ओर प्रेरित होते चले गये हैं, अत: भारत के पश्चिम या पूर्व जो भी देवशास्त्रीय व्यक्तित्व या नाम वैदिक देवताओं के समान प्राप्त होते हैं, उन पर भले ही भारतीय या वैदिक देवताओं के समान प्राप्त होते हैं उन पर भले ही भारतीय या वैदिक देवताओं का प्रभाव हो, किन्तु वैदिक देवताओं पर उनका प्रभाव या उनके आधार पर वैदिक देवताओं के विकास को नहीं स्वीकार किया जा सकता ।

आधुनिक अनुसन्धान की प्रक्रिया के अन्तर्गत आने वाले उपकरणों में तुलनात्मक देवशास्त्र, भाषा-शास्त्र, धर्म-दर्शन का उपयोग हम अपने अनुसन्धान के अन्तर्गत भले ही करें किन्तु मूल ग्रन्थों के आधार पर विभिन्न बातों का स्पष्टीकरण, उनकी व्याख्या अथवा उनके उद्भव और विकास का आकलन करना जितना सही है और अन्त: साक्ष्य के माध्यम से निर्णय लेना जितना उचित है उतना किसी अन्य विधि से सम्भव नहीं है । इसीलिये यद्यपि हमने अपने अनुसन्धान के अन्तर्गत विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री का संकलन और उसका विश्लेषण तथा स्थान-स्थान पर उसका उचित प्रयोग करने का प्रयास किया है । किन्तु अन्त: साक्ष्य को अधिक महत्वपूर्ण मानकर उसी के आधार पर वैदिक साहित्य में अश्विनौ के देवशास्त्र को समझने का अथवा स्पष्टीकरण का सतत् प्रयास किया गया है । अनेक प्रकार के वाह्य उपकरणों के माध्यम से जो बात सैकड़ों वर्षों तक नहीं स्पष्ट हो सकती वही बात अन्त: साक्ष्य के समुचित विश्लेषण एवं उपयोग के माध्यम से बहुत कम समय में व्याख्यायित हो सकती है ।

अन्त: साक्ष्य के रूप में किस सामग्री को प्राथमिकता दी जाये और किसे गौण रूप में स्वीकार किया जाये - इसमें भी विवाद उत्पन्न हो सकता है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है। अत: ऋग्वेद के अन्त: साक्ष्य के आधार पर जिस बात का स्पष्टीकरण हो जाये वही सर्वोपरि है। किन्तु ऋग्वेद में शैलीगत आवर्तनों के कारण अनेक तथ्यों में ऐसे सम्मिश्रण हो जाते हैं कि उनको एक दूसरे से अलग कर पाना बहुत कठिन हो जाता है। जैसे किसी भी एक देवता के स्वरूप में अनेक अन्य प्रकार के विभिन्न देवताओं के व्यक्तित्वों के अनेक पक्ष एक दूसरे में सन्निहित रहते हैं जिससे किसी भी एक देवता के निश्चित स्वरूप को जानने या उसके कथन में अन्य देवताओं के चरित्र की भी व्याप्ति बनी रहती है। जैसे हम अग्नि के स्वरूप की चर्चा करें तो उसमें बहुत ऐसे तत्व मिलेंगे जो इन्द्र, सूर्य, बृहस्पति आदि देवताओं के साथ भी घनिष्ठ रूप से सम्पृक्त है। अत: किसी निश्चित विभाजन रेखा को खींचना कभी-कभी असम्भव हो जाता है, इसी प्रकार अश्विनौ के गुण, स्वरूप आदि के कथन में भी अनेक अन्य देवताओं के गुण स्वरूप आदि का भी कथन हो जाता है। किन्तु इतने पर भी किसी भी एक देवता से सम्बन्धित जो सामग्री है, उसका सम्पूर्ण संकलन और विश्लेषण हमें उस देवता के स्वरूप पर विचार के लिये कुछ ठोस आधार अवश्य प्रदान करता है। अश्विनौ सम्बन्धी जितने भी ऋग्वेदीय मन्त्र हैं उन सबका सम्यक् विश्लेषण अपने आप में इतना बड़ा साक्ष्य है कि हम उनके व्यक्तित्व के विकास की धारा के प्रवाह में डूबकर उनके व्यक्तित्व की गहराइयों का अनुमान कर सकते हैं। जैसे-जैसे यह धारा आगे प्रवाहित होती है वैसे-वैसे विभिन्न

सरिताओं का जल इसे और अधिक समृद्ध करता है । इस प्रवाह में भटकाव भी हो सकता है, किन्तु यदि मूल धारा के प्रवाह को हम अच्छी प्रकार पकड़े रहे तो सातत्य और परिवर्तन को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती । वैदिक साहित्य की यह धारा ऋग्वेद से लेकर उपनिषद् काल तक निरन्तर प्रवाहमय होकर वेदाङ्गों से मोड़ लेती हुई पुराणों की गहराइयों में विलीन हो जाती है । अत: ऋग्वेद से लेकर पुराण काल तक अश्विनौ के स्वरूप की चर्चा करना अथवा उसका अनुसन्धान करना बहुत आसान कार्य नहीं है, यही कारण है कि विभिन्न अनुसन्धायकों ने अपने-अपने ढंग से अश्विनौ के व्यक्तित्व के विकास परीक्षण करने का प्रयास किया है । साधन सामग्री एक होने पर भी निर्णय में असमानता हो सकती है । इसलिये जिन पूर्व विद्वानों ने अश्विनौ के स्वरूप पर विचार किया है उनके विचारों का अवलोकन करने के लिये एवं उस पर पुनर्विचार करने के लिये अवकाश प्रदान करती है ।

इस अनुसन्धान-प्रक्रिया में हमने समस्त वैदिक साहित्य में प्राप्त अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भों ग्रन्थों का भी अवलोकन किया गया है । पूर्वकालीन जिन-जिन विद्वानों ने अश्विनौ सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त किये हैं उनमें अधिकांश सन्दर्भों का अध्ययन कर उससे प्राप्त अश्विनौ सम्बन्धी सामग्री का संकलन किया गया है । बहुत से ऐसे सन्दर्भ ग्रन्थ हैं जिन तक हमारी पहुंच नहीं हो सकी, जर्मन और फ्रेन्च भाषाओं में लिखे गये कुछ सन्दर्भ कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप में नहीं प्राप्त हो सके, अत: उस स्थिति में अन्त: साक्ष्य को ही प्रधानता देकर कार्य करने का प्रयास किया गया है ।

वैदिक साहित्य के समस्त ग्रन्थों का विषय के अनुरूप वर्गीकरण किया जा सकता था और किसी एक विषय में सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के समस्त संदर्भों का आकलन किया जा सकता था, किन्तु यहां हमने संहिता, ब्राह्मण,आरण्यक आदि के क्रम में काल क्रम अनुरूप एक-एक विधा में अश्विनौ के स्वरूप का अध्ययन करने का प्रयास किया है । इसमें कहीं-कहीं पुनरावृत्तियां भी हुई हैं किन्तु समग्रता को ध्यान में रखकर पृथक्-पृथक् संहिताओं, ब्राह्मणों आदि में अश्विनौ के स्वरूप की चर्चा की है ।

उत्तर-कालीन वैदिक साहित्य में रामायण,महाभारत और पुराणों की गणना है । रामायण, महाभारत में मूलत: वैदिक आख्यायिकाओं को ही ग्रहण कर अश्विनौ की चर्चा है । पुराणों में इन्हीं आख्यायिकाओं का विस्तार कहीं-कहीं नये परिवर्तनों के साथ प्राप्त होता है । सामग्री संकलन में पदानुक्रम कोशों की सहायता लेकर सम्बन्धित सन्दर्भों का आकलन-संकलन और विश्लेषण करने के पश्चात् ही इस अनुसन्धान प्रबन्ध का पर्यवसान हुआ है । महाकाव्यों और पुराणों में भी प्राय: आख्यायिकाओं के पुनरावर्तन ही प्राप्त होते हैं । अत: आवश्यकता के अनुरूप ही सामग्री का संचयन हुआ है ।

सम्पूर्ण सामग्री संकलन के पश्चात् उसके विश्लेषण से प्राय: यह प्रतीत होता है कि अनेक बातों का आवर्तन बार-बार हुआ है और फिर उनके सम्बन्ध में निश्चित धारणा बनाना कठिन हो जाता है । साथ ही अनेक देवताओं के विशिष्ट विशेषणों, कार्यों, सम्बन्धों आदि की मूलभूत समानताओं के कारण भी कठिनाइयां उत्पन्न होती है तथा उनकी उत्पत्ति विषय संधारणाओं को समझने

के निश्चित साधनों के अभाव की प्रतीति भी होती है । इस प्रकार वेद में देवशास्त्रीय विवेचन के विभिन्न अङ्गों में तारतम्य उपस्थित करना बहुत कठिन है । तुलनात्मक देवशास्त्र के माध्यम से प्राप्त हुए अनेक तथ्य भी कभी-कभी निश्चित् लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं प्रतीत होते हैं । इसीलिये मूल ग्रन्थों में प्राप्त सन्दर्भों का आकलन और उस सामग्री का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन ही प्रस्तुत अनुसन्धान की प्रक्रिया में मुख्य रूप से सहायक प्रतीत होता है । उसी को आधार मानकर अश्विनौ के स्वरूप की इस अनुसन्धान ग्रन्थ में चर्चा की गयी है । प्रारम्भ में वैदिक देवताओं का वर्गीकरण उसमें अश्विनौ का स्थान, देवता युग्मों की कल्पना, उसमें अश्विनौ के स्वरूप की चर्चा करने के पश्चात् ऋग्वेद से लेकर उत्तरकालीन वैदिक साहित्य तक अश्विनौ के देवशास्त्रीय स्वरूप का निरूपण किया गया है । जहां कहीं भी पूर्वकालीन विद्वानों द्वारा प्रस्थापित स्थापनाओं की आवश्यकता पड़ी वहां स्थान और समय के अनुरूप सामग्री का उपयोग भी किया गया है, अन्यथा मूल सामग्री के आधार पर ही अश्विनौ के स्वरूप की विवेचना की गयी है ।

-0-

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

-0-

वैदिक वाङ्मय में देवता युग्म और अश्विनी

वैदिक साहित्य में देवताओं के स्वरूप को समझने के लिये सम्पूर्ण देव-सृष्टि की विकासात्मक प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। ऋग्वेद संहिता और उसके अवान्तर-कालीन साहित्य का जिस प्रकार धीरे-धीरे विकास हुआ, उसी काल-क्रम में देवता सम्बन्धी अवधारणाओं में भी विकासात्मक सातत्य और परिवर्तन की परम्परा सन्निहित प्रतीत होती है। यदि हम समस्त सृष्टि प्रक्रिया को समझें या वैदिक साहित्य में आये हुये सन्दर्भों के माध्यम से उसका विवेचन करें तो हमें द्वन्द्वात्मक सृष्टि की उभरती हुई अवधारणा ऋग्वेद के प्रारम्भ काल से ही दृष्टिगत होती है। इस द्वन्द्वात्मक सृष्टि में जहाँ एक ओर पूरक (Complimentary) तत्व दृष्टिगत होते हैं वहीं दूसरी ओर विरोधी (Contradictory) तत्व भी सन्निहित हैं।[१] आकाश-धरती, रात-दिन, माता-पिता, जैसे पूरक तत्व एक ओर हैं[२] तो दूसरी ओर प्रकाश और

---

१. पूरक और विरोधी युग्मों के लिये विशेष द्रष्टव्य — J. Gonda, Particle Ca in Sanskrit literature, Vāk, Poona, Vol No. 5, PP 1-73.

२. ऋ० १.३१.८ ; १५८.५ ; १६०.५ ; १८५.११ ; २.३२. ; ४.६.७ ; ६.५०.३ ; ७.५२.१ ; ५३.२ ; ३ ; ८.४२.२ ; ६.६६.१० ; १०.६७.१२ ; ६३.१ ; १० ; १०.११०.२.

अन्धकार, देवता और असुर जैसे विरोधी तत्वों का समावेश हमें साथ-साथ दृष्टिगत होता है।[३] ऋग्वेद की सृष्टि प्रक्रिया में सत् और असत्[४] की कल्पना इसी द्वन्द्वात्मक सृष्टि की अवधारणा का परिणाम है।

द्वन्द्वात्मक सृष्टि की यह कल्पना मात्र भारतीय ही नहीं है। प्राचीन मलेनेशिया, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, मिस्र आदि देशों में भी इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक सृष्टि की कल्पना उन-उन देशों के देवशास्त्र में उल्लिखित है। मिस्र में दो लोकों के देवता होरस (Horus) और सेट (Set) की सृष्टि द्वन्द्वात्मक रूप में ही दिखायी गयी है।[५] भारतीय परम्परा में बहुत सी वन्य जातियों में भी इस प्रकार की बातें मिल जाती हैं। कुछ देवशास्त्र सम्बन्धी लेखकों तथा समाज-शास्त्रियों ने इस बात को भौगोलिक कारणों पर

---

३. 'द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च'।

- बृ० उ० १. ३. १.

यजु० १६. ३२.

४. ऋ० १०. १२६. १.

५. द्र० G. J. Held, The Mahabharat and ethonological study, thesis, Leiden 1935 P. 64ff, coated by J. Gonda - Dual Deities, page 31; f.n.

आधारित माना है।[६] किन्तु वेद में भव और सर्व को छोड़कर जो बाह्लीकों से सम्बन्धित हैं, किसी अन्य देवता के ऐसे सन्दर्भ नहीं प्राप्त होते जिन्हें हम भौगोलिक विभाजन के आधार पर द्वन्द्वात्मक देवकल्पना के अन्तर्गत समाहित कर सकें।[७]

इन्डोयूरोपियन देवशास्त्र में अनेक ऐसे तत्त्व वर्तमान हैं जिनमें द्वन्द्वात्मक सृष्टि की कल्पना की गयी है। अवेस्ता में यह द्वन्द्वात्मक सृष्टि सबसे अधिक स्पष्ट रूप में प्रतीत होती है। जहाँ अहुरमज़्दा और अङ्‌रामाइन्यू एक-दूसरे के विरोधी तत्त्वों के रूप में समस्त देवशास्त्र की परिकल्पना को अच्छे (Good) और बुरे (Evil) के रूप में दो सृष्टियों में विभाजित करते हुये समस्त धर्म, समाज,और दार्शनिक विचारधारा को प्रभावित करते हैं। ज़ैनर का[८] कथन है कि युग्म की सर्वप्रथम परिकल्पना स्वयं ज़रथुस्त्र की देन है।

---

६. वही०, पृ० ३० ... "Cases of 'fusion' and duality based on geographical factors such as are so characteristic of ancient Egypt....'

७. द्र० G. Gonda भव and सर्व, Reflections on सर्व Indian Linguistics 16, Madras; 1955. PP. 53ff

८ R. C. Zaehner, Dawn and Twilight of Zorostrianism, London 1961, P.42.

ग्रिसवोल्ड[६] (Griswold) ने यह सुझाव दिया है कि भारतीय पुरुष और स्त्री के सम्बन्धों को ध्यान में रखकर ही द्यावापृथिवी के वैवाहिक सम्बन्धों की परिकल्पना की गयी थी और इसी आधार पर मित्रावरुण, इन्द्राग्नी, इन्द्राविष्णू, नक्तोषसा के द्वन्द्वात्मक स्वरूप की कल्पना की गयी है, जिसमें स्त्री-पुरुष और पुरुष-पुरुष तथा स्त्री-स्त्री, हर प्रकार के द्वन्द्वात्मक स्वरूप उपस्थित हैं। किन्तु इस तादात्म्य में यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि यहाँ अनेक देवता युग्मों में वैवाहिक कल्पनाओं को स्थान नहीं दिया जा सकता।

लुई रनू ने देवता-युग्मों के द्वन्द्वात्मक विकास को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने का प्रयास किया है और यह कहा है कि मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी, इन्द्राविष्णू आदि देवता युग्मों के विकास क्रम में अश्विनौ का स्थान सबसे बाद का है (Asvins represent the final stage of a process that they are the youngest pair of dual divinites)[10]

इस बात पर यान गोंदा (J.Gonda) ने सन्देह व्यक्त किया है और यह कहा है कि देवता युग्मों के विकासक्रम में अश्विनौ की स्थिति अन्य देवता युग्मो से भिन्न है। इसलिये उन्हें मित्रावरुण, इन्द्र-वरुण या अग्नि और सोम आदि के युग्मों के

---

६. H.D. Griswold : The Religion of the Rgveda, Oxford 1923, P. 104.

१०. L Renou et J. Filliozot, in L' Inde classique, ; Paris 1947, p. 328.

समानान्तर नहीं देखा जा सकता, वरन् इसके विपरीत उनका रूप अभिन्नात्मक है।[११] उनके जोड़े में एक ही व्यक्तित्व समाया हुआ है इसलिये उन्हें अलग-अलग रूप में नहीं देखा जा सकता। गौंदा की यह बात संहिताओं तक तो ठीक प्रतीत होती है। किन्तु जब हम अश्विनों के स्वरूप के विकासात्मक रूप को सम्पूर्ण वैदिक और अवान्तरकालीन वैदिक-साहित्य में देखते हैं तो अनेक सन्दर्भों में इनके दो व्यक्तित्वों की चर्चा है। पुराणों में तो नासत्य और दस्त्र की उत्पत्ति ही अलग-अलग रूप में कही गयी है। भारतीय-देवशास्त्र की परिकल्पना को बहुत सतही स्तर पर मात्र शब्दों के अर्थ के आधार पर ही नहीं देखा जा सकता। यहां की चिन्तन परम्परा बहुत कुछ अन्तर्मुखी और रहस्यात्मक है। अत: उसकी सतह को पाने के लिए हमें अनेक तत्वों का अन्वेषण करना पड़ता है। अश्विनों का स्वरूप जहां एक ओर अन्य देवताओं के साथ सूक्ष्म है वहीं अनेक आख्यायिकाओं के माध्यम से उनके स्थूल रूप या स्थूल व्यक्तित्व पर भी प्रकाश पड़ता है।

इसी बात को प्रोफेसर गोल्ड स्ट्यूकर[१२] (Prof.Golstueker) ने इस प्रकार व्यक्त किया है :-

"The myth of the Asvins is one of that class of myths in which two distinct elements, the cosmical and the human or historical have gradually

----

११. पृ० - J. Gonda : Dual Deities, P. 9 f.

१२. पृ० - Chamber's Cyclopaedia.

become blended into one .... The historical and human element in it, I believe, is represented by those legends which refer to the wonderful cures effected by the Asvins and to their performances of a kindred sort; the cosmical element is that relating to their luminous nature. The link which connects both seems to be the mysteriousness of the nature and effects of light and of the healing art at a remote antiquity. It would appear that these Asvins, like the Ribhus, were originally renowned mortals, who, in the course of time, were translated into the companionship of the Gogs."

ऋषियों की अन्तर्दृष्टि या अन्त:शक्ति, जिसे गोंदा ने अपने दूसरे ग्रन्थ में[१३] 'Visionar power' कहा है, अन्त:सलिला सरिता की तरह प्रवाहित होती है, जिससे वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का दर्शन करती है। उसमें लौकिक कम और पारलौकिक तत्व अधिक हैं। उनके लिये भौतिक सृष्टि और अलौकिक सृष्टि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जिस भौतिक सृष्टि को हम यहां देखते

---

१३. J. Gonda - The Vision of the vedic poets 1963, 372 p..

हैं, वही सृष्टि अलौकिकता के अवगुंठन में बंधी हुई दूसरे लोकों में भी है, जिसका दर्शन मात्र दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता है। ऋषियों ने इस दिव्य-दृष्टि के आधार पर देवताओं की सृष्टि की अभिव्यक्ति की है। समस्त भारतीय देवशास्त्र इसी चिन्तन परम्परा का विकास है। इसी के परिप्रेक्ष्य में हम अश्विनौ के द्वन्द्वात्मक स्वरूप की परिचर्चा कर सकते हैं।

अधिकांश सन्दर्भों में अश्विनौ को आकाश के पुत्र रूप में (दिवो नपाता)[१४] व्यक्त किया गया है। एक स्थान पर समुद्र या नदी को उनकी माता के रूप में कहा गया है (सिन्धुमातरा)[१५] अन्य सन्दर्भों में वे विवस्वत् और त्वष्टा की पुत्री सरण्यू की सन्तान रूप में हैं।[१६]

अधिकांश सन्दर्भों में उनके द्विवचनान्त रूप अश्विनौ

---

१४. अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ।।
- ऋ० १.१८२.१

१५. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ।
- ऋ० १. ४६.२

१६. अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः।।
- ऋ० १०.१७.२.

(अश्विना) का ही प्रयोग कर उन्हें सम्बोधित किया गया है।[१७] इनके साथ द्विवचनान्त क्रिया-पदों का ही प्रयोग किया गया है। ऋषियों ने एक ही हवि के माध्यम से एक साथ दोनों को हवि प्रदान करने के लिये आदेश दिया है[१८] और एक ही साथ ये दोनों यजमान को उपहार भी देते हैं।[१९] इनके दूसरे नाम नासत्यौ-दस्त्रौ (नासत्या-दस्त्रा) भी एक साथ ही प्रयोग किये गये हैं।[२०] एक सन्दर्भ में उनके एक वचनान्त रूप नासत्य (परिज्मने नासत्याय) का प्रयोग हुआ है, जिसके आधार पर औल्डेनबर्ग ने यह कहा है कि अश्विनौ सम्बन्धी देव-शास्त्र के मूलरूप में इसे स्वीकार करना चाहिये।[२१]

अश्विनौ के सम्बन्ध में एक स्थान पर यह कहा गया है कि उनमें से एक द्यौस् की और दूसरे सुमख की सन्तान है (अन्य:

----

१७. ऋ० — १.३४.३ ; ४ ; ५ ; १.४६.६ ; ७ ; ५.७५.१ ; ६.६२.५ ; ७.६७.१ ; ३ ; ७.७०.६ ; ८.८५.१.

१८. वही ५.७७.१ ; ७.६८.२.

१९. अयं वां मधुमत्तम: सुत: सोम ऋतावृधा।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ।।
- ऋ० १.४७.१.

२०. ऋ० १.१५८.
वही ५.७५.३.

२१. Olden Berg, Religion des Veda, p. 211 f.

सुमखस्य सूरिर् दिवो अन्य: सुभग: पुत्र ऊहे)[२२] जो रनू के आधार पर इस बात को प्रकट करता है कि एक की उत्पत्ति दिव्य लोक से है और दूसरे की मानवीय लोक है (Dissociation inattendue des Asvin l' an d' origine humaine, l' autre divine).[23]

कुछ ऐसे भी सन्दर्भ हैं जिनमें उनके अनेक प्रकार की उत्पत्तियों का संकेत है (नाना जातौ)[२४]।

अश्विनौ का सूर्या के साथ सम्बन्ध उनके सम्बन्ध में कुछ और नये तथ्यों को जोड़ता है। सूर्या का सम्बन्ध सूर्य और सोम दोनों से है। सोम अवान्तर काल में चन्द्रमा का वाचक बन गया। इससे सूर्य और सोम के स्थान पर अश्विनौ का सूर्या के पति रूप में स्थापित होना उनके स्वरूप की मौलिक स्थापनाओं की ओर संकेत करता है, जिससे यह कहा जा सकता है कि मूलत: अश्विनौ की अवधारणा सूर्य और चन्द्रमा के साथ जुड़ी हुयी है।

प्रात:काल में उनका उदित होना और उषा देवी को जगाना उनके स्वरूप के एक अन्य पक्ष को व्यक्त करता है। उषस् के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध और ऋग्वेद में उनका `तमोहना`[२५] कहा

---

२२. ऋ० १. १८१.४.

२३. Renou, E.V.P XVI, p 28 ; द्र० या०,निरु० १२.३.

२४. तद् षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनुष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथु: ।।
— ऋ० ५.७३.४.

२५. ऋ० ३.३९.३.

जाना कुछ विशिष्ट गुणों की ओर संकेत करता है । इसी के आधार पर हैरिस (Harris) ने उन्हें प्रात:कालीन नक्षत्र (Morning Star) कहा है।[२६] इसीलिये दुमेज़ील (Dumeczil) ने ऋग्वेदीय अश्विनौ और महाभारत में प्राप्त अश्विनौ के स्वरूप में विशिष्ट अन्तर को व्यक्त किया।[२७] यह अन्तर मात्र व्यक्तित्व के विकास का ही नहीं, वरन् अनेक रूपों में प्राप्त आख्यायिकाओं और कथाओं के विकास का है । ऋग्वेद में भी अश्विनौ के इस युग्म में व्याप्त अन्तर की चर्चा की गयी है । एक सन्दर्भ में यह कहा गया है कि 'दोनों के हाथ समान है किन्तु दोनों की व्याप्तियों में अन्तर है, दोनों की माता एक है किन्तु दोनों दुग्धपान अलग-अलग करते हैं । दोनों यमल है किन्तु दोनों समान भोजन नहीं करते अथवा किसी स्थान को समान रूप में पूर्ण नहीं करते ।[२८]

अश्विनौ के मौलिक स्वरूप, उनके मौलिक उद्भव आदि की संधारणाओं में प्राचीनकाल से ही विवाद बना हुआ है । यास्क और उनके पूर्वकालीन मनीषियों में भी अश्विनौ सम्बन्धी अवधारणाओं में विवाद होता रहा है । प्राचीन काल में उन्हें समय के दो बिन्दुओं को मिलाने वाले या काल सन्धि को उत्पन्न करने वाले देवता के रूप में स्वीकार किया गया है अथवा ऐसी शक्ति के रूप में ग्रहण किया गया है, जो प्रत्येक वस्तु को अपने अन्तर्गत व्याप्त करती है । इन दोनों में

---

२६. द्र० - J.Gonda, Dual Deities, P 46.

२७. द्र० - गोंदा, वही, पृ० ४७

२८. ऋ० १०. ११७. ६.

से एक आर्द्रता और दूसरा प्रकाश का वाहक है । उनके नाम के कारण उन्हें 'अश्वों का स्वामी' या 'प्रकाश को धारण करने वाला' माना गया है ।[29] उन्हें आकाश और धरती के प्रतिनिधि रूप में माना गया है ।[30] कुछ लोगों ने उन्हें सूर्य और चन्द्रमा के रूप में भी स्वीकार किया है जिस विचारधारा को लुडविग (Ludwig)[31] और हिलेब्रान्ट (Hillebrandt)[32] तथा कुछ अन्य लोगों ने[33] भी ग्रहण किया है ।

निरुक्त में ऐतिहासिकों की चर्चा की गयी है जिन्होंने अश्विनों को दो गुणी राजाओं के रूप में व्यक्त किया है,[34] जिस विचार-धारा को गेल्डनर (Geldner) ने भी स्वीकार किया है । यास्क ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि वे अर्धतमस् और अर्ध प्रकाश से

----

२६. निरु० १२. १

३०. काठ० सं० १३. ५, १८५. २४.
 श० ब्रा० ४. १. ५. १६.

31. A Ludwig, Der Rgveda, 111, Prag-Leipzig 1978, p.34.

32. Hillebrandt, O.C. : 111, P. 379 f f.

33. See also R. Shamashastray, in Q. Journ, Myth, SOC. Banglore 20, P. 80 ff.

34. R.Pischel and K.F. Geldner, Vedische studien 11, stuttgart 1897, P. 31.

युक्त उषस् से पूर्व उत्पन्न होने वाले देवता हैं, जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने twilights कहकर प्रतिपादित किया है । इसी की व्याख्या करते हुये मैकडोनेल (Macdonell) ने यह कहा है —

The very term 'twilight' N: i.e. twilight indicates the analysis into two separate lights, of gray light preceding the dawn. Twilight, then, may be interpreted as either one light made from the fusion of two separate lights, or two lights which have coalesced into one. The twilight has a distinct character of its own, separate from one of night, day, dawn or sun rise.[35]

ओल्डेनबर्ग (Oldenberg)[३६] ने प्रात: और सायंकालीन नक्षत्रों के साथ उनका तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है । वेबर (Weber)[३७] ने मिथुन राशि के अन्तर्गत दो नक्षत्रों को इसमें स्वीकार किया है, जिसे हम पुनर्वसु नक्षत्र की संज्ञा दे सकते हैं । यह अटकलबाजियां प्राय: वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों में यज्ञ से सम्बन्धित नक्षत्रों के आधार पर की गयी प्रतीत होती है, जहां पुनर्वसु,फाल्गुनी आदि नक्षत्रों की चर्चा मिलती है ।

----

३५. Macdonell V M, P 54.

३६. Oldenberg : Religion-Des Veda, P. 210.

३७. A Weber - Indishe Studien 5, P. 234.

कुछ भारतीय विद्वानों ने भी अश्विनों के स्वरूप की व्याख्या करने का प्रयास किया है, जिनमें E.N. Ghose और R. K. Prabhu (प्रभु) ने इन्हें अश्विनी नक्षत्र के साथ समन्वित किया है। साथ ही अश्विनों के पश्चात् आने वाला दूसरा नक्षत्र भरणी उनकी दृष्टि में अश्विनों के रथ का कार्य करता है। इन्हीं नक्षत्रों को ऋषियों ने काव्यात्मक दृष्टि में उपस्थित कर नये देवता का स्वरूप दिया है।[३८] बेर्गेन्य (Bergaigne)[३९] ने अश्विनों में अधिदैविक और आधिभौतिक (Celeste ct terrestre) दोनों रूपों को देखने का प्रयास किया है। इस प्रकार पाश्चात्य और भारतीय अनेक अन्य विद्वानों ने अश्विनों के स्वरूप की विभिन्न पुस्तकों एवं लेखों के माध्यम से चर्चा की है जिससे एक व्यापक विवाद की ही सृष्टि हुयी है, कोई निश्चित परिणाम नहीं मिलता है।

अश्विनों के सम्बन्ध में एक और चर्चा महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। वह है उनका प्रागैतिहासिक अथवा प्राग वैदिक स्वरूप। अनेक प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अश्विनों के प्राग-वैदिक रूप की भी चर्चायें की हैं।[४०] जिनका आकलन एवं मूल्यांकन

---

38. R.K. Prabhu, J. On Inst. Baroda Vol. 5, P. 203 f.f.

39. The Religion of Vedique 11P. 494 ff.

40. Macdonell, Vedic Mythology, Oldenberg, Religion des Veda, Weber, Indsche studian, Hopkins JAOS...;Epic Mythology; G.C.Jhala J B U 1933; Bergangne Rel. de Ved Hillebrandt, vedische Mythology; V. Machek, Origine of the As'vins, Archiv orentalani 15.

यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। अश्विनौ के प्राग वैदिक स्वरूप की चर्चा एशिया माइनर के बोगज़कोई स्थान में प्राप्त कुछ मुद्राओं के साथ संयुक्त है। जिनमें हिताइत और मितानी के दो राजाओं- सुब्बी लुलिउमा और मत्ति उर्ज़ - के मध्य हुयी सन्धि का उल्लेख किया गया है। इसमें कुछ देवताओं को साक्षी रूप में सम्बोधित किया गया है जिनके साथ नासत्यौ का नाम भी जुड़ा हुआ है - उद्धरण इस प्रकार से है —

Iiani mi- it - ra - as - si-i tani

Uru - W - na - as' - si - el

(Voriant) a ru - na - as' - si - el

ILU in - dar ILane na - sa - a (t -ti- la-a)n-na

(Variant) in-dara na- s' a ati ti-ia-na[41]

इसके आधार पर बहुत से लोगों का मत है कि ऋग्वेद से पूर्वकालीन संस्कृतियों में अश्विनौ की देवता के रूप में प्रतिष्ठा व्याप्त थी। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि अश्विनौ के यमल नाम का ग्रहण सम्भव है ऋषियों ने अनेक लोक-कथाओं में व्याप्त यमल नामों के आधार पर किया हो जैसा कि गोंडा ने स्वीकार किया है।[४२]

---

४१. H. Jacobi, On the Antiquity of Vedic culture, J R A S 1909, P 723.
qutoted by S.N.Shukla,Rgveda Chayanika 1974, P.4.

४२. J. Gonda : Op. Cit, p. 51.

किन्तु बोगज़्कोई के उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं के आधार पर अश्विनौ के प्रागैतिहासिक रूप की चर्चा करना बहुत उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इन मुद्राओं का काल चौदहवीं शती ईसा पूर्व के आस-पास है। जबकि ऋग्वेद की रचना इससे बहुत पूर्व हो चुकी थी। अवेस्ता के काल के साथ तथा अवेस्ता में प्राप्त देवताओं के नाम के साथ तो इनका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, किन्तु ऋग्वेद के काल के साथ इसकी तुलना करना या उसके पूर्वकालीन इसको मानना संगत नहीं प्रतीत होता है। ऋग्वेद में नासत्या और दस्रा - ये दोनों नाम अश्विनौ के अलग-अलग गुणों के वाचक है, जिनका प्रयोग प्रारम्भिक अवस्था में विशिष्ट विशेषणों के रूप में ही हुआ। किन्तु धीरे-धीरे वे इसी नाम से बुलाये जाने लगे और धीरे-धीरे ब्राह्मण ग्रन्थों एवं अवान्तरकालीन वैदिक साहित्य में इन नामों की उत्पत्ति के साथ अनेक अन्तर्कथायें जुड़ती चली गयी है। अत: ओल्डेनबर्ग,[४३] बेर्गैन्य, मैकडानेल,[४४] हिलेब्रान्ट,[४५] ब्लूमफील्ड[४६] आदि के द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त कि अश्विनौ का सम्बन्ध प्राग-वैदिक काल या प्रागैतिहासिक अथवा भारोपीय अथवा भारत-ईरानी संस्कृतियों से जुड़ा हुआ है, ठीक नहीं प्रतीत होता। वैदिक संस्कृति का उद्भव और विकास पश्चिम से पूर्व की ओर मानना ही अपने आप में असंगत है। ईरानी संस्कृति अथवा प्राचीन ईरानी संस्कृति में व्याप्त भारतीय

----

४३. Olden berg, Religion d.R.V. P. 213.

४४. Macdonell, V. M. P. 53-54.

४५. Hillebrandt V.M. III, P. 379-380.

४६. Bloomfield, The Religion of the Veda, P 113-115.

मूल के देवताओं के अनेक नाम सांस्कृतिक सम्बन्धों के आधार पर भारतीय भूमि से उदभूत होकर धीरे-धीरे पश्चिम की ओर गये हैं।

जहां तक युग्म देवताओं के साथ इन यमल देवताओं के सम्बन्धों अथवा तुलनाओं का सम्बन्ध है उनके स्वरूप और इनके स्वरूप तथा देवशास्त्रीय विवरणों में बहुत अन्तर है। जितने भी युग्म देवता हैं, उन सब का युग्मों के साथ-साथ अपना निजी व्यक्तित्व भी महत्वपूर्ण है, चाहे वे इन्द्र हों या अग्नि, या विष्णु, या बृहस्पति, चाहे मित्र हो या वरुण, चाहे उषस् हो या रात्रि - सभी का देवशास्त्रीय विवेचन अलग-अलग रूप में किया जा सकता है और साथ ही उनके युग्मों की कल्पना में कुछ उभयात्मक गुणों का आकलन हो सकता है। किन्तु अश्विनों के साथ यह कठिनाई है कि उन दोनों के व्यक्तित्व को पृथक्-पृथक् रूप में नहीं देखा जा सकता। उनका नामोच्चारण होते ही दोनों की कल्पना साथ-साथ साकार हो उठती है।

यमल रूप में और भी देवता कहे गये हैं किन्तु अश्विनों के जोड़े और उनमें भेद है। जैसे इन्द्र और अग्नि को यमल कहा गया है। उनके सम्बन्ध में कहा गया है— 'समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेह मातरा।'[47] इस प्रकार वे जुड़वे भाई एक ही पिता से किन्तु दो माताओं से उत्पन्न हुआ है। जबकि अश्विनों की उत्पत्ति अनेक रूपों में हुयी है। क्योंकि उन्हें 'नाना जातो'[48] कहा है

---

४७. ऋ० ६.५६.२

४८. वही ५.७३.४

और वहाँ उनकी उत्पत्ति भी कही गयी है - (इहेह जाता समवावशीताम्)[49] बेर्गैन्य[50] और रनू[51] ने इन्द्र और अग्नि के साथ ही इनका तादात्म्य स्थापित किया है । मैकडानेल ने उन्हें अलग-अलग उत्पन्न मानकर समानता होने के कारण यमल माना है ।[52] ऋग्वेद १.५३.४ और ७.१.१२ में अश्विनौ का एकवचनान्त रूप प्राप्त होता है । इसी के आधार पर मैकडानल प्रभृति ने अश्विनौ की उत्पत्ति अलग-अलग रूप में प्रतिपादित की है । किन्तु इन सन्दर्भों में भी अश्विनौ एक का नहीं, दोनों का ही वाचक है ।

ऋ० ८.२६.८ में इन्द्रानासत्या आया हुआ है । जिससे कुछ लोगों का मत है कि इन्द्र और नासत्य अर्थात् अश्विनौ में एक को ही यहाँ इन्द्र के साथ यमल रूप में उपस्थित किया गया है । किन्तु ऋग्वेद २-२९-३ में इन्द्रामरुत: को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मरुद्गणों के साथ इन्द्र की चर्चा है वैसे ही दोनों अश्विनौ के लिये इन्द्रानासत्या में नासत्या का प्रयोग हुआ और इस प्रकार इन्द्र का अश्विनौ से घनिष्ठ सम्बन्ध है जिस प्रकार इन्द्र और अग्नि में भैषज्य के गुणों का सन्निवेश किया गया है वैसे ही अश्विनौ में भी है । जिस प्रकार ऋग्वेद के एक सन्दर्भ में

---

४९. ऋ० १. १८१.४

५०. Op. Cit II P. 494 f.

५१. E.V.P. Vol. XIV, P. 122.

५२. Op. Cit. P. 128.

अश्विनों को जेन्यावसु[५३] कहा गया है वैसे ही इन्द्र और अग्नि के लिये भी इसका प्रयोग हुआ है।[५४] इसी आधार पर बेर्गेन्य (Bergainge) ने इन्हें इन्द्र और अग्नि के यमल रूप के विकासात्मक स्वरूप में ही देखा है। किन्तु इस आधार को स्वीकार कर अश्विनों को इन्द्र और अग्नि का यमल रूप मानना संगत नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार अग्नि और सोम के साथ भी उनका तादात्म्य उपस्थित करना बहुत संगत नहीं है। जैसा कि बेर्गेन्य (Bergainge) ने किया है।[५५] कुछ ही स्थानों पर अग्नि और सोम के कार्यों का अश्विनों के कार्य के साथ तादात्म्य उपस्थित किया जा सकता है और कुछ ऐसी आख्यायिकाएं भी हो सकती है जिनका सम्बन्ध अश्विनों के अतिरिक्त अन्य देवताओं के साथ भी है। किन्तु उनके आधार पर यह मान लेना कि अश्विनों अग्नि, इन्द्र अथवा सोम के ही विकासात्मक रूप है, बहुत उचित नहीं होगा।

द्यावा-पृथिवी का भी एक ऐसा युग्म है जिसकी तुलना अश्विनों के साथ की जा सकती है। उन्हें पितरा,[५६] मातरा,[५७] जनितृ[५८]

----

५३. ऋ० ७.७४-३ ; वाज० सं० ३३।३८

५४. वही ८.३८.७

५५. Op. Cit.II, P. 437 ff.

५६. ऋ० ७.६७.१

५७. वही १०.३५.३

५८. वही, १.१२४.५ ; २.१३.१ ; ३.४८.२.

के रूप में एक साथ वर्णित किया गया है तथा साथ ही उन्हें अलग-अलग पिता और माता के रूप में भी कहा गया है । समस्त देवता उनसे उत्पन्न हुये हैं, फिर भी वे स्वयं यमल के रूप में कहे गये हैं (यम्य संयति)[५६] (यम्या सबन्धुः)[६०] यद्यपि द्यावा और पृथिवी का भी यमल रूप अश्विनौ जैसा है किन्तु नाम रूपादि में उनकी भिन्नता स्पष्ट है । इसलिये यह मानकर नहीं चला जा सकता कि अश्विनौ सम्बन्धी देवशास्त्र इन युग्मों के आधार पर विकसित हुआ है । सृष्टि प्रक्रिया से सम्बन्धित जो भी दार्शनिक सूक्त हैं उनमें वाक्-सूक्त बहुत ही महत्वपूर्ण है । जहां वाग् देवी स्वयं सबके भरण-पोषण की कर्त्री के रूप में उपस्थित होती है और वह जिनका-जिनका संभरण करती है उनमें कुछ प्रसिद्ध देवता युग्म भी हैं, इन युग्मों में मित्रावरुण,इन्द्राग्नी और अश्विनौ का नाम मुख्य रूप से लिया गया है । इस प्रकार के युग्मो की कल्पना उनके कार्यों की समानता, एक रूपता अथवा तादात्म्य के कारण उत्पन्न हुयी है । युग्मों की अवधारणा में वैदिक भाषा में कुछ ऐसे वाक्यों अथवा शब्द समूहों को जन्म दिया है जिसके कारण जहां भी युग्मों की कल्पना आयी उन सभी सन्दर्भों में उन वाक्यों अथवा शब्द समूहों का प्रयोग सभी के साथ समान रूप से किया गया है जिससे युग्म कल्पना से सम्बन्धित समस्त देवतावों में कहीं न कहीं एक दूसरे से तादात्म्य उपस्थित होता रहता है तथा समानता दिखायी देती है ।

----

५६. ऋ० ६. ६८. ३. एस० एस० भावे, सोम हिम्स ३, पृ० १४२

६०. ऋ० ५. ४७. ५.

युग्म देवताओं के अन्तर्गत एक अन्य महत्त्वपूर्ण युग्म है, उषस् और रात्रि का।[६१] जिन्हें नक्तोषसा या उषासानक्ता या अहोरात्र के रूप में कहा गया है। उनके साथ भी अश्विनौ का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यज्ञ प्रक्रिया के अन्तर्गत जब सोम गृहों का देवताओं के लिये वितरण किया जाता है[६२] तो वह ऐन्द्रवायौ, मैत्रा-वरुण आदि सोम गृहों के साथ आश्विन गृह की उपस्थिति इन अनेक युग्मों के साथ अश्विनौ के युग्म की परिकल्पना में सहायक है जिसकी स्थिति अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। इस प्रकार के शब्द-समूह या वाक्यांश अनेक युग्म देवताओं के साथ आवृत होकर एक-दूसरे को या तो समीप ला देते हैं या एक युग्म से दूसरे युग्म को अधिक प्रतिष्ठा देने का कार्य करते हैं, जैसा कि ब्लूमफील्ड[६३] ने कहा है। इसके कारण किसी भी देवता युग्म के उद्भव और विकास के इतिहास को अन्वेषित करने में कठिनाइयां उत्पन्न होती है। अश्विनौ के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। ऐसे बहुत से शब्द समूहों, वाक्यांशो और विशिष्ट विशेषणों का प्रयोग उनके साथ हुआ है, जो अन्य अनेक

---

६१ ऋ० १.३३.७, ६६-५, ११३.३ ; १४२.७ ; ८-५-६.

६२. शांखा० श्रौ० सू० ७.२.१.
आप० श्रौ० सू० ११. २१. ३
पं० वि० ब्रा० २५. १०-१२
आ० गृ० सू० २. २.४
कौ० ब्रा० ७४. १५

६३. M. Bloomfield Rg. Repetitions, P 629.

देवता युग्मों के साथ भी प्रयुक्त हुये हैं। इसलिये किस देवता का उदभव पहले हुआ और किसका अवान्तर काल में, इस अवधारणा को सुनिश्चित करना बहुत ही कठिन है।

देवताओं के द्वन्द्वात्मक स्वरूप के साथ एक और मुख्य बात जुड़ी हुयी है, वह है मिथुनीकरण अथवा मिथुन भाव। जिसकी चर्चा तै० सं० के एक सन्दर्भ में बहुत स्पष्ट रूप में की गयी है। देवताओं को अपने आप में अपूर्णता की अनुभूति हुयी, जिससे उन्हें अपनी समृद्धि में बाधा दिखायी पड़ी। उन्होंने पुष्टि का दर्शन मिथुन रूप में किया। उससे उनमें सहमति नहीं हो सकी। अश्विनौ ने कहा यह हमारी है इस पर और किसी का अधिकार नहीं है जिससे वह पुष्टि अश्विनौ की ही हो गयी। अश्विनौ को जो दो गोवों (यामिम् वशाम्) का दान करता है वह अपने भाग्य रूप में पुष्टि को प्राप्त करता है और अश्विनौ उसको पुष्टि प्रदान करते हैं तथा वह पशु और प्रजा से समृद्ध होता है।[६४] इसी प्रकार मै० सं० में भी यह बात कही गयी है।[६५] अधिकांश सन्दर्भों में मिथुन का सम्बन्ध प्रजनन से है। मै० सं० में प्रजापति के सम्बन्ध में कहा गया है - तपो वै तप्त्वा प्रजापतिर विधायात्मानम् मिथुनं कृत्वा प्रजयाच पशुभिश्च प्रजायत[६६] (प्रजापति ने तप करके अपने को विभाजित किया और अपने को मिथुन कर प्रजा और पशु के द्वारा स्वयं को उत्पन्न किया)। यही बात बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कही गयी है -

----

६४. तै० सं० २.१.६.३.

६५. मै० सं० १.६.४ ; ६२.१८ ; १.६.८ ; ६६.११.

६६. मै० सं० १.६.६.

वहां यह कहा गया है कि ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ में केवल ब्रह्म् था, अकेले होने से वह विकसित नहीं हो सका, जिससे उसने अपने को मिथुन कर सृष्टि का विकास किया।[६७] इस मिथुन भाव की चर्चा वैदिक साहित्य के अनेक सन्दर्भों में की गयी है और इनका सम्बन्ध प्राय: यज्ञ प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। तै० सं०,[६८] काठ० सं०,[६९] ,मैत्रा० संहिता,[७०] आदि में अनेक यज्ञीय सन्दर्भों में इस मिथुन भाव की चर्चा है, जिनमें देवताओं के द्वन्द्वात्मक स्वरूप और यज्ञ सन्दर्भों में जुड़ी वस्तुओं के द्वन्द्वभाव की एकात्मकता को ध्यान में रखकर सृष्टि-प्रक्रिया के विकास की चर्चा की गयी है। इस विकास में अश्विनौ भी भागीदार है। अत: वेद में युग्म देवताओं का जो भी स्वरूप है उनके साथ अश्विनौ का घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु इस घनिष्ठ सम्बन्ध के होते हुये भी अन्य देवता युग्मों से अश्विनौ का युग्म नितान्त भिन्न और स्वतंत्र है। जिसे हम युग्म रूप में देखते हुए भी एकात्मकता अथवा एकीकरण की कल्पना के साथ जुड़ा हुआ पाते हैं अथवा हम यह कह सकते हैं कि अश्विनौ एक युग्म रूप में होते हुये भी अपने कार्यों में व्यष्टि के ही भाव का प्रदर्शन करते हैं।

-o-

---

६७. बृ० उ० १. ४. ११.

६८. तै० सं० २.६.१.४ ; ६.५.११.३.

६९. काठ० सं० १०.१ ; १२-५.

७०. मै० सं० २.१.७ ; ३.६.१ ; ८.११.

७१. श० ब्रा० १.४.१.२ ; १.२.५-१५ ; १.३.१.१८,
१४. १. ३.१.

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय
-0-

वैदिक देवताओं का वर्गीकरण और अश्विनौ का स्थान

वैदिक देवशास्त्र में अश्विनौं के स्वरूप की परिचर्या करने के पूर्व हमें वैदिक देवताओं के वर्गीकरण और उसके अन्तर्गत अश्विनौ के स्थान का निर्धारण कर लेना आवश्यक है। किसी भी देवशास्त्र के भौतिक या स्थूल, मानसिक या भावात्मक, सामाजिक या ऐतिहासिक-तीन प्रकार के वर्गीकरण किये जा सकते हैं। भौतिक वर्गीकरण के अन्तर्गत किसी भी देवता का स्थूल रूप या उसकी संरचना अथवा उसकी विभिन्न शारीरिक या दृश्यात्मक गतिविधियों का आकलन किया जा सकता है। मानसिक या भावात्मक वर्गीकरण के अन्तर्गत हम उन देवताओं की परिकल्पना करते हैं जिनका कोई रूप नहीं है और जो केवल मानसिक संवेगों की देवीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत समाहित हैं। सामाजिक या ऐतिहासिक विभाजन के अन्तर्गत हम देवताओं के विकास या उनके वर्गीकरण को किसी विशिष्ट समाज की संरचनात्मक शैली के आधार पर स्वीकार करते हैं, जिसमें जिस प्रकार से समाज का विभाजन होता है वैसे ही हम उस समाज के विभिन्न देवताओं को भी वर्गीकृत पाते हैं।

वैदिक देवताओं के वर्गीकरण का इतिहास भी विभिन्न रूपों में विश्लेषित किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय विचार-धारा से लेकर आधुनिक प्राच्य एवं पाश्चात्य विचारधाराओं का जो धरातल है, वह विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत है। सभी पर एक सरसरी दृष्टि डाल लेना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय

विचारधारा के अन्तर्गत हम स्वयं वैदिक ऋषियों की वाणी को ही आधार मानकर देवताओं का वर्गीकरण कर सकते हैं। ऋग्वेद सप्तम मंडल के ऋषि वसिष्ठ ने देवताओं को दिव्य, पार्थिव और जलीय या आन्तरिक्षीय - तीन रूपों में विभाजित करते हुये उनसे कल्याणकारी होने की प्रार्थना की है --

'शं नो विश्वे देवा भवन्तु - -- -शं नो दिव्या: पार्थिवा:
शं नो अप्या: ।'[१]

इसी प्रकार दशम मंडल के ऋषि बैकुण्ठ इन्द्र ने देवताओं को तीन रूपों में विभाजित किया --

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तव:'[२]

और वसुकर्ण वासुक ने भी इसी बात की पुष्टि की है --

'देवां आदित्यां अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ।'[३]

वास्तव में इसी बात को यदि हम अनेक ऋग्वेदीय 'विश्वेदेवा:' सूक्तों के अन्तर्गत अध्ययन करें तो हम यह पायेंगे कि ऋषियों ने देवताओं का वर्गीकरण अनेक रूपों में किया है, जैसे - चित्रराधस:,[४]

---

१. ऋ० ७. ३५-११.

२. वही १०. ४६. २.

३. वही १०. ६५. ६.

४. वही ८. ११.६ ; १०. ६५. ३.

सुरातय:,[5] गति-षाच:;[6] अभिषाच:[7] इत्यादि । इस प्रकार अनेक रूपों में देवताओं का वर्गीकरण किया गया है । अथर्ववेद में भी `दिवषिद:`, `अन्तरिक्ष सद:` और `भूमिसद:` रूप में देवताओं का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया गया है ।

`ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीर सर्पिरथो मधु`[8]

ऋग्वेद में इन समस्त देवताओं का विभाजन ११-११ की संख्या में किया गया प्रतीत होता है । प्रथम मण्डल के एक मन्त्र में कहा गया है —

ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्या मध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ।।[9]

संहिताओं में प्राप्त उपर्युक्त वर्गीकरण को ही ध्यान

---

५. ऋ० ५. ७६. ४ ; ६. ८१. ४ ; १०. ६५. ४ ; ७८. ३.

६. शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु
शमभिषाच: शमु रातिषाच: शं नो दिव्या: पार्थिवा:
शं नो अप्या: ।।
- ऋ० ७. ३५. ११.

७. वही ७. ३५. ११.

८. वही १०. ६. १२.

९. वही १. १३९. ११.

में रखकर सम्भवत: यास्क ने देवताओं का वर्गीकरण तीन रूपों में किया है । उनका कथन है कि, `तिस्त्र एव देवता इति नैरुक्ता: । अग्नि: पृथिवी स्थान:, वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्ष स्थान: । सूर्यो द्युस्थान:`,[१०] इस प्रकार उन्होंने निरुक्तकारों के मत का प्रदर्शन किया है जिसके द्वारा देवताओं को पृथिवी स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय और द्युस्थानीय इन तीन रूपों में वर्गीकृत किया गया है । किन्तु यास्क ने इसी परम्परा को और अधिक विस्तृत करते हुये कहा है कि उन देवताओं के परम ऐश्वर्य के कारण उन तीनों में प्रत्येक के भी बहुत से नाम या विभाजन सम्भव हैं । एक देवता अपने महान् ऐश्वर्य के कारण भेद से अथवा कार्य भेद से बहुत रूप में स्तुति किया जाता है[११] । इस प्रकार प्राचीन भारतीय विचारधारा में समस्त देवताओं का मूल रूप एक है । किन्तु कार्य-कारण भेद से उसके तीन रूपों में विभाजन किये जाते हैं । इतने पर भी समस्त देवताओं के मूल में एक ही परम तत्व की सत्ता स्वीकार की जाती है जिसे ऋग्वेदिक ऋषि `एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति`[१२] के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

----

१०. निरु० ७ ।२

११. माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते ।

- निरु० ७ ।१

तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति ।

- निरु० ७।२

१२. ऋ० १. १६४. ४६.

आधुनिक काल में अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक देवताओं के वर्गीकरण का प्रयास किया है। जर्मन विद्वान उजेनर ने[13] अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ग्योटरनामेन में आर्यों के देव मंडल के स्वरूप के विकास की तीन स्थितियों का आकलन किया है। वे इस प्रकार हैं :—

१- क्षाणिक देवता :-

जो देवता किसी विशिष्ट क्रिया के आधार पर उस क्रिया के क्षणों में ही उत्पन्न होकर उस क्रिया के कार्य काल तक ही सीमित रहते हैं या जिनका उस क्रिया के रूप में ही दैवीकरण होता है उन्हें क्षाणिक देवताओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है। वैदिक देवताओं में इस प्रकार के कोई भी देवता नहीं प्राप्त होते हैं।

२- विशेष देवता :-

जो देवता प्रकृति के किसी विशेष अंग पर या क्षेत्र पर अपना पूर्ण अधिकार रखते हैं उन्हें विशेष देवताओं के अन्तर्गत लिया जाता है। वेद में सूर्य, उषस्, अग्नि, आदि ऐसे ही देवताओं के अन्तर्गत है।

३- वैयक्तिक देवता :-

जब कोई देवता विशेष देवता अनेक अन्य देवताओं के

---

१३. गयाचरण त्रिपाठी, वैदिक देवता : उद्भव और विकास, पृ० १६३।

गुणों का अपने अन्दर विकास करके अपने व्यक्तित्व को अधिक विकसित कर एक स्वतन्त्र देवता का रूप ग्रहण कर लेता है तो उसे व्यक्तिगत देवता के रूप में स्वीकार किया जाता है । जैसे-इन्द्र, वरुण आदि, जिनमें सूर्य अग्नि आदि देवताओं के सम्मिलित गुण समाहित हैं ।

उज़ेनर का यह वर्गीकरण वैदिक देवताओं के वर्गीकरण की समस्या को सुलझाने में असमर्थ प्रतीत होता है क्योंकि यदि हम इन तीन रूपों में देवताओं का वर्गीकरण करना चाहें तो कोई भी देवता इस सीमा-रेखा के अन्तर्गत समाहित होता हुआ नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि यहां न कोई क्षणिक है, न विशेष और न व्यक्तिगत । यहां किसी विशिष्ट क्रिया, किसी विशिष्ट स्थान या क्षेत्र अथवा काल के अन्तर्गत देवताओं की सीमा नहीं होती । वरन् वह सर्व प्रभुता सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्वात्मा के रूप में प्रतिष्ठित होकर अलौकिकता के परिवेश का निर्माण करते हैं और उसी अलौकिकता में हम उनके दिव्यत्व का दर्शन करते हैं । अत: हम उज़ेनर के आधार पर उनका वर्गीकरण नहीं स्वीकार कर सकते ।

देवताओं के इस वर्गीकरण का प्रयास अन्य लोगों ने भी किया है, जिनमें ब्लूमफील्ड (Bloomfield) के मत की चर्चा करना यहां आवश्यक है । ब्लूमफील्ड ने वैदिक देवताओं का वर्गीकरण पांच रूपों में किया है[१४] —

----

१४. M. Bloomfield, Rigveda Repetitions, p 88 f.

(१) प्रागैतिहासिक काल के देवता -

बहुत से ऐसे वैदिक देवता हैं जिनका उल्लेख भारत के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों में भी हुआ है जैसे - अवेस्ता में वर्णित प्राचीन ईरानी देवता और फ्रियस इत्यादि ग्रीक देवता, जिनका तादात्म्य वैदिक देवताओं के साथ उपस्थित किया जाता है। जैसे - द्यौ, वरुण, मित्र, अर्यमन आदि देवताओं के उल्लेख अनेक प्राचीन या प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में प्राप्त होते हैं।

(२) पारदर्शी अथवा स्पष्ट देवता -

इस वर्गीकरण के अन्तर्गत वे देवता आते हैं, जिनके मानवीयकरण की प्रक्रिया अपूर्ण या अस्पष्ट है। जैसे अग्नि, सूर्य, उषस्, वायु आदि देवता हैं जिनके मानवीय स्वरूप को आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है, किन्तु फिर भी उनका पूर्ण मानवीयकरण नहीं हुआ है।

(३) अल्प पारदर्शी, अर्ध-स्पष्ट अथवा धूमिल देवता- (Translucent Gods)

ऐसे देवता जिनका व्यक्तित्व अपने विशिष्ट प्रकृति तत्त्व से पृथक् होकर विकसित हुआ है, इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे- सूर्य और विष्णु।

(४) अपारदर्शी अथवा अस्पष्ट देवता - (Opaque Gods)

जिन देवताओं का सम्बन्ध अनेक आख्यानों से जुड़ा

हुआ है फिर भी जिनके उद्भव के सम्बन्ध में एक निश्चित धारणा नहीं बना सकते अथवा कोई निश्चय नहीं कर सकते ऐसे देवताओं को हम इस वर्गीकरण के अन्तर्गत समाहित कर सकते हैं। इसमें वरुण, इन्द्र और अश्विनी का नाम प्रमुख है।

(५) अमूर्त भावात्मक तथा प्रतीकात्मक देवता -

कुछ ऐसे भी देवता हैं जिनका सम्बन्ध किसी मानसिक संवेग अथवा किसी विशिष्ट क्रिया के साथ जुड़ा हुआ है अथवा उस संवेग या क्रिया के प्रतीकात्मक रूप में जिनका उद्भव और विकास हुआ है। उन सभी देवताओं को हम इस वर्गीकरण के अन्तर्गत रखते हैं। जैसे - काम, मन, श्रद्धा, पुरुष, बृहस्पति, काल, निर्ऋति आदि।

ब्लूमफील्ड (Bloomfield) के इस वर्गीकरण के अन्तर्गत अनेक बातें असंगत सी प्रतीत होती हैं। प्रथमतः उनका प्रागैतिहासिक रूप में देवों का वर्गीकरण करना ही समीचीन नहीं प्रतीत होता। बोगजकोई आदि के उत्खननों से प्राप्त अवेस्ता के साहित्य से प्राप्त अथवा ग्रीक देवशास्त्र में उल्लिखित देवताओं के आधार पर वैदिक देवताओं को प्रागैतिहासिक कहना समीचीन नहीं है। काल के अन्तराल में किस संस्कृति का विकास पहले हुआ और किसका बाद में, यह कहना बहुत कठिन है। वैदिक संस्कृति के पूर्व भी कोई संस्कृति विकासमान अवस्था में थी, यह स्वीकार करना ही बहुत कठिन है। वैदिक साहित्य का विकास भारतीय भूमि पर हुआ अथवा भारत के बाहर हुआ, यह भी विवादास्पद है। वैदिक संस्कृति में प्राप्त देवता पूर्व से पश्चिम की ओर गये अथवा पश्चिम से पूर्व की

और आये, यह भी विवाद के लिये एक खुला हुआ विषय है। पाश्चात्य व्याख्याकारों, ऐतिहासिकों, समाजशास्त्रियों आदि की धारणायें बहुत कुछ कल्पनाओं पर आधारित तथ्यों से जुड़ी हुयी हैं। जिनमें पूर्वाग्रहों की झलक भी प्राप्त होती है। अवेस्ता में प्राप्त जिन देवताओं को ब्लूमफील्ड ने प्रागैतिहासिक कहा है उनमें अधिकांश ऋग्वेदिक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। अवेस्ता का काल अथवा बोगज़कोई में प्राप्त मुद्राओं का काल ऋग्वेद से बहुत ही अवान्तरकालीन है क्योंकि जहां एक ओर ये चौदहवीं शती ईसा पूर्व से पीछे की ओर नहीं ले जाये जा सकते वहीं वैदिक साहित्य का अधिकांश इसके पहले ही रचा जा चुका था। अत: किसी भी दृष्टि से हम वैदिक देवताओं की प्रागैतिहासिकता को नहीं सिद्ध कर सकते। समस्त भारतीय धर्म एवं संस्कृति की धारणा ही सूक्ष्म तत्वों पर आधारित और रहस्यात्मक है। जिसके उद्भव और विकास का अन्वेषण करना बहुत ही कठिन है। विश्व के किसी भी उत्खनन अथवा साहित्य के आधार पर हम वैदिक देवताओं की प्रागैतिकहासिकता को नहीं सिद्ध कर सकते। अत: ब्लूमफील्ड द्वारा किया गया वैदिक देवताओं का प्रागैतिहासिक रूप में वर्गीकरण नितान्त भ्रामक है।

ब्लूमफील्ड द्वारा पारदर्शी अथवा स्पष्ट देवताओं के रूप में वैदिक देवताओं का वर्गीकरण किया जाना भी संगत नहीं प्रतीत होता। वैदिक देवताओं में कोई भी देवता स्पष्ट अथवा अस्पष्ट नहीं है। यहां तो हम किसी भी दिव्य शक्ति को ही देवता मानकर उसकी उपासना करते हैं। सृष्टि के विकास में जो विभिन्न तत्व निरन्तर क्रियाशील हैं उन तत्वों पर अधिकार रखने

वाली दिव्य शक्तियां ही देवता के रूप में हमारे सामने उभर कर आती हैं और धीरे-धीरे उन्हीं का विस्तार अनेक रूपों में होता चला जाता है। हम जिस शक्ति को ही दिव्य शक्ति के रूप में मानकर देवता रूप में स्वीकार करें वही देवता है। अत: न तो पारदर्शिता की, न स्पष्टता की ही कोई बात उनके साथ लागू की जा सकती है। सूक्ष्म तत्वों में निहित शक्तियां ही देवता हैं और दिव्य दृष्टि से इनका साक्षात्कार ही उनकी स्पष्टता है। ऋषियों की अभेद दर्शी दृष्टि सृष्टि की प्रत्येक शक्ति अथवा वस्तु को देवता बना देती है।

ब्लूमफील्ड का तीसरा वर्गीकरण अर्ध स्पष्ट अर्ध पारदर्शी अथवा धूमिल देवताओं के रूप में है। पता नहीं ब्लूमफील्ड को सूर्य और विष्णु में किस रूप में धूमिल तत्वों का दर्शन होता है? सूर्य दिव्य शक्ति है। समस्त सृष्टि की रचना-प्रक्रिया में वह मूल कारण है। उसी को हम हिरण्यगर्भपुरुष, प्रजापति या विष्णु रूप में देखते हैं। अग्नि के भेद-प्रभेद में उसी की सत्ता है। वही ऋग्वेद में विष्णु, यजुर्वेद में विष्णु नारायण और अन्तत: पुरुष ब्रह्म के रूप में विकसित होकर परम तत्व के रूप में भारतीय देवशास्त्र और दर्शन में अपना स्थान ग्रहण करता है। इन तत्वों को समझने में भेद है मानसिक धरातल का। जो सूक्ष्मदर्शी है वह इन देवताओं के दिव्यत्व का दर्शन करता है और जो स्थूल दृष्टि सम्पन्न है वह इन देवताओं के स्थूल रूप की कल्पना कर इन्हीं की आराधना करता है।

ब्लूमफील्ड का चतुर्थ वर्गीकरण अपारदर्शी अथवा

अस्पष्ट देवताओं के रूप में प्राप्त होता है। यह वर्गीकरण भी बहुत स्पष्ट नहीं है। इन्द्र, वरुण और अश्विनौ के उद्भव की अस्पष्टता की जो बात ब्लूमफील्ड ने की है वह स्थूल ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही ठीक प्रतीत होती हो, किन्तु ऋग्वेद की समग्र ऋचाओं के अध्ययन के पश्चात् इन देवताओं के अलग-अलग उद्भव और विकास की स्थितियां स्पष्ट की जा सकती हैं। वैसे तो किसी भी देवता के उद्भव की बात कहना ही असंगत है क्योंकि अनन्तकाल से चली आ रही ये अनन्त शक्तियां हैं जिनके उद्भव की बात निश्चित् रूप से कोई नहीं कह सकता, किन्तु देवशास्त्र के विकास में हम इनके विकास और ह्रास की कथा को समग्र रूप में देखने का प्रयास कर सकते हैं।

अमूर्त-भावात्मक एवं प्रतीकात्मक देवताओं में ब्लूमफील्ड ने प्रजापति, विश्वकर्मा, बृहस्पति, पुरुष आदि का भी आकलन किया है, जो सन्देहात्मक है। इनमें काल, श्रद्धा निर्ऋति मन, वाग्, इला, भारती आदि को भी हम ग्रहण कर सकते हैं, जो प्राय: मानसिक संवेगों के प्रतीक हैं और जिन्हें भावात्मक देवताओं (Abstract deities) के अन्तर्गत माना जा सकता है।

इस प्रकार प्राच्य एवं पाश्चात्य विचारधाराओं पर आधारित जो प्रक्रिया है उनमें हम मूल संहिताओं में प्राप्त वर्गीकरण को ही आधार मानकर आगे चलें तो अधिक समीचीन होगा। इस प्रकार हम देवताओं को प्रथमत: १. बृहत् या मुख्य, २. गौण या उप और ३. क्षुद्र देवताओं के रूप में तीन प्रकार से विभाजित कर सकते हैं, जिनमें अग्नि, इन्द्र, रुद्र, मरुत्, द्यौ, वरुण, सोम,

उषस्, आदि मुख्य या बृहद्देवता के रूप में है। रात्रि, वायु, बृहस्पति आदि अनेक देवता गौण देवता के रूप में हैं। आप: देवियां, नदियां, अदिति, मनु, श्रद्धा, मन्यु, पुरंधि, इळा, भारती, यम, पितृगण ऋभुगण, गन्धर्व, अप्सरस् आदि क्षुद्र देवताओं के अन्तर्गत आते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य वर्गीकरण व्यष्टि, युग्म और समूह के रूप में भी किया जा सकता है। जैसे अग्नि, इन्द्र, द्यौ, पृथिवी, वरुण, सूर्य, मित्र, सवितृ, सोम, आदिति, बृहस्पति, आदि अपनी-अपनी व्यष्टि के अनुरूप महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिये ऐसे देवताओं को एक वर्ग में रखा जा सकता है। दूसरा वर्गीकरण युग्म देवताओं का है - जैसे इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ, उषा-सानक्ता, इन्द्राबृहस्पती, इन्द्राविष्णु, द्यावा पृथिवी, रोदसी, आदि। इसी प्रकार सामूहिक देवताओं के अन्तर्गत हम रुद्रगण, मरुद्गण, ऋभुगण, आदित्यगण, वसुगण, विश्वेदेव, उषस्, आप: देवियां, नदियां इत्यादि। इस प्रकार से यह दूसरा तीन प्रकार से विभाजन सम्भव हो सकता है। ऋग्वेद के अन्त: साक्ष्य के द्वारा भी इन बातों को सिद्ध किया जा सकता है। ऋग्वेद के दशम मंडल के वागाम्भृणी सूक्त के अन्तर्गत स्वयं वाग्देवी इस प्रकार का विभाजन करती हुयी प्रतीत होती है ; जैसा कि मन्त्रों में प्राप्त है,[१५]

----

१५. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवै: ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥

जिनमें प्रथम मंत्र में वाग्देवी प्रथमत: सामूहिक देवताओं के अन्तर्गत, रुद्र गण, वसुगण, आदित्य गण, विश्वेदेव को ग्रहण करती है और दूसरे स्थान पर युग्म देवताओं में मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी और अश्विनौ का नाम लेती है। इसके पश्चात् व्यष्टि में आने वाले सोम, त्वष्टा, पूषन् और भग का आकलन करती है।

इस प्रकार ऋग्वेद के अन्तर्गत ही हमें विभिन्न प्रकार के वर्गीकरणों का रूप दृष्टिगत होता है, जैसा उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है। इन देवताओं के अन्य वर्गीकरण पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु स्थानीय रूपों में भी संहिताओं में प्राप्त है तथा इन्हीं को हम मूर्त और अमूर्त इन दो भागों में भी विभक्त करते हैं। गुणों और कर्मों के आधार पर भी इन सबका विभाजन किया जा सकता है। इसी प्रकार सामाजिक संरचना के आधार पर भी देवताओं का वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसा कि आधुनिक काल में दुमेजिल (Dumezil)[१६] ने भारोपीय देवताओं को सामाजिक

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते ।।
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधु: पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ।।
- ऋ० १०. १२५. १-३.

१६. Dume'zil - Comparative Mythology ; Les dieux de Indo Europeens, Paris 1952.

संरचना के आधार पर पुरोहित वर्ग, क्षत्रिय वर्ग और कृषक वर्ग— तीन रूपों में विभाजित कर अग्नि जैसे देवताओं को पुरोहित वर्ग में, इन्द्र जैसे देवताओं को क्षत्रिय वर्ग में और पूषन् आदि देवताओं को कृषक वर्ग में सम्मिलित किया है। यद्यपि दुमेजिल के इस सिद्धान्त का पाल थीमे (Paul Theieme)[१७] ने खंडन किया है, फिर भी संस्थाओं और संरचनाओं को देखते हुये दुमेजिल के वर्गीकरण में कुछ सत्य अवश्य है।

अब प्रश्न उठता है कि अश्विनौ को इन वर्गीकरणों में किसके अन्तर्गत स्वीकार किया जाये। प्रथम वर्गीकरण स्थानगत है जिसमे आकाश-अन्तरिक्ष और पृथिवी - इन तीन क्षेत्रों में देवताओं को वर्गीकृत किया गया है। इनमें अश्विनौ को द्युस्थानीय रूप में ग्रहण करना कठिन है किन्तु जब सूर्य चन्द्रमा या उषस् के साथ उनके आगमन की चर्चा होती है अथवा सूर्या उन्हें पति रूप में वरण करती है तो ऐसी स्थिति में उन्हें आकाश के साथ सीधे सम्बन्धित किया जा सकता है किन्तु द्यु स्थानीय कोई भी ऐसा देवता नही है जिसके स्वरूप का पूर्ण मानवीयकरण किया गया हो। आलंकारिक रूप में उनके चाहे जो भी वर्गीकरण प्राप्त होते हों किन्तु सम्पूर्ण मानवीयकरण की प्रक्रिया के साथ द्युस्थानीय देवताओं का कोई सम्बन्ध नहीं है। पृथिवी स्थानीय जो देवता है उनके साथ भी यही बात घटित होती है। अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में इन्द्र ही ऐसे

----

१७. P. Th_ieme, Der Fremdeling im Rgveda, Leipzig 1938 ; Mitra and Aryaman, New Haven 1957.

देवता हैं जिनके मानवीय स्वरूप (Anthrapomorphism) की देवशास्त्रीय विवेचनों में विशेष चर्चा की जाती है । अश्विनौ इन्द्र के बहुत समीप है । उनके रथ की चर्चा, उनके अश्वों की चर्चा, उनके यज्ञ में आगमन की चर्चा— यह सभी बातें बहुत कुछ इन्द्र के समान है । मानवीय रूप धारण कर उन्होंने अनेक लोगों की अनेक प्रकार की सहायतायें की है जिनसे सम्बन्धित अनेक आख्यायिकाओं का संकेत वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है । अत: उनकी मानवीय-करण की प्रक्रिया को एक ठोस आधार प्राप्त होता है । इसलिये यदि हम उन्हें इन्द्र के साथ अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं के रूप में स्वीकार करें तो अधिक उचित होगा ।

जहाँ तक व्यष्टि और समष्टि का प्रश्न है वे निश्चित रूप से युग्म देवताओं के अन्तर्गत है । किन्तु अन्य युग्म देवताओं से उनका अपना विशिष्ट रूप है जिसकी विशेष चर्चा युग्म देवताओं के सन्दर्भ में की जायेगी । `विश्वेदेवा:` के अन्तर्गत तो सभी देवों की गणना है इसलिये अश्विनौ को `विश्वेदेवा:` के अन्तर्गत रखना कोई विशिष्ट बात नहीं है । जहाँ तक मूर्त या अमूर्त या भावात्मक देवों का प्रश्न है, अश्विनौ को निश्चित रूप से मूर्त देवताओं के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है । मंत्रों की गणना की दृष्टि से अश्विनौ सम्बन्धी मंत्रों की गणना ऋग्वेद में लगभग ६५० है । इसलिये समस्त देवताओं के महत्व की दृष्टि से अश्विनौ को बृहद्देवताओं की श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि इन्द्र, अग्नि और सोम के पश्चात् मंत्रों की दृष्टि से अश्विनौ का स्थान चतुर्थ है । इसलिये इन देवताओं के पश्चात् ही महत्व की दृष्टि से उन्हें स्वीकार किया

जा सकता है। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से अश्विनौ का स्थान देवताओं के अन्तर्गत बहुत ही महत्वपूर्ण है।

यदि हम वैदिक आख्यायिकाओं के परिप्रेक्ष्य में अश्विनौ के रूप की चर्चा करें तो निश्चित रूप से हम उन्हें द्विधा विभक्त व्यक्तित्व के रूप में देखते हैं। एक तो उनका दैवी स्वरूप है जिसमें वे देवताओं के भिषक् रूप में प्रतिष्ठित हैं अथवा देवताओं के साथ यज्ञ में आहूत हैं। ऐसे सन्दर्भों में हम पूषन्, सरस्वती, सोमादि के साहचर्य में उन्हें देखते हैं।[१८] किन्तु इसी के साथ उनका वह रूप भी व्यक्त होता है जिससे वे अनेक मानवीय सन्दर्भों में भिषक् रूप में उपस्थित होकर अनेक लोगों की सहायता करते हैं तथा जिस भिषक् रूप के कारण वे देवताओं के मध्य निन्दनीय होकर सोमपान के अधिकारी होने से वंचित रहते हैं और अन्ततः एक मानवीय ऋषि के द्वारा मधु-विद्या का ज्ञान प्राप्त कर यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं के साथ सोमपान का अधिकार प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व के ये दो रूप अनेक प्रकार के विवादास्पद सन्देहों को जन्म देते हैं। यदि सम्पूर्ण वैदिक सन्दर्भों पर दृष्टि डाली जाये तो जैसे-जैसे हम ऋग्वेद के अवान्तर-काल में आते हैं वैसे-वैसे उनका यह द्विधा विभक्त व्यक्तित्व और अधिक स्पष्ट होता जाता है। जहां तक ऋग्वेद का प्रश्न है उसमें उनका दिव्यत्व और अधिक प्रभावकारी प्रतीत होता है क्योंकि अभी उसमें सम्बन्धित आख्यायिकाओं ने जन्म लेना ही प्रारम्भ किया था।

---

१८. ऋ० ८. १८.८ ; ८.२६.११ ; ८.३५. १-२२ ;
यजु० २०.७३ ; ७४ ; ७५ ; ७६ ; ९०.

यद्यपि यह कहना कठिन है कि पहले आख्यायिकाओं ने जन्म लिया या मूल मन्त्रों ने, जिनसे आख्यायिकाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी यदि हम आख्यायिकाओं को निकाल दें और उनके बिना ही अश्विनौ की कल्पना करें, तो अश्विनौ हमें प्रात:काल यज्ञ में सोमपान करने वाले देवताओं में मुख्य प्रतीत होते हैं, किन्तु इसमें भी कुछ विरोधाभास है वह यह कि प्राचीन देवताओं में आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, द्यावापृथिवी,अग्नि आदि के साथ यदि हम अश्विनौ को देखें तो इनमें अश्विनौ का कोई स्थान नहीं है। ऋग्वेद के प्राचीनतम देवताओं में अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु, सवितृ, सूर्य, मित्र आदि ऐसे देवता हैं जिनकी सर्व-व्यापकता भी प्रसिद्ध है और उसके साथ-साथ द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी स्थानीय देवताओं के रूप में वर्गीकृत उनका स्वरूप भी निश्चित है। अभी तक अश्विनौ की कोई चर्चा नहीं उभरी।

अश्विनौ के साथ जिन देवताओं का विकास होता है या जिनके साथ उनकी घनिष्ठता अधिक उभर कर सामने आती है उनमें उषस्, सरस्वती और पूषन् का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। वैसे तो अग्नि, इन्द्र, सोम, मित्रा- वरुण के नामों के साथ इनकी विशिष्ट चर्चायें हैं किन्तु समीपता की दृष्टि से सोम, पूषन् और सरस्वती, या यह कहें कि सोमपान में सरस्वती, पूषन् और उषस् के साथ इनकी अधिक चर्चा है। पूषन् का स्थान अनेक सन्दर्भों में सूर्य लिये हुये है।[१६] इससे यह प्रतीत होता है कि सूर्य उषस् और

----

१६. ऋ० ८.१८.२-५ ; यजु० १.२४.

अश्विनौ का एक त्रिक् है, जो प्रात: सवन के साथ मूल रूप से संलग्न है, इसी त्रिक् को हम अनेक रूपों में विकसित होते हुये देखते हैं — उषस् का स्थान कभी सूर्या ग्रहण करती है और कभी सरस्वती। इसी प्रकार सूर्य का स्थान अग्नि, इन्द्र, विष्णु, वरुण, ब्रह्मणस्पति, आदित्यगण, वसुगण, आदि ग्रहण करते हुये प्रतीत होते हैं जिनमें सभी मूलत: सूर्य या अग्नि के प्रतीक मात्र है, इसलिये अश्विनौ की मूलभावना को हम सूर्य और उषस् के सन्दर्भ में ग्रहण कर उसका विस्तार करे तो अनेक नये तथ्यों का उदघाटन होगा।

-0-

तृतीय अध्याय

-0-

ऋग्वेद में अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भ

ऋग्वेद में अश्विनौ की चर्चा प्राय: सभी मण्डलों में है, किन्तु प्रथम, अष्टम और दशम मंडल उनकी चर्चा के मुख्य स्थल के रूप में है। द्वितीय से सप्तम मंडल पर्यन्त अंश, वंश-मण्डलों का है जिनमें अश्विनौ की चर्चा प्राय: `विश्वेदेवा:` सूक्तों के रूप में अधिक है। यदि हम मण्डल क्रम से अश्विनौ सम्बन्धी ऋचाओं का आकलन करें तो उनकी संख्या इस प्रकार से होगी —

मण्डल	ऋक् संख्या
प्रथम	२१३
द्वितीय	१२
तृतीय	६
चतुर्थ	२३
पंचम	४८
षष्ठम्	२२
सप्तम	५६
अष्टम	१६६
नवम	८
दशम्	५४

इस प्रकार प्रथम और अष्टम मण्डल में अश्विनौ सम्बन्धी ऋचाओं की चर्चा सबसे अधिक है। सबसे कम ऋचायें तृतीय मण्डल में वंश मण्डलों में सर्वाधिक ऋचायें सप्तम मण्डल में है जिसमें ऋषि वसिष्ठ हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि वसिष्ठ वंश ने अश्विनौ की

प्रतिष्ठा के लिये एक सुदृढ पृष्ठभूमि तैयार की, जिसको संवर्धित करने में अत्रि तथा वामदेव ने मुख्य भूमिका का निर्वाह किया है और उसी को गोतम राहूगण एवं काण्व ने विस्तार दिया है। इस प्रकार अश्विनौ के विकास को हम वंश मण्डलों से प्रारम्भ कर ऋग्वेद के दशम मण्डल तक समीक्षात्मक दृष्टि से देख सकते हैं। जहां प्रारम्भिक वंश मण्डलों में अश्विनौ की चर्चा विश्वेदेवा के साथ ही उभर कर रह जाती है, वहीं सप्तम मण्डल तक पहुंचते-पहुंचते उनसे सम्बन्धित पृथक् सूक्तों की रचना होने लगी और धीरे-धीरे वे मुख्य देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। यहीं से हम उनके देवशास्त्रीय विकास को अधिक विकसित होता हुआ देखते हैं। जहां उनका सम्बन्ध अनेक देवताओं से जुड़कर अनेक रूपों में उनके व्यक्तित्व को विकसित करता है।

वंश मण्डलों में अश्विनौ के मन्त्रों का वितरण पृथक्-पृथक् मण्डलों में पृथक्-पृथक् रूप में है। द्वितीय मण्डल के अन्तर्गत तीन सूक्तों (३७ ; ३९ ; ४१ ;) में कुल १२ मन्त्र हैं। जिनमें ३७वें सूक्त में एक मन्त्र (२.३७.५ ;) और ४१ वें सूक्त में तीन मन्त्र (२.४१.७-९) तथा एक सूक्त (२. ३९) पूर्ण रूप से अश्विनौ के प्रति सम्बोधित है। प्रथम में `विश्वे देवा:` के साथ अश्विनौ का आह्वान सोमपान के लिए किया गया है। द्वितीय मंत्र में अश्विनौ सम्पूर्ण रूप से अधिष्ठातृ देवता के रूप में उपस्थित है। इस सूक्त में कुल आठ मन्त्र है और प्रत्येक मंत्र में अश्विनौ की उपमा किसी न किसी वस्तु से दी गयी है। प्रथम मन्त्र में वे ग्रावाण, गृध्र, ब्राह्मण, दूत के साथ उपमित है।[1]

---

१. ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ।।
- ऋ० २.३९.१.

इसी प्रकार द्वितीय मन्त्र में रथ्या, अजा, मेना और दम्पती के साथ उनकी तुलना की गयी है। तृतीय मन्त्र में शृङ्ग, शफ, चक्रवाक और चतुर्थ मन्त्र में नाव, नभ्या, श्वान, युगल की उपमायें उनके साथ दी गयी हैं। वे वायु के समान जरा रहित, नदी के समान वेगवान, नेत्र के समान देखने वाले, शरीर के दोनों हाथों के समान एक साथ स्थित और दोनों पैरों के समान साथ-साथ चलने वाले हैं। शरीर के अंगों में ओष्ठ, स्तन, नासिका, कर्ण, हस्त, क्षाम के समान उन्हें कहा गया है।[2] इस प्रकार उनकी तुलना जिन-जिन वस्तुओं से दी गयी है वे सभी उनके युग्म भाव तथा कार्यों के साथ संलग्न हैं। इस सम्पूर्ण सूक्त में कहीं भी कोई ऐसा संकेत नहीं है जिससे उन्हें किसी आख्यायिका के साथ जोड़ा जा सके। तृतीय सूक्त (२-४१) में अश्विनों सम्बन्धी तीन मन्त्र हैं जिसमें प्रथम मन्त्र में उन्हें `नासत्या` और `रुद्रा` कहा गया है। इन दोनों नामों में `नासत्या` बहु प्रचलित है, किन्तु `रुद्रा`[3] का अनुवर्तन ऋग्वेद में केवल ८ बार हुआ है; जिसमें छः स्थानों पर वह अश्विनो के लिये और दो स्थानों[4] पर मित्रवरुणौ के लिये प्रयुक्त है। इसी `रुद्रा` का विकास हम `रुद्रवर्तनी`[5] के रूप में पाते हैं। जहाँ अश्विनो को रुद्र के मार्ग वाले कहा गया है। अश्विनों का रुद्र कहा जाना

---

२. ऋ० २. ३९. ५-७

३. ऋ० १. १५८. १ ; २. ४१. ७ ; ५. ७३. ८ ; ७५. ३ ; ८. २६. ५ ; १०. ९३. ७.

४. ऋ० ५. ७०. २-३.

५. ऋ० १. ३. ३ ; ८. २२. १ ; १०. ३९. ११.

उनका रुद्र के साथ सम्बन्ध द्योतित करता है और साथ ही मित्रा-वरुणों के सामीप्य का द्योतन भी होता है। यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या अश्विनौ मित्रावरुण के ही अवान्तरकालीन विकसित रूप तो नहीं हैं? इस समस्या के समाधान के लिये एक अलग अनुसन्धान की आवश्यकता है। मित्रावरुणौ और अश्विनौ- दोनों द्वन्द्वों के उद्भव, विकास, गुण आदि का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन्हें `रुद्रा` क्यों कहा गया है। यहाँ इतना अवकाश नहीं[६] है कि इस विषय की विशिष्ट चर्चा की जा सके। अन्य दो मन्त्रों में उन्हें `वृषण्वसू` और `धिष्णया` कहा गया है। `वृषण्वसू` पद ऋग्वेद में १८ बार प्रयुक्त हुआ है[७] जिनमें अधिकांश प्रयोग अश्विनौ के साथ है। इस प्रयोग के साथ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यह प्रथम, दशम, द्वितीय और चतुर्थ मण्डल में केवल एक बार प्रयुक्त है। सबसे अधिक प्रयोग अष्टम मण्डल में प्राप्त होते हैं। उसके बाद पंचम मण्डल के दो सूक्तों में तीन बार प्रयोग मिलता है। अष्टम मण्डल और पंचम मंडल के सभी प्रयोग अश्विनौ के साथ है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अश्विनौ का यह विशेषण पर्याप्त अवान्तर कालीन है, जहाँ उन्हें वीर्य के आधायक या सिंचन कर्म में समर्थ स्वीकार किया गया है।

----

६. ऋ० २. ४१. ८ ; ६.

७. वही १. १११. १ ; २. ४१. ८ ; ४. ५०. १० ; ५. ७४. १ ; ७५. ४ ; ६ ; ८. ५. २४ ; २७ ; ३६ ; २२. ८ ; ६ ; २६. १ ; २ ; ५ ; १५ ; ७३. १० ; ८५. ७ ; १०. ९३. ५.

धिष्णया शब्द का प्रयोग अश्विनौ के साथ द्विवचनान्त रूप में १२ बार हुआ है।[८] जिसमें अधिकांश प्रयोग अश्विनौ के साथ है। धिष्णया का सम्बन्ध धिषणा या बुद्धि से है। अश्विनौ उस धिषणा से युक्त हैं जिसे हम आलौकिक प्रतिभा या अन्तर्दृष्टि या दिव्य दृष्टि कह सकते हैं। अथवा इसका अर्थ धिषणा से उत्पन्न या धिषणा के योग्य भी हो सकता है।[९] कुछ लोगों ने[१०] इसका अर्थ `धारक` या `पोषक (Supporter) भी किया है जो संगत नहीं प्रतीत होता। भले ही इसके मूल में   धा   हो लेकिन धिषणा के साथ ही इसका अर्थ किया जा सकता है उससे अलग नहीं इससे यह बात निश्चित होती है कि अश्विनौ का सम्बन्ध धिषणा के साथ बहुत समीप का है जिसे अवान्तर काल में रुद्र देवताओं के अन्तर्गत भाव देवता के रूप में विकसित माना गया है।

तृतीय मंडल में अश्विनौ सम्बन्धी केवल एक सूक्त है जिसमें ६ मंत्र है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विश्वामित्र के वंशजों ने अश्विनौ को विशेष महत्व नहीं दिया। इस सूक्त में केवल दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि यज्ञ स्थान में सोमपान करने के लिये उनका रथ निश्चित समय में उषाकाल में

----

८. धिष्ण्या ऋ० १.३.२ ; १८२. १ ; २ ; २. ४१.६ ;
 धिष्ण्या १.८९.४ ; ११७.१९ ; १८१.३ ; ६.६३.६ ;
 ८.५.१४ ; २६.१२.
 धिष्ण्यै ७. ७२.३ ; धिष्ण्यौ ७. ६७. १.

९. द्र० - सायणभाष्य १.३.२.

१०.,, - K.F.Geldner, Rgved Ubersetz 7.67.1;
H.D. Velankar, Rg. Mandala VII, 154.
165 (Translation of 7.67.1 ; 72.3.

उपस्थित होता है और द्वितीयत: यह कि उन्हें नासत्यौ और दस्रा के नाम से अभिहित किया गया है। शेष कोई ऐसी बात नहीं है जिसकी यहाँ चर्चा की जा सके।

चतुर्थ मंडल में अश्विनौ सम्बन्धी कुल २३ मंत्र हैं। जिनमें २ मन्त्र १५वें सूक्त में, शेष २१ मन्त्र ४३ वें,४४ वें और ४५ वें सूक्त में संकलित है। १५ वें सूक्त के दोनों मन्त्रों में अश्विनौ को कुमार साहदेव्य को दीर्घायु करने के लिये कहा गया है। यहीं से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके साथ अश्विनी कुमार शब्द जुड़ गया, क्योंकि इसके पूर्व कहीं भी उनके साथ कुमार शब्द का साहचर्य नहीं है। ४३ वें सूक्त में अश्विनौ के साथ अनेक प्रश्नों को जोड़ा गया है। जिसमें उनके साहचर्य उनके रथादि की चर्चा की गयी है। सूर्य की दुहिता सूर्या का वरण करते हुये वे 'माध्वी' कहे गये हैं। वास्तव में यहाँ सूर्य की दुहिता का वे वरण नहीं करते वरन् सूर्या उनके रथ का वरण करती है।[११] उन्हें आकाश से उत्पन्न हुये दिव्य सुपर्ण के रूप में शचि के साथ निवास करते हुये कहा गया है।[१२] उनका रथ आकाश को व्याप्त करता हुआ समुद्र के चारों ओर संचरण करता है।[१३] वे मधु का पान करते हैं इसलिये माध्वी कहलाते हैं। उनका

---

११. को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतम: शंभविष्ठ: ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहिता वृणीत ।।
- ऋ० ४.४३.२.

१२. ऋ० ४.४३.३.

१३. वही ४.४३.५.

यान जरा रहित होने के कारण ही वे सूर्या के पति बनते हैं।[१४] ४४ वें सूक्त में उन्हें `दिवोनपात्` कहा गया है, जिसकी तुलना हम अपांनपात् से कर सकते हैं।[१५] इसी आधार पर हम उनकी उत्पत्ति विषयक समस्या पर भी दृष्टि डाल सकते हैं। जिससे उनके द्युस्थानीय देवता होने का संकेत मिलता है। इसके अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण बात इस सूक्त में नहीं कही गयी है जिसका संकेत किया जा सके।

चतुर्थ मंडल के ४५ वें सूक्त में ७ मंत्रों में अश्विनौ संबन्धी चर्चा है जिनमें प्रथम मंत्र में पहली बार उन्हें हम `मिथुना` विशेषण से युक्त पाते हैं। प्रात:काल सूर्योदय होते ही उनका रथ आकाश मार्ग पर निकल पड़ता है। जिस पर अन्न या हवि का वहन करते हुये उनके अश्व चारों ओर भ्रमण करते हैं।[१६] उषाकाल के प्रारम्भ में ही उनके अश्व उन दोनों को मधु के लिये प्रेरित करते हैं।[१७] अश्विनौ का मधुमान होना, उनके मार्ग का मधुमय होना, उनके रथ का मधुमय होना, उनके अश्वों द्वारा मधु का वहन करना, आदि बातें ही उन्हें माध्वी बनाती हैं।[१८] इन दोनों को हिरण्यपर्ण कहा गया है।[१९]

----

१४. ऋ० ४. ४३. ६.

१५. वही ४. ४४. २.

१६. वही ४. ४५. १.

१७. वही ४. ४५. २.

१८. मध्व: पिबतं मधुपेभिरासभिं रुत प्रियं मधुने युञ्जाथाः रथम्।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना।।
- ऋ० ४. ४५. ३.

१९. वही ४. ४५. ४.

सूर्य अपने जोते गये रथ को प्रेरित करता है[20] और इस रथ से वे समस्त लोकों के चारों ओर गमन करते हैं।[21] इस प्रकार द्युलोक, सूर्य, उषस्, मधु आदि से उनके सन्निकटता का सम्बन्ध द्योतित होता है। इस प्रकार चतुर्थ मंडल में कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत उनके सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं। जिनमें उनका दिवोनपात् होना, हिरण्यपर्ण होना, सूर्या का पति होना आदि बातें मुख्य हैं।

ऋग्वेद के पंचम मंडल में ७३ से ७८ तक ५ सूक्तों में कुल ४८ मन्त्रों में अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन एक साथ प्राप्त होता है। अत्रि के ऋषित्व में ये मन्त्र अश्विनौ सम्बन्धी कुछ नये तथ्यों का उद्घाटन करते हैं। यहां अश्विनौ पुरुभुज, पुरुदंसस, अध्रिगु वाजिनीवसु, हिरण्यवर्तनि, दस्रा, शुभस्पति आदि रूप में उपस्थित होकर पूर्व मण्डलों से एक विकसित अवस्था को द्योतित करते हैं। जहां पूर्वमण्डलों में किसी विशिष्ट आख्यायिका के साथ उनका संयोग है, वहीं इस मण्डल में वध्रिमती आदि के साथ कुछ नयी आख्यायिकायें संकेत ग्रहण करने लगती है। इन ४८ मन्त्रों में अश्विनौ के कार्य, स्वरूप, संगति आदि के कुछ नये-नये चित्र हमारे सामने उभरते हैं।

भरद्वाज ऋषि से सम्बन्धित षष्ठ मण्डल में दो सूक्त है जिनमें कुल मिलाकर २२ मन्त्र हैं जिनमें कोई ऐसे नये तथ्य नहीं प्रतीत होते जिनकी यहां विशिष्ट रूप से चर्चा की जा सके। पूर्व मण्डलों में आवर्तित अनेक नामों, गुणों एवं कार्यों का ही यहां अनुवर्तन किया गया है।

---

२०. ऋ० ४. ४५. ६.

२१ वही ४ ४५ ७

सप्तम मण्डल में अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों की संख्या वंश मण्डलों में सबसे अधिक है। इसके पूर्व हमने यह कहा था कि अश्विनौ को प्रतिष्ठित करने में वसिष्ठ वंश का योगदान वंश-मण्डल के ऋषियों में सबसे अधिक है। इस मण्डल में कुल मिलाकर छ: सूक्तों में ५६ मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुति की गयी है। इस मण्डल में ६७ वें से ७४ वें तक आठ सूक्तों में अश्विनौ सम्बन्धी मंत्र है जिनके द्रष्टा मित्रावरुण वसिष्ठ है। अधिकांशत: त्रिष्टुप छन्द में मन्त्र है। जिनका सातत्य हम पूर्व मण्डलों के साथ देख सकते हैं। जहाँ पूर्व मण्डलों में सूर्य दुहिता सूर्या के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्धों की चर्चा और उषस् काल में उनके निरन्तर रथ पर आरूढ़ होकर आने की बात कही गयी है, वहीं सप्तम मण्डल में वे उषाओं के केतु रूप में प्राची दिक् में 'दिवो दुहिता' के साथ उत्पन्न होते हुये, अन्धकार का भेदन करते हुये अग्नि के समिन्धन काल में आगमन करते हैं।[22] इस प्रकार वे उषस् काल में नहीं वरन् उषस् के साथ ही जायमान होते हैं। यहाँ 'दिवो दुहितु: जायमान:' का अर्थ[23] - 'द्युलोक की दुहिता उषस् से उत्पन्न है, जिससे अश्विनौ को उषस् का पुत्र माना जा सकता है यह एक नये तथ्य का उदघाटन करता है। क्योंकि इससे पूर्व ऐसा कहीं नहीं कहा गया। अत: सप्तम मंडल अश्विनौ के देव-शास्त्र में नये तथ्यों को आकलित करता प्रतीत होता है। एक अन्य नया विशेषण उनके साथ 'शचीपति'[24] जुड़ा हुआ है जो अवान्तर

----

२२. ऋ० ७. ६७. २.
२३. वही।
२४. वही ७. ६७. ५.

काल में मात्र इन्द्र का विशेषण बनकर रह गया । पूर्व मण्डलों में उनकी चर्चा हिरण्यवर्तनी[25] और रुद्रवर्तनी[26] के रूप में की गयी है। यहां वे घृतवर्तनि[27] के रूप में भी प्रतिष्ठित होते हैं। एक अन्य विशेषण 'विश्ववारौ'[28] भी उनके साथ जुड़ता है, जिससे वे सभी के द्वारा वरणीय बन जाते हैं। इसके पूर्व हमने उन्हें 'वाजिनीवसू'[29] के रूप में धन शक्ति से युक्त कहा है। यहां वे अश्वामघा, गोमघा, गोमता, अश्वामता[30] के रूप में दिखायी दे रहे हैं। सप्तम मण्डल के मन्त्रों में अश्विनौ का नासत्या नाम बहुत अधिक प्रयुक्त हुआ है।

अष्टम मण्डल के काण्ववंशीय ऋषियों ने अश्विनौ को पर्याप्त महत्व दिया है। इस मण्डल में कुल मिलाकर १६६ मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुतियां की गयी हैं, जिनमें कुछ मन्त्र विश्वेदेवा सूक्तों के अन्तर्गत सम्मिलित है और अधिकांश मन्त्रों का संकलन स्वतन्त्र सूक्तों के रूप में किया गया है। अष्टम मण्डल के प्रारम्भ में ही पांचवे सूक्त के अन्तर्गत कुल ३७ मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुति की गयी है। इन मन्त्रों में अश्विनौ को उषस् के साथ निवास करते हुये और उनके रथ को मन के द्वारा जुता हुआ कहा गया है।[31] पुरुप्रिय, पुरुमन्द्रा और पुरुवसू जैसे विशेषणों से युक्त होकर वे कण्व ऋषियों के अत्यन्त

----

२५. ऋ० १.९२.१८ ; ५.७५.२ ; ३ ; ८.५.११ ; ८.१;८७.५.

२६. वही १.३.३ ; ८.२२.१ ; १४ ; १०.३९.११.

२७. वही ७.६९.१.

२८. वही ७.७०.१.

२९. वही ७.७९.१.

३०. वही ७.७२.१.

३१. वही ८.५.२.

प्रिय देवता के रूप में प्रतिष्ठित दृष्टिगत होते हैं। गायत्री छन्द के अन्तर्गत आबद्ध इस सूक्त के ३७ मन्त्रों के अन्तर्गत अश्विनौ का मुख्य रूप से सोमपान एवं धन संप्रेषण के लिए आह्वान किया गया है।

इसके पश्चात् आठवें सूक्त के अन्तर्गत २३ मन्त्रों में अश्विनौ की चर्चा है। इस सूक्त में अश्विनौ को अध्रिग्रा और वृत्र हन्ता के रूप में पहली बार कहा गया है उनको 'वृत्रहन्तमा'[३२] विशेषण उन्हें वृत्र के हनन कर्ता के रूप में उपस्थित करता है और इस प्रकार उनका तादात्म्य हम यहाँ इन्द्र के साथ उपस्थित पाते हैं। जबकि अवान्तर काल में ये इन्द्र के मुख्य प्रतिस्पर्धी के रूप में सोमपान के सन्दर्भ में दृष्टिगत होते हैं। एक मन्त्र में 'सहस्त्रनिर्णिजा'[३३] पद उनके रथ के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। जिससे उनके रथ के अनेक रूपत्व की कल्पना प्रस्तुत की गयी है। उन्हें अग्नि के विशिष्ट विशेषण वह्नि के साथ भी यहाँ जोड़ा गया है। और 'वह्नि' रूप में वे धन या हवि के वाहक कहे गये हैं।[३४] एक अन्य मन्त्र में उन्हें 'दानुनस्पति' कहा गया है,[३५] जो ऋग्वेद के अन्य दो सन्दर्भों में केवल मित्रावरुणौ के लिये प्रयुक्त है और कभी-कभी अनेक सन्दर्भ ऐसे मिल जाते हैं जिनमें मित्रावरुणौ और अश्विनौ में पर्याप्त साम्य की सम्भावनायें निहित हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि

---

३२ ऋ० ८. ८. ६.

३३. वही ८. ८. ११.

३४. वही ८. ८. १२. १३.

३५. वही ८. ८. १६.

अश्विनौ मित्रावरुणौ के ही अवान्तरकालीन विकास है ; क्योंकि मित्रावरुणौ सम्बन्धी और अश्विनौ सम्बन्धी सूक्तों की यदि तुलना की जाये तो उनमें अनेक ऐसे गुणों की एकात्मकता दृष्टिगत होती है ।

यहाँ अश्विनौ सम्बन्धी तीन सूक्तों का साथ-साथ संकलन एक ओर तो उनके महत्त्व का द्योतन करता है और दूसरी ओर अश्विनौ सम्बन्धी अनेक तथ्यों का उद्घाटन भी एक साथ हो जाता है । किन-किन ऋषियों ने अश्विनौ की स्तुतियाँ काण्व के पूर्व की हैं इसका भी संकेत यहाँ प्राप्त हो जाता है ।[३६] जैसे एक मन्त्र में काण्व ने यह कहा है कि, 'जिस प्रकार कक्षीवान् व्यश्व, दीर्घतमस्, पृथि, वैन्य, ऋषियों ने आपका आह्वान किया है वैसे ही हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर आप हमें सचेतनावान बनायें । एक मन्त्र में छर्दिस्पा, परस्पा, वात्पा, तनूपा ' शब्दों का एक साथ प्रयोग कर जहाँ मंत्रात्मक ध्वनि के आवर्तन-विवर्तन को प्रकट किया गया है वहीं अश्विनौ के अनेक रूपों में रक्षक या पालक होने की बात भी प्रकट होती है और साथ ही काण्वों की विशिष्ट शैली का संकेत भी मिलता है ।[३७] अन्तरिक्ष में उड़ते हुये अश्विनौ आकाश और धरती के चारों ओर अपने रथ के द्वारा गमन करते हैं ।[३८] जिससे अश्विनौ का तीनों

---

३६. ऋ० ८. ९. १०.

३७. यातं छर्दिस्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ।। - ऋ० ८.९. ११.

३८. यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद वैमे रोदसी अनु ।
- ऋ० ८. १०. ६.

लोकों में संचरण उन्हें एक साथ तीनों लोकों के साथ संलग्न करता है और इसी से वे किसी एक स्थान या लोक के देवता नहीं कहे जा सकते । इसके पूर्व हम उन्हें द्युलोक के देवता-रूप में प्रतिष्ठित देख चुके हैं किन्तु ऐसे अनेक सन्दर्भों से उनके स्थान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के सन्देहों को स्थान मिलता है ।

अष्टम मण्डल के आठवें सूक्त में 'विश्वेदेवा' के साथ एक मन्त्र में अश्विनौ की चर्चा है । जिसमें उन्हें दैवी भिषज् के रूप में प्रस्तुत किया गया है और वे अदिति, आदित्यगण, अग्नि, सूर्य, अनिल आदि के साथ आहूत हैं ।[३९]

आठवें मण्डल के २२ वें सूक्त में १८ मन्त्रों में अश्विनौ सम्बन्धी स्तुतियां हैं जिनमें एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें 'अर्वाचीनौ' कहा गया है,[४०] जिसके दो अर्थ हो सकते हैं एक तो उनका नित्य नवीन होना और दूसरा अर्थ उनके अन्य देवताओं की तुलना में अवान्तरकालीन उद्भव से सम्बद्ध है । यदि हम इस अर्थ को ग्रहण करें तो उससे यह संकेत प्राप्त होता है कि अश्विनौ की देवता रूप में प्रतिष्ठा अन्य देवताओं के पश्चात् हुयी । किन्तु यह बात संगत नहीं प्रतीत होती क्योंकि अन्य देवताओं के लिये भी 'अर्वाचीन:

----

३९. ऋ० ८. १८. ८ ;

४०. इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे गन्तारा दाशुषो गृहम् ।।
- ऋ० ८. २२. ३.

अवार्चीनास: अवार्चीनम्` जैसे विशेषणों का प्रयोग हुआ है ।इसलिये हम `अवार्चीनो` का अर्थ अभिमुख गमन करने वाला ही कर सकते हैं । इस सन्दर्भ में कहीं न कहीं कुछ नये तत्वों का समावेश किया गया है ।[४१]

अष्टम मण्डल के २६ वें सूक्त में अश्विनौ सम्बन्धी १६ मंत्र हैं और उन्हीं के साथ छ: मन्त्र वायु की स्तुति में भी जुड़े हुये हैं । यहां उनका `अतूर्तदक्षा` विशेषण का प्रयोग ऋग्वेद में मात्र यहीं पर हुआ है ।[४२] जिसकी तुलना हम `अतूर्तपन्था:` से कर सकते हैं जिसका प्रयोग मित्रावरुण के लिये ऋग्वेद में दो बार हुआ है । इसके पूर्व हमने इस बात का संकेत दिया है कि मित्रा-वरुणो और अश्विनौ के विशेषणों में बहुत साम्य है, अतूर्त का अर्थ अहिंसित है । इस प्रकार अश्विनौ अहिंसित दक्षता वाले कहे जा सकते हैं । इसी प्रकार मधुवर्णा विशेषण का प्रयोग भी केवल यहीं पर हुआ है । ऋग्वेद में अन्यत्र दो सन्दर्भ में मधुवर्ण शब्द का प्रयोग है, और सन्दर्भों में यह घृत या अन्न के विशेषण रूप में प्रयुक्त है । इस प्रकार उनकी घृत के वर्ण के साथ या मधु के वर्ण के साथ या सोम के वर्ण के साथ तुलना किया जाना उनकी रूप कल्पना को समझने में एक महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य करता है । उन्हें `माध्वी` या ऐसे अनेक नामों

----

४१. द्र०सायण भाष्य - ऋ० ८. २२. ३

४२. युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।
अतूर्त दक्षा वृषणा वृषण्वसू ।।
- ऋ० ८. २६. १.

से अनेकश: आहूत किया गया है। किन्तु उसी के वर्ण से उसे अभिहित करना या इनको संयमित करना एक नये तथ्य को जन्म देता है।

इसी मण्डल के पँचीसवें सूक्त में अश्विनौ सम्बन्धी चौबीस मन्त्र हैं। जहाँ वे अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, अदिति, रुद्र, वसु, उषस् और सूर्य के साथ सोमपान करने के लिये बुलाये गये हैं। सम्पूर्ण सूक्त में कोई ऐसी महत्वपूर्ण बात नहीं दिखायी देती, जिसका संकेत किया जाये। मात्र अनेक देवताओं के साथ सोमपान करना ही यहाँ उपलक्षित है।

बयालीसवें (४२ वें) सूक्त में अश्विनौ सम्बन्धी तीन मन्त्र हैं जिसमें एक मन्त्र में उन्हें अत्रि के द्वारा आहूत कहा गया है। इस प्रकार काण्ववंशीय ऋषियों ने अपने पूर्ववर्ती ऋषियों का उल्लेख कर अश्विनों के महत्त्व को संवर्धित किया है।

इसी मण्डल के अन्तर्गत संकलित वालखिल्य सूक्तों के अन्तर्गत भी एक सूक्त में अश्विनौ सम्बन्धी चार मन्त्र हैं जिनमें एक मन्त्र में उन्हें सत्य स्वरूप ३३ देवताओं के द्वारा दृष्ट कहा गया है।[४३] जिससे यह कहा जा सकता है कि ३३ देवताओं की प्रतिष्ठा के बाद ही अश्विनौ को नये देवसमूह में स्थान प्राप्त हुआ। इन सूक्तों के अतिरिक्त अन्य पांच सूक्तों में अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन है

---

४३. युवां देवास्त्रय एकादशास: सत्या: सत्यस्य ददृशे पुरस्तात्।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नि: ।।
- ऋ० ८. ५७. २.

जिनमें प्राय: पूर्वकथित बातों का आवर्तन ही दृष्टिगत होता है और अधिकांशत: शैलीगत आवर्तन की प्रतीति होती है ।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में कुल ५४ ऋचाओं में अश्विनौ की चर्चा है । दशम मण्डल में अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों का प्रारम्भ (२४ वें) चौबीसवें सूक्त से होता है । जिसमें कुल तीन मन्त्र हैं । इसके प्रथम मन्त्र में अश्विनौ को 'शक्रौ' और 'मायाविनौ' कहा गया है । ये दोनों विशेषण अश्विनौ के स्वरूप के एक नये आयाम की सृष्टि करते हैं । मायाविन् विशेषण एक बार इन्द्र के लिये आया है[४४] और एक बार सोम के सन्दर्भ में उसका प्रयोग हुआ है ।[४५] अन्यथा इस सन्दर्भ को छोड़कर के इसका प्रयोग अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है । अश्विनौ को मायाविन कहना उन्हें अलौकिक अभिचार शक्ति से सम्पन्न मानना है । शक्रा विशेषण इसके पूर्व अश्विनौ के साथ द्वितीय मण्डल में आया है । इन दो सन्दर्भों को छोड़कर अश्विनौ के लिये अन्यत्र कहीं भी उसका प्रयोग नहीं है । अन्य अनेक देवताओं के लिये इसके प्रयोग अनेकश: प्राप्त होते हैं । शक्र का अर्थ है - समर्थ या सर्वशक्तिमान । इस प्रकार अश्विनौ को धीरे-धीरे समस्त समर्थ देवताओं के अनुरूप स्वीकार किया जाने लगा । ये सभी बातें उनके धीरे-धीरे बढ़ते प्रभाव और उच्च देवताओं में उनकी गणना के संकेत रूप है । इसके पश्चात् ३९ वें सूक्त में चौदह (१४) मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुति है । इन मन्त्रों में अब तक विवेचित समस्त मण्डलों के समस्त मन्त्रों से अलग जो विशिष्ट बात दृष्टिगत होती है वह है आख्यायिकाओं की ।

---

४४. ऋ० २. ११. ६.

४५. वही ६. ८३. ३.

यहाँ च्यवान, विमद, पुरुमित्र, वध्रिमती, पुरंधि, वन्दन, विश्पला, रेभ, कवीस, सप्तवध्री, पेदु, पुरोरथ, शयु, वर्तिका आदि से संबंधित अनेक आख्यायिकाओं का एक सूक्त के अन्तर्गत उल्लेख कर मानों आख्यायिकाओं के संकेतों का ही संग्रह किया गया हो। इस प्रकार आख्यायिकाओं का एकत्र संकेत इसके पूर्व अन्यत्र कहीं भी नहीं प्राप्त हुआ। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दशम मंडल का यह सूक्त अश्विनों सम्बन्धी विकासात्मक भूमिका का ही संकेत करते हैं। इसके बाद आने वाले सूक्त में भी १४ मन्त्रों का संकलन है, जिसमें आख्यायिकाओं के संकेत कम तथा उषस् अश्विनों के सम्बन्धों की अधिक चर्चा है। अनेक उपमाओं के माध्यम से अश्विनों और उषस् के मधुर सम्बन्धों की कल्पना को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक मन्त्र में कोई न कोई प्रश्न उपस्थित कर अश्विनों को किसी न किसी के साथ उपमित किया गया है। सम्पूर्ण सूक्त अश्विनों को यहाँ एक नयी शैली में प्रस्तुत करता है।

४१ वें सूक्त में तीन मन्त्रों में अश्विनों के रथ की चर्चा है जो तीन चक्र वाला है, शक्ति-सम्पन्न है, उषाकाल में निकलने वाला है, मधु का वाहक है, जिसके द्वारा यजनीय अश्विनों यज्ञ में गमन करते हैं। यहाँ उनके रथ का त्रिचक्र होना उन्हें संवत्सर के तीन ऋतु-चक्र से जोड़ता है और वे सूर्य के समीप पहुंच जाते हैं। इनके त्रिचक्र रथ की चर्चा अन्यत्र भी पांच सन्दर्भों में हुयी है।[४६]

----

४६. ऋ० १. १५७. ३ ; १८३. १ ; ४. ३६. १ ; ८. ५८. ३ ; १०. ४१. १.

ऋग्वेद में केवल एक ही ऐसा सन्दर्भ है जहाँ अश्विनौ से भिन्न त्रिचक्र रथ की चर्चा हुयी है और जिसके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि अश्वों से रहित तीन चक्रों वाला रथ लोक के चारों ओर परिवर्तित होता है।[४७] अन्यथा सभी सन्दर्भों में एक मात्र अश्विनौ ही तीन चक्र वाले रथ के स्वामी हैं। इसमें अश्विनौ के सम्बन्ध में एक नयी धारणा का जन्म होता है और इसकी तुलना त्रिचक्र, पंचचक्र, सप्तचक्र और द्वादश चक्र वाले उस संवत्सर या काल पुरुष से की जा सकती है जिसका स्वरूप ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद तक विभिन्न रूपों में विकसित होता रहा है तथा जिसे समस्त सृष्टि का कारक अथवा प्रजापति भी कहा गया है।[४८]

इन समस्त सन्दर्भों में वर्ष में परिवर्तित होने वाली विभिन्न ऋतुओं के चक्र को, जो कभी तीन, कभी पाँच, कभी छः के रूप में है, स्थान देकर उन्हें, वर्ष के द्वादश मासों के साथ संलग्न किया गया है। यहाँ अश्विनौ के त्रिचक्र वाले रथ का सम्बन्ध या तो इन ऋतुचक्रों के साथ जोड़ा जा सकता है, अन्यथा वह सवनत्रय का प्रतीक है। किन्तु अश्विनौ को प्रायः समस्त सन्दर्भों में प्रातः सवन

---

४७. ऋ० १. १६४. १२-१३, १. १६४. ४८
अथर्व० १६. ५३; ५४.

४८. ऋ० १. १५७. ३; १८३. १ ; ४. ३६. १.
१. १६४. ३ ; १२ ; २. ४०. ३, १६४. ४८ ;
४. ३३. ७.

में ही मधुपान के लिये आवर्तित होते हुये कहा गया है इसलिये त्रिचक्र का सम्बन्ध सवनों के साथ जोड़ना बहुत संगत नहीं प्रतीत होता ।अत: उनके इस कल्पनात्मक स्वरूप को हम सूर्य के रथ के साथ जोड़कर ही देखें, तो अधिक उचित होगा । जिसे हम ऋतु चक्रों के कारक के रूप में अथवा रात्रि और दिन के कारक के रूप में स्वीकार करते हैं तथा परोक्ष रूप में जो अश्विनौ के देवशास्त्र के साथ सूर्या के पति रूप में जुड़ा हुआ है ।

ऋ० १०. १०६ में अश्विनौ सम्बन्धी ग्यारह (११) मन्त्र है जिनमें अश्विनौ को साथ-साथ गमन करने वाले (श्ध्रीचीना) तथा पक्षियों के पक्ष के समान एक साथ उगने वाले या संयुक्त और पशु के समान चित्र-विचित्र कहा गया है ।[४६] वे दोनों अग्नि के समान दीप्तिमान है । इस सूक्त में अश्विनौ के सम्बन्ध में दो बातें बहुत ध्यान देने योग्य हैं । एक तो उन्हें विभिन्न वस्तुओं के साथ उपमित किया गया है और दूसरे उनके साथ कुछ ऐसे आभिचारिक शब्दों के प्रयोग जैसे - शतरा, सृण्या,जर्भरी,तुर्फरीतू, पर्फरीका, जेमना, मदेरू, मरायु, बर्बरं, तर्तरीथ, फर्फरत्, सनेरू, भगैविता,फारि्वारम्, पतरा, बचरा, आदि[५०] उनके उन रूपों का संकेत करते हैं, जिनका सम्बन्ध परवर्ती काल में अभिचार कर्मों के साथ जुड़ता चला गया है ।

१० । १३१ में दो मन्त्रों में अश्विनौ की चर्चा है,जहां वे इन्द्र की रक्षा करते हुये कहे गये हैं । उनके सम्बन्ध में कहा गया

----

४६. ऋ० १०. १०६ . ३.

५०. वही १०. १०६. ५ ; ६ ; ७ ; ८ ; ६.

है कि वे सुन्दर काव्यों या मन्त्रों के द्वारा इन्द्र की वैसे ही रक्षा करते हैं जैसे पिता अपने पुत्र की करता है ।

इसके पश्चात् केवल एक सूक्त में ही स्वतन्त्र रूप से अश्विनौ की चर्चा है जिसमें कुल छ: मन्त्र है । जिसमें अत्रि,कक्षीवान, और भुज्यु की रक्षा करते हुये अश्विनौ को शुभ्र और दंसिष्ठ (दक्ष या कुशल) कहा गया है । एक अन्य सूक्त में (१०. १८४ में) एक अन्य मन्त्र में अश्विनौ की चर्चा विष्णु,त्वष्ट्र, प्रजापति,सिनीवाली, सरस्वती आदि देवताओं के साथ अश्विनौ को गर्भधारक के रूप में आहूत किया गया है ।[५१]

मण्डल क्रम की दृष्टि से ऋग्वेद के प्रथम मंडल की चर्चा सर्वप्रथम होनी चाहिये थी किन्तु वंशानुगत मण्डलों की भाषा-शैली, विषय-वैविध्य, देवता-क्रम और ऋषियों को प्राचीनता आदि को ध्यान में रखकर द्वितीय से सप्तम मण्डल पर्यन्त विकीर्ण अश्विनौ सूक्तों की चर्चा प्रथमत: की गयी और तत्पश्चात् अष्टम् और दशम् मण्डलों को ग्रहण किया गया है । इन मण्डलों में अश्विनौ के जिन-जिन मुख्य-मुख्य स्वरूपों का संकेत किया गया है । प्राय: उन्हीं

---

५१. गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावधत्तां पुष्करस्रजा ।।
- ऋ० १०. १८४. २.

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना,
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ।।
- ऋ० १०. १८४. ३.

की अनुवृत्ति प्रथम मण्डल के सूक्तों में दृष्टिगत होती है जिसे संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । प्रथम मण्डल में प्रारम्भ में ही तृतीय सूक्त में अश्विनौ सम्बन्धी तीन मन्त्र है जिसका स्थान विश्वेदेवा: सूक्तों के अन्तर्गत प्राप्त होता है । इन मन्त्रों में अश्विनौ द्रवत्पाणि, शुभस्पती, पुरुभुजा, पुरुदंससा, धिष्णया, दस्रा, नासत्यौ, रुद्रवर्तनी आदि विशिष्ट विशेषणों से[52] युक्त होकर हमें पूर्वगामी चर्चाओं के साथ संलग्न करते हैं । इसके पश्चात् १५ वें सूक्त में एक मन्त्र में विश्वेदेवा: के साथ अश्विनौ को 'शुचिव्रत' और 'यज्ञवाहस' कहा गया है ।[53] इसके पश्चात् बाइसवें (२२ वें) और तीसवें (३० वें) - इन दो सूक्तों में क्रमश: चार और तीन मन्त्रों के अन्तर्गत अश्विनौ की चर्चा है जिनमें एक मन्त्र में उन्हें 'दिविस्पृश' (ऋ० १. २२. २) कहा गया है । अन्य मन्त्रों में कोई ऐसी विशिष्ट बात नहीं है, जिनका संकेत किया जा सके । चौंतीसवें (३४ वें) सूक्त के अन्तर्गत १२ मन्त्र है, जिनमें स्वतन्त्र रूप से अश्विनौ की चर्चा है । इस सूक्त की सबसे बड़ी विशेषता यह है

---

५२. अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ।
- ऋ० १. ३. १.

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिर:
- वही १.३. २.

दस्रा युवाकव: सुता नासत्या वृक्तबर्हिष: ।
आ यातं रुद्रवर्तनी ।।
- वही १. ३. ३.

५३. ऋ० १. १५. ११.

कि यहां प्रत्येक मन्त्र में अश्विनौ को किसी न किसी त्रिक् के साथ संलग्न किया गया है। जैसे उनके तीन पगियों की बात, तीन स्कम्भ, तीन रात्रियां, तीन बार यज्ञ को प्रोक्षण, तीन हवियां, तीन बार उनका आवर्तन, तीन बार संरक्षण आदि। इस प्रकार अश्विनौ के साथ इन त्रिकों को विशेष महत्व दिया गया है। जो अन्य सन्दर्भों में बहुत कम प्राप्त होता है। उनके लिये तीन बार हवि का समर्पण किया जाता है और वे रात दिन पृथिवी के ऊपर और द्युलोक के नीचे तीन बार परिक्रमा करके स्वर्ग की रक्षा करते हैं।[५४] उनका रथ त्रिवृत है और तीन चक्रों वाला है और तीन जगहों से बंधा हुआ है।[५५] वे एकादश को त्रिगुणित करते हैं अर्थात् तैंतीस देवताओं के साथ मधुपान करने के लिये यज्ञ में गमन करते हैं।[५६] ऋ० १। ४६ में उषस् के साथ अश्विनौ की संलग्नता और परोक्ष रूप में उषस् की प्रशस्ति कही गयी है। द्युलोक की प्रिया उषस् अपने अपूर्व रूप के साथ विभासित होती है और उसी के साथ सिन्धु जिनकी माता है ऐसे मन के समान तीव्र गति वाले अश्विनौ अपने रथ को आकाश मार्ग से यज्ञ स्थान में मधुपान करने के लिये प्रवर्तित करते हैं। इनका अनुगमन करती हुयी उषस् उनकी श्री को धारण करती हुयी संचरण करती है।[५७] इसके अनुवर्ती सूक्त में १० मन्त्रों के अन्तर्गत अश्विनौ की स्तुतियां है जिनमें उनसे सोमाभिषव के पश्चात् सोमपान करने के लिये आगमन करने की प्रार्थना की गयी है। कण्व के गृह में अश्विनौ शाश्वत रूप से सोम-

---

५४. ऋ० १. ३४. ८.

५५. वही १. ३४. ६.

५६. वही १. ३४. ११.

५७. वही १. ४६. १ ; २ ; ३ ; १४.

पानार्थ गमन करते हैं। इसके पश्चात् एक सूक्त (६२ वें) के तीन मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुति उषस् के साथ की गयी है।

प्रथम मंडल का एक सौ बारहवां (११२ वां) सूक्त २५ मन्त्रों का संकलन है जिसमें अश्विनौ को उन अनेक व्यक्तियों की स्मृति दिलायी गयी है जिनकी सहायता उन्होंने विविध रूप में की है। तद्वद रक्षाओं के साथ उनसे आगमन करने की प्रार्थना की गयी है। यह सूक्त एक प्रकार से अश्विनौ सम्बन्धी समस्त आख्यायिकाओं का संकेतक है। इसके अन्तर्गत कण्व, कर्कन्धु, वय्य, पृश्निगु, पुरुकुत्स, परावृज, वर्तिका, विश्पला, अश्व्य प्रेणी, वश, औशिज, कक्षीवान्, मन्धाता, भरद्वाज, अतिथिग्व, कक्षीवुज, दिवोदास, त्रसदस्यु, वम्र, कलि, वित्तजानि, पृथि, शयु, अत्री, मनु, शर्याति, विमद, अध्रिगु, कृशानु, तुर्वीति, दभीति, आदि का नाम अश्विनौ सम्बन्धी आख्यायिकाओं तथा इनके रक्षण कार्य को व्यक्त करता है।

इसके पश्चात् १।११६ से १।१२० अर्थात् पांच सूक्तों में कुल ८३ मन्त्रों में अश्विनौ की एक साथ स्तुतियां विद्यमान हैं, जिसमें अश्विनौ के अनेक प्रकार के गुणों की एवं उनके स्वरूप की अभिव्यक्ति की गयी है। कक्षीवान् दैर्घतमस् औशिज के ऋषित्व में दृष्ट इन मन्त्रों में जहां एक ओर पूर्व-पूर्व वर्णित अश्विनौ के गुणों का संकेत है वहीं कुछ नये तथ्यों का समावेश भी किया गया है। जैसे अश्विनौ के लिये शत-शत कुम्भों में भरे मधु को प्रस्तुत करना[५८] और सहस्रों अश्वों वाले युद्धों में अपने लोगों की सहायता करना आदि है।[५९] एक सौ

---

५८. ऋ० १. ११७. ६.

५९. वही १. ११७. ६.

एक मेषों की बलि अश्विनौ के लिये दी जाती है और इसी प्रकार की अन्य बातें भी इन सूक्तों में प्राप्त होती है।

ऋग्वेद १। १३६ में विश्वेदेवा के साथ तीन मंत्रों में अश्विनौ की चर्चा है जिसमें कोई विशिष्ट बात नहीं है। इसके पश्चात् १। १५७ में छः मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुति है। प्रथम मन्त्र में सूर्य के उदित होने पर अग्नि का उद्बोधन और उसके पूर्व आह्लाद कारिणी उषा के द्वारा तमस् का विवासन और तत्पश्चात् अश्विनौ का गमन करने के लिये अपने रथ का संयोजन तथा सवितृ देवता का पृथक् रूप में समस्त सृष्टि का प्रेरित करना भी अभिव्यक्त है।[६०] इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि अश्विनौ सूर्य और सवितृ से भिन्न है। अत: उनसे सम्बन्धित देवशास्त्र में कम से कम इस सिद्धान्त का खण्डन किया जा सकता है कि अश्विनौ सूर्य और चन्द्रमा के रूप में है।[६१] इसके बाद एक मन्त्र में उन्हें समस्त सृष्टि में गर्भ का आधान करते हुये

---

६०. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु १ षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देव: सविता जगत् पृथक्।।
— ऋ० १. १५७. १.

६१. लुडविग : ऋग्वेद का अनुवाद ३, ३३४ ; हि० वे० का० १, ५३५ ; हार्डी : वे० पी० ४७- ८।

कहा गया है।[६२] इसके अनुवर्ती सूक्त में भी छ: मन्त्रों में अश्विनौ की स्तुति की गयी है जिसमें उन्हें धन प्रदाता के रूप में उपस्थित किया गया है।

प्रथम मंडल के अन्तिम भाग में १। १८० से १। १८४ तक पांच सूक्तों के अन्तर्गत ३६ मन्त्रों में अश्विनौ सम्बन्धित स्तुतियां संकलित हैं। ये सभी मन्त्र अगस्त्य मैत्रावरुण द्वारा दृष्ट है और सभी प्राय: त्रिष्टुप छन्दों में है। एक ही ऋषि के द्वारा दृष्ट होने के कारण शैली और कथ्य में एक विशिष्ट तारतम्य है जिनमें अश्विनौ के सामान्य गुणों का कथन है जिनकी चर्चा उपर्युक्त विवेचन में हो चुकी है। इस प्रकार प्रथम मंडल यहां एक ओर पूर्ववर्ती प्राचीन मण्डलों से सम्बन्धित सामग्री का अनुवर्तन करता है वहीं अनेक आख्यायिकाओं तथा अश्विनौ से सम्बन्धित अनेक नये तथ्यों को भी प्रस्तुत करता है। इसलिये अश्विनौ सम्बन्धी अनुसन्धान में इन समस्त मन्त्रों का एक विशिष्ट तारतम्य में अध्ययन करके ही आगे की सामग्री का कथन किया जा सकता है। ऋग्वेद में अश्विनौ से सम्बन्धित जिन तथ्यों का कथन है प्राय: उन्हीं का अनुवर्तन परवर्ती संहितायें, ब्राह्मण, आदि करते हैं। यहां सूत्र रूप में ऋग्वेद के समस्त अश्विनौ सम्बन्धी सूक्तों की चर्चा की गयी जिसके आधार पर अग्रिम सामग्री का विश्लेषण एवं विवेचन किया जा रहा है।

-०-

---

६२. युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं भुवनेष्वन्त: ।।
- ऋ० १. १५७. ५.

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

-o-

ऋग्वेद में अश्विनौ का स्वरूप

ऋग्वेद के देवता-युग्मों में मित्रा-वरुणौ, इन्द्राग्नी, इन्द्राविष्णू आदि जहां युग्म के साथ-साथ अपने व्यष्टि रूप में भी अपना एक निजी व्यक्तित्त्व लिये हुये अपनी देवशास्त्रीय परिकल्पना को स्पष्ट रूप में घोतन करने में समर्थ है, वहीं अश्विनौ एक ऐसा देवता युग्म है जिसको दो रूपों में विभक्त नहीं किया जा सकता । प्रज्ज्वलित अग्नि और काष्ठ का सम्बन्ध, वाक और प्राण का सम्बन्ध जिस प्रकार परस्पर भिन्न नहीं है, वैसे ही अश्विनौ का स्वरूप भी परस्पर भिन्न नहीं है । `अश्विनौ ` कहते ही एक युग्म का तो बोध होता है,किन्तु किसी भी प्रकार की व्यष्टि का बोध नहीं हो सकता । ऋग्वेद में इनसे सम्बन्धित जो भी तथ्य हैं वे इन दोनों का एक साथ बोध कराते हैं । यद्यपि ऐसे भी सन्दर्भ हैं जहां इनकी तुलना रात्रि और दिन के साथ की गयी है । किन्तु वहां भी इनके पारस्परिक सम्बन्ध को पृथक् नहीं किया गया है । जैसे - ऋग्वेद में एक स्थान पर यह कहा गया है कि इन दोनों का सम्बन्ध मनीषियों के द्वारा हिमाच्छादित दिन और रात्रि के समान है[१], जिसमें प्रकाश का कम और तमस् एवं शैत्य का भाव अधिक निहित है । इस अभेद-दर्शी स्वरूप के होते हुये भी ऋग्वेद के कुछ ऐसे सन्दर्भ हैं जहां उनकी पृथकता की झलक भी मिलती है ।

---

१. त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ।।

- ऋ० १.३४.१.

ऋग्वेद में एक स्थान में कहा गया है कि ये अश्विनौ अपने-अपने नाम के साथ अपना-अपना शरीर लिये हुये यत्र-तत्र अनेक प्रकार से उत्पन्न हुये हैं और उनमें से एक वीर युद्ध को जीतने की कामना वाला है और दूसरा द्युलोक के सुन्दर पुत्र रूप में है।[2] सम्भवत: इसी को ध्यान में रखकर श० ब्रा० में इन्हें आकाश और पृथिवी के रूप में माना गया है[3] और इसी परम्परा में यास्क ने उनमें से एक को रात्रि का पुत्र और दूसरे को उषा का पुत्र सूर्य कहकर पृथक् किया है।[4] यही नहीं, यास्क ने अन्य आचार्यों के मतों को भी प्रदर्शित किया है, जिन्होंने 'अहोरात्रावित्येके,[5] सूर्यचन्द्रमसावित्येके,[6] राजानौ पुण्यकृतावित्येतिहासिका:'[7] कहकर अश्विनौ सम्बन्धी धारणा को व्यक्त किया है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल का एक सूक्त भी इस पृथकता की भावना को प्रकट करता है, जिसके कुछ मन्त्रों में इन दोनों को अलग-अलग रूप में उपस्थित किया गया है। यद्यपि यह सूक्त अवान्तरकालीन अंशों के रूप में देखा जाता है, किन्तु इसकी भाषा-शैली का निरीक्षण करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्राचीन अंशों के समीप है। इस सूक्त के अन्तर्गत

---

२. ऋ० १. १८१. ४.   ५.७३.४ नाना जातावरेपसा

३. 'इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षम् अश्विनौ

- श० ब्रा० ४. १. ५. १६.

४. निरू० १२. २.

५. वही १२ .१ .

६. वही १२. १.

७. वही १२. १.

जिस प्रकार से दोनों के गुणों का अन्तर, जैसे उनमें से `एक यज्ञ को जीतने[8] की इच्छा वाला और दूसरा द्युलोक का सुन्दर पुत्र` अथवा `एक पुरातन वीर शत्रु को परास्त करने वाला और मधुर अन्न रस पान सर्वत्र संचार करने वाला` और दूसरा नदियों के वेग को वर्धित करने वाला[9], अथवा `एक पिशङ्ग वर्ण वाला दूसरा हरित वर्ण वाला`[10] - इस प्रकार के वर्णन इन अश्विनौ को बहुत कुछ सूर्य और चन्द्रमा के समीप उपस्थित करते हैं । किन्तु स्पष्ट संकेत न होने के कारण इन दोनों के मध्य में विभाजन रेखा अंकित करना कठिन है और यही कारण है कि सम्पूर्ण वैदिक परम्परा में इनके व्यष्टि व्यक्तित्व के प्रति सन्देह व्याप्त है ।

अश्विनौ से सम्बन्धित उनके दो नाम दस्रा और नासत्या बहुत प्रसिद्ध हैं जिसमें दो बार यह एक वचन में और एक बार बहु वचन में

----

८. इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा[1] नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ।।
- ऋ० १. १८१. ४.

९. प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ।।
- ऋ० १. १८१. ५.

१०. प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ।।
- ऋ० १. १८१. ६.

भी है। शेष सभी स्थानों पर द्विवचनान्त रूप अश्विनौ के विशिष्ट अभिधान के रूप में प्रयुक्त है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल से लेकर दशम मंडल पर्यन्त सभी मण्डलों में दस्रा का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि प्राचीन काल से ही इस शब्द का प्रयोग होता रहा है। यही बात नासत्या के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से नासत्या का प्रयोग ऋग्वेद दस्रा से लगभग दुगुना है। तुलनात्मक देवशास्त्र की दृष्टि से नासत्या की व्यापकता अधिक प्रतीत होती है। एशिया माइनर में बोगज़क्यूई के उत्खनन से प्राप्त मृत्तिका मुद्राओं पर हित्ताइत और मितानी के राजाओं के मध्य हुयी सन्धि में नासत्या को देवता रूप में साक्षी बनाया गया है।[११] इस सन्धि का काल चौदहवीं शती ईसा पूर्व माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि नासत्या वैदिक संस्कृति के ही देवता नहीं रहे वरन् सम्पूर्ण भारत-ईरानी संस्कृति में व्याप्त थे। दस्रा विशेषण वहां नहीं मिल रहा है, इसलिये दस्रा ऋग्वैदिक ऋषियों की अपनी देन कही जा सकती है।

ऋग्वैदिक मन्त्रों में बहुत से सन्दर्भ ऐसे हैं जहां दस्रा और नासत्या का प्रयोग एक साथ हुआ है किन्तु अधिकांशत: यह दोनों नाम पृथक्-पृथक् मन्त्रों में ही प्रयुक्त हैं। दस्रा को व्याख्याकारों ने दर्शनीय अर्थ में ग्रहण किया है किन्तु दस्रा को यदि हम `दस उपक्षये` धातु से निष्पन्न करें और `शत्रुओं के उपक्षयिता` `दूसरों को अभिभूत करने वाले शक्ति सम्पन्न` या `शक्ति युक्त कार्य करने वाले` आदि अर्थों में ग्रहण करें तो अधिक उचित होगा। उन्हीं अश्विनौ से सम्बन्धित

---

११. इँलानी नासतिया इन्दर नासतियाना- Journal of Royal Asiatic Society, 1909, "On the Antiquity of Vedic culture." By H. Jacobi, P. 723.

द्रष्टव्य- डा० सिद्धनाथ शुक्ल, ऋग्वेद चयनिका, भूमिका, पृ० ६।

ऋ० के एक मन्त्र में `मा वां रातिरुप दसत् कदाचन`[१२] आया है, जिसमें `दसत्` का अर्थ - `उपक्षय` से सम्बन्धित है। अत: यह अन्त:-साक्ष्य हमें दस्रा के उपर्युक्त अर्थों की ओर ले जाता है। किन्तु दस्रा के सन्दर्भ वाले मन्त्रों में अश्विनौ का शुभ्र, मधुर, स्वर्णिम आदि रूप व्यक्त होने के कारण दस्रा को हम इन्हीं अर्थों के समीप अधिक मान सकते हैं। एक मंत्र `दस्रा पुरुदंससा धिया अश्विना`[१३] आया है जिसमें पुरुदंसस् `विविध कार्य करने वाला` अर्थ दस्रा के अर्थ को `सुन्दर कार्य करने वाले` के रूप में प्रस्तुत करता है।

दस्रा के विभिन्न प्रयोग अश्विनौ को विभिन्न रूपों में उनके व्यक्तित्व के विकास के साथ उपस्थित करते हैं जहां एक ओर वे विविध कर्मों के कर्ता हैं, वहीं शुभ कर्मों के स्वामी होकर स्वयं हर्षित होकर दूसरों को भी हर्षित करते हैं और इसी शुभस्पती दस्रा[१४] के रूप में वे शत्रुओं के विनाशकर्ता भी हैं।[१५] उनका यह शत्रु विनाशक रूप ऋ० के कुछ सूक्तों में दस्रा के प्रयोग के साथ विशिष्ट रूप में संयुक्त है। ऐसे सन्दर्भों में उनका वीरोचित और[१६] भयंकर रूप उनके मधुमय रूप के विरोधाभास के रूप में प्रकट होता है।

----

१२. ऋ० १. १३९. ५.

१३. वहीं ८. ८७. ६.

१४. वहीं १०. ४०. १४.

१५. वहीं ८. ८६. १.

१६. वहीं १. ११७. २१ ; १. १८२. २. ; १. १८२. ३, १. १८३. ५.

दस्रा के परिप्रेक्ष्य में ही हम नासत्या के प्रयोग पर भी दृष्टि डाल सकते हैं। नासत्या का प्रयोग, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दस्रा से द्विगुणा ऋग्वेद में लगभग सौ बार हुआ है। नासत्या की व्युत्पत्ति 'न असत्यौ इति' रूप में की जा सकती है और पाणिनि व्याकरण के आधार पर 'नभ्राण्नपान्नवेदानासत्या[१७] - - - - - - - - असत्यौ नासत्यौ' के आधार पर भी यही व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। निरुक्तकार यास्क ने नासत्यौ की निष्पत्ति करते हुये कहा है -- 'सत्यावेव नासत्यावित्यौर्णवाभ: सत्यस्य प्रणेतारौ इत्याग्रायण: । नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा ।[१८] इस व्युत्पत्ति में कोई ऐसी बात नहीं दृष्टिगत होती, जो अश्विनौ की मूल उत्पत्ति या उनके अन्तर्गत निहित मूल-भावना को व्यक्त करती हो।

नासत्यौ की व्युत्पत्ति में जहाँ एक और सत्य में निहित सत् धातु की संस्थिति दृष्टिगत होती है, जिससे उनके सत्य-स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है, वहीं दूसरी ओर नस् धातु व्याप्त करने के अर्थ में, सत् धातु से भी अधिक समीप दृष्टिगत होती है। नस् धातु का प्रयोग ऋ० में नौ बार हुआ है।[१९] जो इस बात का द्योतक है कि ऋग्वेद संहिता के अवान्तरकालीन अंशों में इसके प्रयोग ही रहे थे और उससे निष्पन्न शब्दों की स्थिति भी सम्भव है, अत: यदि हम नस् धातु से नासत्य की निष्पत्ति माने और अश्विनौ शब्द में स्थित 'अशू-व्याप्तौ' के साथ

---

१७. पा० सू० ६.३. ७५.

१८. निरु० ६. १३.

१९. ऋ० १. १८६. ७ ; २.१६.८ ; ४. ५८.८. ; ८.७२.१४ ;
६. ६८.४ ; ७९.३ ; ८ ; ८२. ३ ; ८६.३.

इसकी तुलना करें तो नस् धातु की स्थिति को नासत्यौ के सन्दर्भ में स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी । इस प्रकार से अश्विनौ और नासत्यौ मूल अर्थ की दृष्टि से समान हो जायेंगे और मात्र नाम की ही व्यापकता नहीं वरन् समान अर्थ की भी व्यापकता व्यक्त होगी । इस प्रकार हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अश्विनौ में निहित अश्-व्याप्तौ को ध्यान में रखकर ही धीरे-धीरे 'नस् व्याप्तौ से निष्पन्न नासत्यौ का प्रयोग अश्विनौ के स्थान पर होने लगा । अत: हम यहाँ नासत्यौ को इसी अर्थ के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण कर ऋ० के विभिन्न सन्दर्भों में उसकी व्याप्ति पर विचार कर रहे हैं ।

ऋ० के बहुत से ऐसे सन्दर्भ हैं जिसमें 'नासत्यौ' का प्रयोग अश्विनौ के साथ-साथ हुआ है, जिससे स्पष्ट है कि प्रथमत: 'नासत्यौ' अश्विनौ के मात्र साधारण विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त होना प्रारम्भ हुआ है । 'अश्विनाविह गच्छतं नासत्या'[20] 'अभि वां नूनमश्विना - - - - -- - -- - नासत्या'[21] 'नू मे गिरो नासत्याश्विना'[22] आदि । जो इस बात के द्योतक हैं कि नासत्यौ अश्विनौ का पर्याय नहीं वरन् मात्र विशेषण रूप है और मात्र अश्विनौ से नासत्यौ की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी । किन्तु धीरे-धीरे नासत्यौ अश्विनौ का विशिष्ट अभिधान बन गया और मात्र नासत्यौ कह देने से अश्विनौ की प्रतीति होने लगी । यह बात ऋ० के प्राचीन और नवीन सभी मंडलों

----

२०. ऋ० ५. ७८. १.

२१. वही ७. ६७. ३.

२२. वही ८. ८५. ६.

में दृष्टिगत होती है।[२३] किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होगा कि अश्विनौ के देवशास्त्र के विकास के साथ-साथ ही नासत्यौ अभिधान के प्रयोग का भी विकास हुआ है। इस प्रकार नामों की शृंखला में दस्रा और नासत्या धीरे-धीरे अश्विनौ का स्थान ग्रहण करते हुये प्रतीत होते हैं।

नामों की इसी विशेषणात्मक सरणि में नरौ,[२४] दिवोनपातौ,[२५] पुरुदंसा,[२६] पुरुभुजा,[२७] पुरुभूतमा,[२८] पुरुतमा,[२९] पुरुशाकतमा,[३०]

---

२३. ऋ० ५. ७७.४ ; ६. ६३.१. ; १० ; ७. ६२. २ ; ८.९.६.

२४. वही २. ३९. ८.

२५. वही १. ११७. १२. ; १.१८२.१ ; १. १८४. १ ;
४.४४.२ ; १०.६१.४.

२६. वही ७.७३.१ ; १.३.२ ; ६.६३.१० ; ८.९.५ ; ८.७.६ ;
एकवचनान्त = पुरुदसम् = ३.१.२३ ; ५.११ ; ६-११ ;
७. ११. ; १५.७. ; २२.५ ; २३.५.

२७. वही १.३.१ ; १.११६. १३ ; १.११६.१४ ; ५.४९.१ ;
५.७३.१ ; ६.६३.५ ; ८ ; ८.८.१७ ; १०.६ ;
८.८६. ३.

२८. वही ५.७३.२ ; ८.२२.३ ; ८. २२.१२.

२९. वही ७. ७३. १.

३०. वही ६. ६२. ५.

युवानौ,[३१] वाजिनीवसू,[३२] शुभस्पती,[३३] शचीवसू,[३४] रुद्रौ,[३५] रुद्रवर्तनी,[३६] हिरण्यवर्तनी,[३७] माध्वी,[३८] इन्द्रतमा,[३९] वह्नी[४०] आदि भी ग्रहण किये जा सकते हैं। जिनके माध्यम से अश्विनौ के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। ये सभी विशेषण मात्र अश्विनौ के ही नहीं वरन् अन्य देवता युग्मों के साथ भी प्रयुक्त हुये हैं। इसलिये इन्हें दस्रा या नासत्या की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता है। अपितु इनके माध्यम से अश्विनौ को अन्य देवता युग्मों के साथ रखकर तुलनात्मक दृष्टि से उनके एवं अन्य देवता युग्मों के कार्यों की समीक्षा की जा सकती है।

---

३१. ऋ० १. ११७.१४ ; ३. ५८.७ ; ६. ६२.४ ; ७.६७.१० ; ६६ .८.

३२. वही ५. ७८.३.

३३. वही १.३.१ ; ३४.६ ; ४७.५ ; ११६.५ ; १२०.६ ; २.३१.४ ; ४.४३.६ ; ५.७५.८ ; ८.५.५ ; ११ ; ८.१६ ; २२.४ ; ६ ; १४ ; २६.६ ; ८७.५ ; १०.४०.४ ; १२ ; १३ ; १४ ; ८५-१५ ; ६३.६.

३४. वही १.१३६.५ ; ७.७४.१.

३५. वही १०.६३.७ ; १०.६१.१५.

३६. वही १.३.३ ; ८.२२.१ ; १४ ; १०.३६.११.

३७. वही १. ६२.१८ ; ५.७५.२ ; ३ ; ८.५.११ ; ८.१ ; ८७.५.

३८. वही १.१८४.४ ; ४.४३.४ ; ५ ; ५. ७५.१-६ ; ६.६३.८ ; ७.६७.४ ; ७.

३९. वही १.१८२.२.

४०. वही १. १८४.१.

अश्विनौ के विविध विशेषणों के साथ उनके रथ की चर्चा उनके स्वरूप निर्धारण में सहायक होगी। उनका रथ तीन धुरि वाला और त्रिवृत् कहा गया है 'त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन यातमश्विना'[४१] जिससे वर्ष-चक्र अथवा तीन ऋतुओं का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। साथ ही यज्ञ के विविधसवनों के साथ भी इसका सम्बन्ध हो सकता है जिनमें सोमरस या मधु के माध्यम से इनको हवि प्रदान की जाती है जिसके कारण इनको 'माध्वी'[४२] कहा जाता है। यह रथ हिरण्यमय चक्र वाला है[४३] और कभी बाधित नहीं होता है।[४४] मन के वेग से भी अधिक तीव्र गति से चलने वाला[४५] यह रथ सुन्दर धन से युक्त होकर सूर्या का वहन करता है। यः सूर्यां वहति - - -- - - - -- -- -- - पुरुतमं वसूयुम्।[४६] यह रथ कभी उषाकाल के प्रारम्भ में[४७] और कभी सूर्योदयकाल में[४८] निश्चित समय पर आकाश और पृथिवी के चारों ओर भ्रमण करता हुआ यज्ञ स्थान पर गमन करता है।

---

४१. ऋ० ८.८५.८ ; १०.४१.१ ; १. ११८. १ ; २.
४२. वही १. १८४.४ ; ४.४३.४ ; ५ ; ५. ७५.१-६.
४३. वही १. १८१. १ ; ८.५.२८ ; ८.५.२६ ; ८.२२.५.
४४. वही ८. ५. ३४.
४५. वही १. ११७. २ ; ६.६३.७ ; ६.६८. ३ :
४६. वही ४. ४४. १ ; १. ११६.१७.
४७. वही ४. ४५. २ ; ७. ६६.५ ; ७. ७९.३.
४८. वही ४. ४५. १.

अश्विनों के रथ के साथ कुछ ऐसी बातें जुड़ी है जो उसे अन्य देवताओं के रथ से भिन्न बनाती है । जैसे यह कहा गया है कि रथ का एक चक्र स्थिर रहने पर भी गतिमान रहता है ।[४६] इस प्रकार एक चक्र का गतिमान न होना और दूसरे का गतिमान होना, उन्हें सूर्य और चन्द्रमा के रूप में होने का संकेत करता है । वह रथ मधु वर्ण वाला, घृत प्रीत वाला, हिरण्यवर्ण वाला, अन्न वहन करने वाला, रथों में श्रेष्ठ विशाल स्वरूप वाला, मेघों से प्रेरित पक्षियों के समान उड़ने वाला कहा गया है ।[५०]

अश्विनों का रथ जहां अनेक सन्दर्भों में अश्वों के द्वारा खींचा जाता हुआ कहा जाता है, वहीं कभी-कभी वह गदहों से भी युक्त कहा गया है : 'कदा योगी वाजिनो रासभस्य ।'[५१] यही नहीं कभी-कभी उसे अश्वों के साथ-साथ गौवों से भी युक्त कहा गया है,[५२] जहां हम गौवों का अर्थ सूर्य किरणों अथवा उषाओं के सन्दर्भ में ग्रहण कर सकते हैं, जिससे स्वयं अश्विनौ 'स्पृहणीय श्री से युक्त शरीर वाले होकर[५३] गमन करते हैं ।

----

४६. ऋ० ५. ७३. ३.

५०. वही १. ४६.३ ; ३.५८.८ ; ३.५८.६ ; ५.७४.८ ;
५. ७७.३.

५१. वही १. ३४.६. ; १० ; १. ११६. ७. ;
ऐ० ब्रा० ४.७-६.

५२. वही ७.७२.१.

५३. स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना
- वही ७. ७२. १.

अश्विनों का रथ पलक से भी वेगवान होकर आकाश से उद्भूत होकर अपना प्रसरण करता हुआ नदियों के जल का स्पर्श करता है और इस प्रकार समस्त सृष्टि में भ्रमण करता है।[५४] यही नहीं उसे जब पंचभूमा कहा जाता है तो उसके साथ समस्त प्राणी संयुक्त हो जाते हैं और इस प्रकार वह रथ समस्त प्राणियों में अपना प्रसरण करता है और इस स्थिति में वह वायु के समान सब में प्राण का संचार करने वाला कहा जा सकता है।[५५]

अश्विनों के रथ के साथ-साथ सोमपान और सुरापान दोनों का संयोग है। अधिकांश मन्त्रों में उनका आह्वान इस रथ के साथ सोमपान से[५६] जुड़ा हुआ है, किन्तु कुछ मन्त्रों में शतकुम्भों में भरी हुयी सुरा का भी वहन उनका रथ करता है।[५७]

अश्विनों के इस रथ के साथ तीन बातें बहुत ही मुख्यरूप से जुड़ी हुयी हैं, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है। इनमें प्रथम है - उस रथ का त्रिविधस्वरूप, जो समस्त ऋतु चक्र का वाचक है। दूसरा - उसका एक स्थिर चक्र और दूसरा गतिमान, जो रात और दिन का वाचक अथवा उनके कारक चन्द्रमा और सूर्य का लाक्षणिक वर्णन ; तीसरा पहलू उस रथ पर सूर्या के गमन के साथ सम्बन्धित है। सूर्या से सम्बन्धित जो भी

----

५४. ऋ० १. ४६. ८ ; ६ ; ८.७३.२.

५५. स पप्रथानो अभि पंचभूमा
- वही ७. ६९. २.

५६. वही १. १२०. ११ ; ८.८.१ ; ८.८७.५.

५७. वही १. ११६. ७.

मन्त्र हैं, प्राय: अवान्तरकालीन है। ऐसी स्थिति में इन्हें हम दशम मंडल के प्रसिद्ध सूर्या-सूक्त से सम्बन्धित मान सकते हैं। सूर्य की दुहिता रूप में यह सूर्या और कुछ नहीं, उषाओं की प्रतीकमात्र है, जो अश्विनों के रथ पर आरूढ होकर उन्हें पति रूप में वरण करती हुयी समस्त जगत को प्रकाशित करती है।[५८] उषा का यही लाक्षणिक स्वरूप ऋग्वेद के ऋषियों की मानसी-सृष्टि सूर्या के रूप में प्रकट हुआ है।

अश्विनों के रथ का वर्णन वैदिक ऋषियों की अनेक रहस्यात्मक भावनाओं को उद्घाटित करता हुआ प्रतीत होता है। जैसे एक स्थान पर यह कथन कि 'रथ के हिरण्यमय कोश में वे दोनों अभिसिंचन कर्ता कामनाओं का वहन करते हुये संयुक्त हो।'[५९] यहाँ हिरण्यमय कोश उपनिषदों में वर्णित अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, हिरण्यमय कोश, आदि के समान प्रतीत होते हैं जो आध्यात्मिक धरातल पर अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं। ऐसी ही स्थिति में नासिका से उत्पन्न होने, दो श्वासों या अन्त: श्वास और बहि: श्वास अथवा अन्त: प्राण और बहि: प्राण, जिसका सम्बन्ध सूर्य और चन्द्रमा से स्थापित किया जाता है, के साथ अश्विनों का तादात्म्य उपस्थित कर

----

५८. ऋ० १.३४.५ ; १. ११७.१३ ; १.११६.२ ; १.११६.५ ; ८.८.१० ; ८. २२.१.

५९. आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिष: ।।
- वही ८. २२. ६.

व्याख्या को रहस्यात्मक सम्भावनाओं के साथ जोड़ा जाता है। ऐसे ही अनेक सन्दर्भ अश्विनों के रथ की अनेक रूपता को प्रदर्शित करते हैं।

अश्विनों का रथ जहां एक ओर मन की गति से भी तीव्र कहा गया है[६०] वहीं उसे श्येन पक्षी के समान उड़ने वाला भी कहा गया है। ऐसी स्थिति में वह रथ कभी-कभी अश्व रहित भी कहा गया है। 'अश्विनोरसनं रथमनश्वम्'[६१] जिससे उस रथ का हिरण्यमय होना तो सर्वथा प्रसिद्ध बात है। किन्तु समस्त आकाश और धरती को वह आबद्ध करता है।[६२] यह बात कुछ ही सन्दर्भों में प्राप्त होती है।

उनका यही रथ ऋषियों को पृथिवी से आकाश और आकाश से पृथिवी तक भ्रमण कराता है अथवा उनके समीप अश्विनों को आकाश से पृथिवी की ओर ले आता है।[६३] मात्र इतना ही नहीं वरन् वह रथ आकाश और पृथिवी को चारों ओर से अलंकृत करता है[६४] अथवा उसे परिव्याप्त करता है और इसीलिये वह जिस मार्ग से जाता है वह मार्ग भी अलंकृत होता हुआ अश्विनों के नाम के साथ जुड़ जाता है जिसके

---

६०. ऋ० १. ११८. १.

६१. वही १. १२०. १०.

६२. 'आ वां रथो रोदसी बद्धमानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः'

- ऋ० ७. ६६. १.

६३. वही ४. ४४. ५.

६४. परि द्यावा पृथिवी भूषति।

- ऋ० ८. २२. ५.

कारण अश्विनौ को 'हिरण्यवर्तनी'[६५] कहा जाता है। इसी स्वर्णिम रथ के कारण अश्विनौ का मार्ग भी 'हिरण्यमय' कहा गया है।[६६] १०.३६.१२ के अनुसार यह रथ स्वयं ऋभुओं द्वारा निर्मित है।

अश्विनौ के गमन के लिये इस रथ का प्रसव सवितृ देव ने किया[६७] और इस रथ के आते ही आह्लादक उषायें और सूर्य उदित हो जाते हैं। यह रथ जब घृत और मधु का धारण करता है, तभी ऋषियों के मन में मन्त्रों की प्रेरणा होती है।[६८] इस रथ में जुते हुये अश्व-विशुद्ध, दिव्य, श्रेष्ठ, गमन-शील, मन के समान वेग वाले हैं, जिनके युक्त होने पर यह रथ मधु का वाहक बन जाता है।[६९] रथ द्वारा वहन किये गये इसी मधु का पान करने के लिये मनस्वी ऋषिगण निरन्तर प्रार्थना करते हैं।[७०] इस रथ के सारथि के रूप में ब्रह्मा की भी चर्चा की गयी है।[७१]

अश्विनौ और रासभ का सम्बन्ध

ऋग्वेद में देवताओं के सन्दर्भ में अश्व की चर्चा तो प्राय:

---

६५. ऋ० ५. ७५. २.

६६. वही १. १३९. ५.

६७. वही १. १५७. १.

६८. वही १. १५७. २.

६९. वही १. १५७. ३ ; १. १८१. २ ; १. ११९. १.

७०. वही १. ३४. २ ; ५. ७५. ६ ; ८. ८. ११.

७१. ब्रह्मा भवति सारथि: ।

— ऋ० १. १५८. ६.

मिलती है जो उनके रथों के साथ संयुक्त कहे गये हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी सन्दर्भ हैं जहां रासभ या गर्दभ की चर्चा भी आयी है। रासभ या गर्दभ को अश्व से निकृष्ट कोटि का पशु माना गया है। क्योंकि ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह कहा गया है कि अश्व से आगे या उसके सामने गर्दभ को नहीं ले जाते हैं -- 'न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति'[७२] इससे यह स्पष्ट है कि अश्व की तुलना में गर्दभ को निम्न कोटि का वाहन माना जाता था जो आज भी परम्परा रूप में विद्यमान है। किन्तु अश्विनों के सन्दर्भ में रासभ की चर्चा करना अथवा उनके साथ उसका संयोग उपस्थित करना कुछ विशेष अर्थों को अपने अन्तर्गत संजोये हुये है।

अश्विनों के नाम के साथ अश्व शब्द मूल रूप से संयुक्त है। अतः उनके साथ स्वाभाविक रूप में अश्व को जोड़ना चाहिये, जो ऋ० के विभिन्न सन्दर्भों में प्राप्त भी हो रहा है।[७३] किन्तु अश्व के स्थान पर जब रासभ को ग्रहण किया जाता है तो उससे यह प्रतीत होता है कि अश्विनों वाजीकरण औषधियों के प्रदाता माने जाते हैं। ये वाजीकरण औषधियां शक्ति एवं बल की प्रतीक हैं। अतः अश्व और रासभ के साथ वाजीकरण औषधियों अथवा उससे सम्बद्ध शक्ति या बल को समन्वित करना सम्भव है।[७४] इसीलिये अश्व और रासभ दोनों का नाम 'वाजि' कहा गया है। इस प्रकार इस वाजीकरण शक्ति से सम्पन्न अश्व और रासभ का अश्विनों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

---

७२. ऋ० ३. ५३. २३.

७३. वही १. ११७. २ ; ३ ; ६. ६३. ७. इत्यादि

७४. वही १. १६२. २१.

कुछ आख्यायिकाओं में यह संकेत किया गया है कि प्रजापति ने अश्विनौ को किसी समय युद्ध करने के लिये रासभ को प्रदान किया था।[75] युद्धों में वह अश्व से अधिक धैर्यशाली और विजेता माना जाता है।[76] इसलिये भी अश्विनौ के वाहन के रूप में उसको गृहण किया गया है। ब्राह्मणों में यह कहा गया है कि अश्विनौ ने गर्दभ द्वारा खींचे जाते हुये रथ से विजय प्राप्त की।[77]

इससे भिन्न एक कारण और हो सकता है। इन्हें देवताओं के अन्तर्गत अनुवर्ग या निकृष्ट देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। इसीलिये जब देवताओं के वाहन रूप में अश्व को स्वीकार किया जाये तो उनके अनुज अश्विनौ के वाहन को भी अश्व मानना देवताओं के साथ उनकी बराबरी करना है। अत: वह देवताओं के साथ समान कोटि या स्तर को न प्राप्त कर सकें इसलिये उनके वाहन रूप में अश्व के स्थान पर रासभ या गर्दभ की स्थापना की गयी है। इस प्रकार वाहन का वितरण करने वाले अथवा देवताओं के समस्त संसाधनों का वितरण करने वाले प्रजापति ने अश्विनौ को रासभ प्रदान किया होगा।

----

७५. प्रजापतिना दत्त: रासभ: - - - - - - द्र० सायणभाष्य

- ऋ० १. ११६. २.

७६. ऋ० १. ११६. २.

७७. 'गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम्'

- ऐ० ब्रा० ४. ६.

'तदश्विना उदजयतां रासभेन'

- कौ० ब्रा० १८. १.

अश्विनौ का अन्य देवों के साथ सम्बन्ध

ऋग्वेद में अश्विनौ का विकास यद्यपि अग्नि, इन्द्र, वरुण सवितृ आदि देवताओं से अवान्तर-कालीन प्रतीत होता है, किन्तु इन देवताओं के साथ उनके सम्बन्धों की परिकल्पना अश्विनौ सूक्तों में एवं अन्य सन्दर्भों में निरन्तर दृष्टिगत होती है। विश्वेदेव सूक्तों में अनेक स्थानों पर विभिन्न देवताओं के साथ अश्विनौ का आह्वान किया गया है या स्वयं अश्विनौ से यज्ञ में विभिन्न देवताओं का आह्वान करने की प्रार्थना की गयी है। जिन देवताओं के साथ अश्विनौ प्रमुख रूप से जुड़े हुये हैं, उनमें उषस्, सरस्वती, अर्यमन्, वरुण, सोम आदि मुख्य हैं।

अश्विनौ का उषस् के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन सन्दर्भों में अश्विनौ का सम्बन्ध उषस् के साथ प्रदर्शित किया गया है उनमें सूर्य का नाम भी प्रायः जुड़ा हुआ है। जैसे - ऋ० ८. ६. १८ में कहा गया है कि उषस् जब सूर्य के प्रकाश से स्वयं आरोचित होती है तो उस समय अश्विनौ अपने रथ को आवर्तित करते हैं।[७८] इस प्रकार अश्विनौ से प्रार्थना की गयी है कि वे उषस् और सूर्य के साथ सोमपान करें।[७९] अन्य सन्दर्भों में उषस् से प्रार्थना की गयी है कि वे अश्विनौ को जगायें[८०]

---

७८. 'यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे'
- ऋ० ८. ६. १८.

७९. 'सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना'
- ऋ० ८. ३५. ३.

८०. ऋ० ८. ६. १७.

और इन दोनों से प्रार्थना की गयी है कि वे मनुष्यों के लिए अपना उपहार प्रदान करें।[८१] अश्विनौ उषस् और सूर्य के साथ ही नहीं, अन्य देवों के साथ भी सोमपान करते हैं।[८२] यही नहीं उषस् और सूर्य के साथ अश्विनौ से शत्रुओं के हनन, मित्रों के संवर्धन, प्रजाओं के आधान और धन के दान की भी प्रार्थना की गयी है।[८३] एक सन्दर्भ में अश्विनौ से प्रार्थना की गयी है कि वे उषस् और अग्नि के साथ रोग-रहित होकर आगमन करें।[८४]

सूर्य और उषस् के इसी सम्बन्ध ने अश्विनौ के साथ सूर्या के सम्बन्ध की सृष्टि की है। ऋ० दशम-मंडल का सूर्या-सूक्त (विवाह-सूक्त) अश्विनौ और सूर्या के सम्बन्धों की चर्चा विशिष्ट रूप से करता है। सूर्य अपने रथ को लेकर सूर्या के वहन के लिये आगमन करते हैं और सभी देवता उनका अनुगमन करते हैं। सूर्या द्वारा स्वयं ही अश्विनौ को पति रूप में वरण करने की बात भी ऋग्वेद के एक सन्दर्भ में कही गयी है— आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषा अवृणीत जेन्या युवां पती।[८५] इसी प्रकार अन्य सन्दर्भ में यह कहा गया है कि वे दोनों सूर्या के दो पतियों के रूप में हैं और वह सदा उनके रथ पर

----

८१. ऋ० ८. ६. १६.

८२. वही ८. ६.१२ ; ८. ३५. २.

८३. वही ८. ३५. १२.

८४. वही १०. ३५. ६.

८५. वही १. ११६. ५.

आरूढ़ रहती है।[86] इसी प्रकार कुछ अन्य सन्दर्भों में भी सूर्य की नवोदिता दुहिता सूर्या का अश्विनौ के रथ पर आरूढ़ होना उल्लिखित है।[87] एक मन्त्र में अश्विनौ सूर्या को विजित रूप में अपने रथ पर आरूढ़ करते हैं। उसे वे दोनों बहुत ही शोभन ढंग से ग्रहण करते हैं जिसका समस्त देवतागण हृदय से अनुमोदन करते हैं --

> आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठद् अर्वता जयन्ती ।
> विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ।।[88]

ऐ० ब्रा०[89] में इस सम्बन्ध में एक आख्यायिका का उल्लेख है जिसके आधार पर सायण[90] ने यह कहा है कि सूर्य अपनी पुत्री सूर्या

----

८६. तदु षु वाम् अजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ।

- ऋ० ४.४३.२.

८७. ऋ० १. ११७. १३ ; ११८. ५.

८८. वही १. ११६. १७.

८९. प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीम् । तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छन् । तस्या एतत् सहस्रं वहतुमन्वाकरोत् यदेतत् आश्विनम् इति आचक्षते - - - - -- - - - , तस्मिन् देवा न समजानत ममेदम् अस्तु ममेदम् अस्तु इति । ते संजानाना अब्रुवन् आजिमस्यायामहै स यो न उज्जेष्यति तस्येदं भविष्यतीति - - - ।

- ऐ० ब्रा० ४. २. १-३.

९०. सविता स्वदुहितरं सूर्याख्यां सोमाय राज्ञे प्रदातुमैच्छत् तां सूर्यां सर्वे देवा वरयामासुः । ते अन्योन्यमूचुः । आदित्यमवधिं कृत्वा आजिं धावाम । यः अस्माकम् उज्जेष्यति तस्येयं भविष्यति इति । तत्र अश्विनौ उदजयताम् । सा च सूर्या जितवतः तयोः रथमारुरोह । अत्र प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् इति ब्राह्मणमनुसन्धेयम् ।। - ऋ० १ ११६ १७ सा० भा०

को सोम को प्रदान करना चाहते थे जबकि अन्य देवता भी उसकी प्राप्ति की स्पर्धा में लगे हुये थे। उसकी प्राप्ति के लिये सभी ने सूर्य की ओर दौड़ने की स्पर्धा की और यह निश्चय किया कि जो सबसे आगे पहुंच जायेगा वह सूर्या का पाणिग्रहण करेगा। अश्विनौ इस स्पर्धा में अपने अश्व पर दौड़े और सूर्या को जीत लिया। जीती गयी वह सूर्या उन दोनों के रथ पर ही आरूढ हुयी। कौ० ब्रा० [६१] में आश्विन-शस्त्र के अन्तर्गत सूर्या से सम्बन्धित आख्यायिका है जिसके अन्तर्गत यह कहा गया है कि प्रजापति या सूर्य अपनी पुत्री सूर्या को सोम को प्रदान करते हैं किन्तु प्रदान करते समय जब वे 'वहतु' शब्द का प्रयोग करते हैं तो उस समय उसके प्राप्त करने की होड़ में देवता दौड़ लगाते हैं, जिस दौड़ में अश्विनौ सर्व-प्रथम विजय प्राप्त करते हैं। उस दौड़ में प्रथम होने के कारण सूर्या को प्राप्त करते हैं। उन्हें पूषन के पिता रूप में भी वर्णित किया गया है-- पुत्र: पितरा ववृणीत पूषा, [६२] जिससे अश्विनौ और पूषन् के घनिष्ठ सम्बन्ध का संकेत मिलता है। इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों में मरुद्गण, वरुण आदि का सम्बन्ध भी उषस् के सन्दर्भों से ही इंगित होता है। [६३]

अश्विनौ के सम्बन्ध में कहा गया है कि उषाओं के उदित होने पर अग्नि और उषस् के साथ उनका आह्वान किया जाता है। ऐसी स्थिति में अग्नि को दधिक्रा कहा गया है। कई मन्त्र ऐसे हैं जिसमें दधिक्रा के साथ अश्विनौ का संयोग है। यह स्थिति एक विशेष प्रकार

----

६१. कौ० ब्रा० १८. १.

६२. ऋ० १०. ८५. १४.

६३. वही १. ४४. १४.

के सोम-यज्ञ की ओर संकेत करती है,[६४] जिसमें सोमरस के साथ दधि का मिश्रण किया जाता है। ऐसे सभी सन्दर्भ प्राय: 'विश्वेदेव' सूक्तों में है। इन सूक्तों में जहां एक ओर अनेक देवताओं का आह्वान है, वहीं अश्विनौ सम्बन्धी कुछ विशिष्ट बातें भी ज्ञात होती हैं - जैसे, सूर्य के उदित होने के पूर्व अश्विनौ का आगमन।[६५] ऐसी स्थिति में अश्विनौ के स्वरूप की चर्चा और भी रहस्यमयी हो जाती है। जिन देवशास्त्रकारों ने अश्विनौ का सूर्य और चन्द्रमा के साथ, अथवा रात और दिन के साथ तादात्म्य उपस्थित किया है, उनकी बातें यहां कट जाती हैं। इसलिये हमको यह मानकर चलना चाहिये कि अश्विनौ सम्बन्धी धारणा नितान्त मौलिक है और इसको हम किसी पूर्व निश्चित देवताओं की संधारणा के साथ नहीं जोड़ सकते। जिस प्रकार अन्य देवताओं का अपना निजी व्यक्तित्व है, वैसे ही अश्विनौ का भी अपना मौलिक रूप है। इसीलिये उन्हें यज्ञ में अन्य देवताओं के साथ समान स्थान मिल रहा है। जिस प्रकार अग्नि से अर्यमन्, मित्र, वरुण, इन्द्र, विष्णु, मरुदगण को यज्ञ में हवि ग्रहण करने के लिये बुलाने को कहा गया है, वैसे ही इन देवताओं के साथ अश्विनौ का नाम भी जुड़ा हुआ है।[६६]

अन्य देवों के साथ अश्विनौ का जहां सम्बन्ध है उन सन्दर्भों

---

६४. ऋ० ३. २०. १ ; ३. २०. ५.

६५. वही ४. १३. १.

६६. वही २. ३१. ४ ; ४. २. ४ ; ४. २५. ३ ; ४. ४३. १. ; ४. ४३. २.

में प्राय: सोमपान की बात कही गयी है । जैसे एक सन्दर्भ में धिषणा, इन्द्र और अग्नि को, सोम की कामना वाला कहा गया है और अश्विनौ के साथ सोमपान के लिये दौड़कर आने की प्रार्थना की गयी है । यहां अश्विनौ को 'भद्रहस्ता सुपाणी' कहा गया है । जिससे उनके शारीरिक सौन्दर्य की झलक भी मिलती है । बड़े-बड़े हाथों वाले वे दौड़कर मधु का पान करें, इस बात से उनका मधुपान के प्रति ललक का संकेत मिलता है । सम्भवत: इसी मधुपान की ललक ने उन्हें मधुविद्या की ओर प्रेरित किया जिसके साथ अनेक आख्यान जुड़े हुये हैं ।[६७]

सोमपान के ही सम्बन्ध में मरुद्गणों के साथ उनका नाम जुड़ा हुआ है, जिससे सोमपान के लिये आने की प्रार्थना के साथ-साथ समृद्धि की उपलब्धि हेतु बुद्धि को प्रेरित करने की भी प्रार्थना है । यह बुद्धि के प्रेरित करने की बात सोम के साथ अधिक जुड़ी हुयी है । क्योंकि सोमपान के पश्चात् ये देवता हर्षित होते हैं[६८] और आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी तीनों लोकों में अपनी व्याप्ति के साथ सोमरस की हवि देने वाले को भी इन लोकों के साथ संयुक्त कर देते हैं । इसलिये उन्हें त्रिवर्ति कहा गया है-- 'त्रिवर्तिर्यातमश्विना '।[६६]

अश्विनौ का सम्बन्ध मात्र सोम-पान से ही नहीं वरन्

----

६७. ऋ० १. १०६. ४.

६८. वही १.१११.४ ; ८.१०.२ ; ८.१८.२० ; ८. २५. १४ ; ८.३५.१ ; ६.७.७ ; ६.६७. ६.

६६. वही ८. ३५.७ ; ८.३५.६.

सुरापान से भी है, जिसका पान असुरों के साथ करते हुये वे कर्मों में इन्द्र की सहायता करते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सुरा का सम्बन्ध असुरों के साथ है जिनके साथ अश्विनौ भी जुड़े हुये हैं; किन्तु देवताओं के समूह के साथ सम्बद्ध होने के कारण वे देवताओं की ही सहायता करते हैं।[१००] एक सन्दर्भ में इन्द्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि अश्विनौ उसकी रक्षा पुत्र के समान करते हैं जब वह शची आदि नारियों के साथ सुरापान करता है। इससे इन्द्र का सुरापान करना द्योतित होता है और उस सुरापान के कारण सम्भवत: इन्द्र को रुग्णता प्राप्त होती है जिसके कारण अश्विनौ वैद्य के रूप में इन्द्र की रक्षा करते हैं।[१०१] यह इन्द्र के उस अवान्तरकालीन आख्यान से सम्बन्धित प्रतीत होता है जहाँ उन्हें जलोदर रोग से पीड़ित कहा गया है, वहाँ जलोदर रोग का कारण अधिक सोमपान बताया गया है, किन्तु इसका सम्बन्ध सुरापान से भी हो सकता है। उपर्युक्त सन्दर्भ में अश्विनौ को इन्द्र की पुत्रवत् रक्षा करते कहा गया है। किन्तु दूसरे सन्दर्भ में उन्हें पितरा (पितरौ) भी कहा गया है, जिससे उनका वर्चस्व अन्य देवताओं पर अधिक माना जा सकता है।[१०२]

दूसरे देवताओं के सम्बन्धों की जो भी चर्चा है उसमें ऋ० के अष्टम मंडल और दशम मंडल का अधिक योगदान है, किन्तु अष्टम मंडल और दशम मंडल की चर्चाओं में कुछ मौलिक भेद प्रतीत होते हैं। अष्टम मंडल में अश्विनौ और अन्य देवताओं का सम्बन्ध प्राय: 'विश्वेदेवा'

---

१००. ऋ० १०. १३१. ४.

१०१. वही १०. १३१. ५.

१०२. वही ४. ३४. ६.

सूक्तों की शैली में है, जहाँ एक मन्त्र में ही अनेक देवताओं का नाम सम्मिलित किया गया है। किन्तु दशम मंडल के सूक्तों में प्राय: किसी एक देवता के साथ ही असुरों के सम्बन्धों की चर्चा है और यहाँ मन्त्रों की भाषा में तंत्रात्मक प्रयोगों की छवि दृष्टिगत होती है - जैसे - `ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम्`[103] जिसमें ऋध्याम, सुनयाम, यातम् आदि पदों में एक विशिष्ट प्रकार की लय है। ऐसे ही `पज्रेव`, `जर्भरी`, `नार`, `मरायु`, `नादमेवार्थेषु`, `तर्तरीथ`, `उग्रा`,[104] इस मन्त्रांश में `पज्रेव`, `जर्भरी`, `मरायु`, `तर्तरीथ` आदि प्रयोग कुछ विचित्र ध्वनियों को उत्पन्न कर मन्त्रों की एक विशिष्ट शैली का द्योतन करते हैं। इसी प्रकार के अनेक प्रयोग दशम मंडल में दृष्टिगत होते हैं। अष्टम मंडल में अश्विनौ के साथ सोमपान की जो विशिष्ट चर्चा है उसमें अनेक देवताओं का नाम परिगणित है। अष्टम मंडल के पैंतीसवें सूक्त में श्यावाश्व ऋषि द्वारा दृष्ट १५ मन्त्र हैं, जिनके अन्तर्गत प्रत्येक मन्त्र में अश्विनौ के साथ अनेक देवता आहूत हैं - प्रथम मन्त्र में सोमपान करने वाले देवता, अग्नि, इन्द्र, वरुण, विश्वेदेवा:, आदित्यगण और वसुगण हैं। द्वितीय मन्त्र में विश्वाधिय:, वाजिन द्यौ, पृथिवी, अद्रि हैं। तृतीय मन्त्र में विश्वेदेवा:, आप:, मरुद्गण और भृगुगण हैं। त्रयोदश मन्त्र में मित्रावरुण, धर्म और मरुद्गण है। चतुर्दश में अंगिरस, विष्णु और मरुद्गण है। पंचदश में ऋभुगण वाज और मरुद्गण है। इस प्रकार दूसरों की सहायता के द्वारा दूसरों की संगति से अश्विनौ रात-दिन तीनों लोकों में शत्रु निवारण रोगोपशमन, तमोनिरसन, आयुवर्धन,

---

१०३. ऋ० १०. १०६. ११.

१०४. वही १०. १०६. ७.

धनदान, वृष्टिकर्म आदि में संलग्न रहते हैं।

अश्विनौ का सम्बन्ध सर्वव्यापी है। वे सभी को व्याप्त करते हैं। इसीलिये उनका नाम भी अश्विनौ पड़ा। इस सर्व व्यापकता में विश्व सृष्टि के पंच विभाग है, जिसको `पंचभूमा` कहा जाता है। इस पंचभूमा के अन्तर्गत अर्णव (समुद्र), स्वर द्यौस्, अन्तरिक्ष और पृथिवी हैं।[१०५] इन पंच विभागों में गमन करने वाले या सभी में साथ-साथ निवास करने वाले पांच देवता हैं -- विद्युत, चन्द्रमा, सूर्य, वायु और अग्नि, जिन्हें `पंचोक्षण` कहा जाता है। अर्थात् ये पांच देवता इस पंचभूमा को सिंचित करते हैं अथवा इसमें निवास करने वाले लोगों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं। यही पांच ज्योतियां अन्य लोकों में प्रदीप्त होती है, जिनमें अग्नि पृथिवी पर, वायु अन्तरिक्ष में, आदित्य द्युलोक में, चन्द्रमा स्वर्लोक में और विद्युत अर्णव में। इसी पांच रूपों में विभक्त समस्त सृष्टि में व्याप्त देवताओं के साथ अश्विनौ की भी सहगामिता है, उन्हें अग्नि के समान प्रदीप्त कहा गया है --`अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसो`[१०६] इसी प्रकार वायु के समान वे तीक्ष्ण गति से गमन करने वाले हैं - `तुरज्जुर्वायुर्न पर्फरत् क्षयद् रयीणाम्`[१०७] साथ ही वे सूर्य चन्द्रमा की भांति अन्न का पोषण करने वाले हैं --`पुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे`[१०८] इस प्रकार विभिन्न देवताओं

~~इस-प्रकार~~--------

१०५. ऋ० १०. १६०. १-३

१०६. वही १०. १०६. ३.

१०७. वही १०. १०६. ७.

१०८. वही १०. १०६. १.

के साथ उनकी तुलना विभिन्न लोकों में व्यापकता को सिद्ध करती है। एक ऐसी भी स्थिति आती है, जहाँ देवतागण स्वयं उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे अग्नि का निर्मन्थन करें और उसके माध्यम से देवताओं तक हवि का वहन करें --

'विश्वेदेवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्यो:
नासत्यावब्रुवन् देवा: पुनरावहताद् इति ।[१०६]

इस प्रकार वे देवताओं में प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेते हैं और समस्त लोकों में अपनी व्यापकता के कारण अन्य देवों से अधिक प्रभावी भी प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार देवताओं के सम्बन्धों को हम तीन रूपों में विभाजित कर सकते हैं -- प्रथमत: वह सभी देवताओं के साथ सोमपान करते हैं, इसलिये वह सहगामी हैं, दूसरे वे देवताओं के वैद्य रूप में उनकी सहायता करते हैं और तीसरे स्थान पर उनका साहचर्य सभी देवताओं के साथ विभिन्न लोकों में उनकी व्यापकता है।

अश्विनों का काल

अश्विनों के काल की चर्चा उनके आह्वान के साथ या यज्ञ में उनके द्वारा हवि ग्रहण के साथ जुड़ी हुयी है। इस यज्ञ में मधुपान करना उनका मुख्य कार्य है। मधुपान यज्ञ के तीन सवनों के साथ संयुक्त है। तीन सवन प्रात: सवन-माध्यन्दिन सवन और सायं सवन के नाम से विख्यात है। तीनों सवनों के साथ विभिन्न देवताओं का संयोग है।

---

१०६. ऋ० १०. २४. ५.

अश्विनौ का सम्बन्ध प्राय: प्रात: सवन के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। इसलिये उन्हें प्रातर्युजौ, प्रातर्युक, प्रातर्यावाणा आदि विशेषणों से अभिहित किया गया है। जब ऋ० का ऋषि यह कहता है कि हम प्रात: काल अग्नि को, इन्द्र को, मित्रावरुण को अश्विनौ को, भग को, पूषन को, ब्राह्मणस्पति को, सोम को, रुद्र को बुला रहे हैं[११०] तो वहाँ सभी देवताओं के साथ अश्विनौ जुड़े हैं। किन्तु जब मेधातिथि काण्व यह कहता है कि 'प्रातर्युजा वि बोधयाश्विना वेह गच्छताम्। अस्य सोमस्य पीतये।'[१११] तो वहाँ 'प्रातर्युजा' विशेषण एक विशिष्ट अभिधान बनकर मात्र अश्विनौ के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है और ऐसी स्थिति में कोई अन्य देवता इस विशेषण का भागीदार नहीं बन सकता। अश्विनौ प्रात:काल अपने रथ को जोतकर सोमसवन में उपस्थित होते हैं,इसलिये उनके साथ यह विशेषण जोड़ा गया है। यद्यपि यह अभिधान (विशेषण) मात्र यहीं पर प्रयोग हुआ है फिर भी अश्विनौ के स्वरूप को उद्घाटित करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है,क्योंकि इसी के साथ जुड़ा हुआ दूसरा अभिधान 'प्रातर्यावाणा'[११२] है। जिसका प्रयोग ऋ० में दो बार हुआ है। एक स्थान पर उन्हें रथी वीरों के समान, यमल छागों के समान,शरीर से शोभायमान होती हुयी नारियों के साथ, साथ-साथ संगमन करते हुये दम्पति के समान, कर्म के ज्ञाता के रूप में

----

११०. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रात: सोममुत रुद्रं हुवेम ॥
- ऋ० ७. ४१. १.

१११. ऋ० १. २२. १.

११२. वही ५. ७७.१ ; २. ३९. २.

प्रात:काल यज्ञ में उपस्थित होने की प्रार्थना की गयी है,[११३] जिसमें मात्र उनके प्रात: गमन की ही नहीं वरन् उनकी धीर गम्भीर गति की और शारीरिक-सौन्दर्य की भी झलक मिलती है । रथी वीर यमल छाग, दम्पति आदि के रूप में उनकी जो झलक प्रस्तुत की गयी है वह किसी भी अन्य देवता युग्म के साथ देखने को नहीं मिल सकती । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषियों के मन पर अश्विनौ के सौन्दर्य की जो प्रतिच्छवि अंकित थी उसको अभिव्यक्ति देने में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी । इसी सौन्दर्याभिव्यक्ति को हम अश्विनौ सम्बन्धी अन्य मंत्र में भी देख सकते हैं । जहाँ उन्हें हंस के समान उड़ते हुये सोमपान के लिए आगमन करने के लिये कहा गया है --`अश्विना वाजिनी वसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुतां उप ।`[११४]

प्रातर्यावाणा सम्बन्धी दूसरा सन्दर्भ ऋ० पंचम मंडल का है[११५] जहाँ इसी के साथ अश्विनौ, `प्रथमा` भी कहा गया है । अश्विनौ

---

११३. प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराऽजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेनेइव तन्वाइ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ।।
- ऋ० २.३६.२.

११४. ऋ० ५.७८.२.

११५. प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृधादररुष: पिबात: ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवय: पूर्वभाज: ।।
- ऋ० ५.७७.१.

प्रात:काल ही यज्ञ में आगमन करते हैं, इसीलिये मेधावी ऋषिगण उनकी प्रशंसा करते हुये सोमपान के लिये प्रात:काल उनका आह्वान करते हैं । इस सन्दर्भ में लाल गृद्ध से पहले अश्विनौ का यजन करने की बात कही गयी है—[११६] `यजध्वं पुरा गृध्रादररुष:` यहाँ लाल गृद्ध और कुछ नहीं, मात्र सूर्य का वाचक है, जो प्रात:काल पूर्वाकाश से आगमन करता हुआ सोमपान करता है और जिसे ऋ० के अनेक सन्दर्भों में श्येन कहा गया है,[११७] जो आकाश मार्ग से सोमपान का वाहक है । यहाँ लाल गृद्ध से पूर्व सोमपान करने में भी सूर्योदय का पूर्वकाल ही ध्वनित होता है, जिसमें अश्विनौ सोमपान के लिये आगमन करते हैं । अत: ऐसे सन्दर्भ अश्विनौ के काल सम्बन्धी विवरण को पुष्ट करने में सहायक प्रतीत होते हैं ।

इन्हीं सन्दर्भों के साथ हम उन सन्दर्भों को भी जोड़ सकते हैं जहाँ अश्विनौ अन्य देवताओं के साथ `प्रातर्यावाणा` कहे गये हैं । ऋ० प्रथम मंडल में मित्र, अर्यमन आदि के साथ अश्विनौ के प्रति इस सम्बोधन का प्रयोग किया गया है[११८] और घृत, व्रत, वरुण और उषस् के साथ अश्विनौ से सोमपान करने की प्रार्थना की गयी है ।[११९] एक अन्य मन्त्र में

---

११६. प्रातर्यावाणा प्रथम यजध्वं पुरा गृध्रादररुष: पिबात: ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवय: पूर्वभाज: ।।
- ऋ० ५. ७७. १.

११७. ऋ० १. ११८. ११ ; ६. ८७. ६ ; ८६. २.

११८. वही १. ४४. १३.

११९. वही १. ४४. १४.

इन्द्र और अग्नि के साथ सोमपान करने के लिये भी अश्विनों को इसी विशेषण के साथ जोड़ा गया है। इस प्रकार यह विशेषण जहाँ एक ओर अश्विनों को प्रात:काल के साथ जोड़ता है वहीं दूसरी ओर वह उन्हें अन्य देवताओं के साथ संयुक्त भी करता है।[१२०]

अश्विनों का प्रात:काल में आगमन उन्हें उषाओं के साथ स्वभावत: संयुक्त करता है, मानों वे स्वयं नहीं आते, वरन् उषाएं किसी नारी की भांति उनकी कामना करती है और उनके आगमन में गीत गाती है, उनके स्वागत में सवितृ देवता आकाश में आरोहण करता है तथा अग्नि उनके लिए समिधाओं को प्रज्जवलित करता है। जिस वातावरण में वे पहुंचकर स्तोता गणों को आनन्दित करते हैं।[१२१] सवितृ की दुहिताएं उषा देवियां उनके स्वागत में निरन्तर जागरण करती हैं,[१२२] यह बात ऋ० के अनेक मन्त्रों में ध्वनित होती है और इसीलिये अश्विनों को अहंविदा[१२३] या दिन को जानने वाले के रूप में सम्बोधित किया गया है, मानो इस दिन को जानने के लिये ही वह उषा काल के पूर्व नियमित रूप में आगमन करते हैं और उषायें उनका अनुगमन करती है।[१२४] उनका आगमन ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह पूरब से, पश्चिम से नीचे से ऊपर से चारों ओर से आगमन करते हैं और प्रकाश-स्तम्भ के रूप में मानों चारों ओर से बिखरते

---

१२०. ऋ० ८. ३८.७.

१२१. विवेदुच्छन्त्यश्विना उषास: ------
- ऋ० ७. ७२. ४.

१२२. 'अवेति केतुरुषस: पुरस्ताच्छ्रिये ------'
- ऋ० ७. ६७. २.

१२३. ऋ० ८. ५. ६.

१२४. 'युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्।' -ऋ० १. ४६.१४.

हुये सर्वत्र अपने आपको परिव्याप्त करते हैं ।[१२५]

अश्विनो का यह प्रात:कालीन आगमन उन्हीं को नहीं वरन् अन्य देवताओं को भी प्रशंसनीय बना देता है । उनके साथ अग्नि भी उषाओं के समक्ष आभासित होता हुआ स्तुति का भाजन बनता है और इसीलिये उससे उषाओं के पूर्व ही बोधित होने की प्रार्थना की गयी है ।[१२६] अश्विनो से अन्य देवताओं के साथ यह प्रार्थना बार-बार की जाती है कि वे दूसरे देवताओं से पहले आकर तुरन्त ही यज्ञ में आ जायें ; ऐसा न हो कि कोई दूसरा उनका यजन कर ले और प्रार्थना करने वाला ऋषि पीछे हो जाये इसीलिये ऋषि कहता है कि - 'पूर्व: पूर्वो यजमानो वनीयान्' ।[१२७] एक अन्य सन्दर्भ में सवितृ, उषस् और अश्विनो को प्रात:कालीन मधुपान के साथ संलग्न करते हुये कहा गया है कि अश्विनो के आने के पूर्व सवितृ उषस् के चित्र-विचित्र संसिक्त रथ को यज्ञ की ओर प्रेरित करता है इसीलिए अश्विनो से प्रार्थना है कि वे तत्काल आकर मधुमय मुख से मधु पान करें । इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि प्रात:काल सवितृ और उषस् के आगमन में मानो होड़ सी लगी है ।[१२८]

अश्विनो का रथ मधु का वाहक है[१२९] और उस रथ से ऊर्जा प्राप्त होती है । इसीलिये लोग उससे आने की और ऊर्जस्वित होने की

---

१२५. ऋ० ७. ७२. ५.

१२६. वही ५. ७६. १ ; ७. ६८. ६.

१२७. वही ५. ७७. २

१२८. वही १. ३४. १०.

१२९. वही १. १५७. २-३.

कामना करते हैं।[१३०] यह ऊर्जा की ललक ऋषियों के मन में सर्वप्रथम उत्पन्न होकर प्रात:कालीन सवन के साथ संयुक्त होती है और इसीलिये प्रात: सवन में अश्विनौ का आह्वान किया जाता है। अश्विनौ का ऊर्जा से घनिष्ठ सम्बन्ध इसलिए है कि वह सब प्रकार की भैषज्य के स्वामी हैं और सभी चलायमान वस्तुओं में तथा समस्त लोगों में गर्भ का आधान करते हैं और अग्नि, जल और वनस्पतियों को प्रेरित करते हैं।[१३१] अग्नि, जल और औषधियां समस्त विश्व की प्राण हैं, जीवन हैं और इन सभी का सम्बन्ध उषस् के साथ है, जिसके सम्बन्ध में कहा गया है -- 'विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।'

'हे सुन्दरी उषस! जब तुम्हारे ही नि:श्वास में समस्त विश्व का जीवन और प्राण निहित है'। ऐसी स्थिति में उषस् अश्विनौ की प्रिया बन जाती है और उनके साथ उसका सम्बन्ध और घनिष्ठ बन जाता है। यह उषस् भी सब प्रकार के भैषज से युक्त है। इसीलिए भैषज से युक्त अश्विनौ का रथ प्रात:काल में आगमन कर समस्त विश्व में प्राण का संचार करता है।[१३२]

उष: काल के साथ अश्विनौ का सम्बन्ध जन्म से है। ऋग्वेद[१३३] के एक मन्त्र में कहा गया है कि इन युग्मों को किसी देवी ने उषाकाल में ही उत्पन्न किया था। तमस् का नाश करने वाले ये दोनों मिथुन उत्पन्न होकर साथ-साथ उषाकाल में गमन करते हैं जिनकी स्तुति

---

१३०. ऋ० १. १५७. ४.

१३१. वही १. १५७. ५.

१३२. वही १. १५७. ६.

१३३. वही ३. ३९. ३.

करने के लिये ऋषियों की जिह्वा का अग्रभाग सदैव चंचल बना रहता है। इस प्रकार इन दोनों देवताओं का प्रात:काल के साथ जन्म से सम्बन्ध है। जिससे ऋषियों द्वारा निरन्तर ये इस काल में आहूत होते रहते हैं। इसीलिये जब उषा अपने रक्ताभ वपु द्वारा आगमन करती है तो उस समय अपने अश्वों को रथ में संयोजित करते हुये विचित्र कर्म वाले ये दोनों मधुमय होकर ऋषियों का आह्वान सुनते हुये प्रात: सवन की ओर तत्काल गमन करते हैं[१३४] और अग्नि उषाओं के मुख रूप में प्रज्ज्वलित होता हुआ ऋषियों की वाणी के माध्यम से इनका आह्वान करता हुआ इनके स्वागत के लिए उपस्थित रहता है।[१३५] अश्विनौ का इस काल में आना और मधुपान करना ही माध्वी संज्ञा से संयुक्त करता है।[१३६]

अश्विनौ के सम्बन्ध में प्रात: सवन और प्रात:काल की बात बहुत कुछ कह दी गयी है, किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि उनका सम्बन्ध रात-दिन के किसी और भाग से नहीं है। ऋग्वेद के कुछ सन्दर्भों में उन्हें माध्यन्दिन सवन के, तथा रात्रि और दिवस के सम्पूर्ण काल के साथ भी संयुक्त किया है। ऋ० पंचम मंडल का एक सम्पूर्ण सूक्त उनको रात-दिन के सभी भागों के साथ सोम-सवनों में बुलाने के लिये दृष्ट है। वहां उनसे प्रार्थना की गयी है वे दिवस के प्रात: सवन में आगमन करें और सूर्य के उदित होने पर माध्यन्दिन सवन में आगमन करें। यह नहीं उनके लिये रात-दिन सोमपान का विस्तार किया जाता है जिसमें वे आकर अपना स्थान ग्रहण करें।[१३७] वे दोनों जिस प्रकार से अपना स्थान आकाश

---

१३४. ऋ० ५. ७६. ६.

१३५. वही ५. ७६. १.

१३६. वही ५. ७५. १-९.

१३७. वही ५. ७६. ३.

में बनाते हैं वैसे ही पुरुष के घर-द्वार पर भी बनायें। वे बृहत् आकाश से पर्वत से जल से - सभी स्थानों से अन्न और ऊर्जा का वहन करते हुये आगमन करें - ऐसी प्रार्थना है।[१३८] किन्तु इसी के पश्चात् जब ऋषि यह कहता है - कि ये दोनों प्रात:काल में आगमन करने वाले हैं इसलिये प्रात:काल में ही इनके लिये हवि प्रेरित करो और सायंकाल की हवि इनके लिये वर्तमान नहीं रहती- (न सायमस्ति देवया अजुष्टम), तो वहां यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि सायं सवन इनके लिये विहित नहीं है। किन्तु एक दूसरा मन्त्र इस शंका का समाधान कर देता है जिसमें यह कहा गया है कि वे सायंकाल या रात्रि और उषाकाल में मार्ग पर आगमन करें जहां[१३९] उनके साथ रात्रि और दिन संयुक्त है।

—

---

१३८. ऋ० ५. ७६. ४.

१३९. वही ८. २२ १४.

पचंम अध्याय

पंचम अध्याय

-0-

अश्विनौ के कार्य

ऋग्वेद में अश्विनौ के स्वरूप की चर्चा तब तक पूर्ण नहीं समझी जायेगी जब तक कि हम उनके द्वारा किये गये कार्यों की समीक्षा न कर लें। उनके कार्यों में लोगों की सहायता, रक्षा आदि के साथ मुख्य रूप से उनका भिषक् रूप संलग्न है, जिसके माध्यम से वे देवताओं के वैद्य रूप में तथा विभिन्न व्यक्तियों को प्रदान की गयी औषधियों, शल्य-चिकित्सा आदि के द्वारा भिषक् के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन रक्षा एवं चिकित्सा कार्यों के साथ अनेक कथायें और आख्यायिकायें संलग्न हैं, जिसके विवेचन के बिना हम अश्विनौ सम्बन्धी विचार-धाराओं को समझने में पूर्ण समर्थ नहीं हो सकते। अतः हम अश्विनौ सम्बन्धी आख्यायिकाओं के माध्यम से उनके कार्यों पर विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

सर्वप्रथम हम उनके भिषक् रूप की चर्चा कर रहे हैं जिसके माध्यम से उन्होंने देवताओं एवं ऋषियों को अनेक प्रकार की सहायतायें कीं। अश्विनौ के भैषज्य सम्बन्धी आख्यानों का विश्लेषण हम मुख्यतः तीन रूपों में कर सकते हैं —

१- नैरुज्य प्रदान करने से सम्बन्धित आख्यान,

२- शल्य तन्त्र सम्बन्धी आख्यान और

३- यौवन प्रदान करने से सम्बन्धित आख्यान।

नैरुज्य प्रदान करने से सम्बन्धित आख्यान :

शल्य चिकित्सक के रूप में अश्विनौ की ख्याति हमें विश्पलादि

से सम्बन्धित आख्यानों से प्राप्त होती है, किन्तु उससे भी अधिक निखरा हुआ रूप हमे अश्विनो के सामान्य चिकित्सक के रूप में मिलता है, जिसके अन्तर्गत हम उनके द्वारा लोगों की औषधियों के द्वारा सहायता करते देखते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों में अनेक ऐसे आख्यानों का संकेत है, जिनमें अश्विनो को औषधियों के माध्यम से लोगों की नेत्र चिकित्सा, व्रण आदि का उपचार करते हुये कहा गया है। उन आख्यानों में से कुछ की चर्चा यहां की जा रही है —

अश्विनों द्वारा नेत्र चिकित्सा -

ऋग्वेद प्रथम मंडल में वृषागिर के पुत्र ऋज्राश्व[1] सम्बन्धी आख्यान की चर्चा है, जिसने अपने पिता की आज्ञा के बिना १०१ भेड़ों की हिंसा करके उन्हें दुर्धार्त वृकी (भेड़िया) को खाने के लिये दे दिया[2]। उसके इस कार्य से रुष्ट होकर पिता ने उसे नेत्रहीन होने का शाप दे दिया, जिससे ऋज्राश्व नेत्रहीन हो गया[3]। ऋज्राश्व की इस दयनीय स्थिति से दुःखी होकर वृकी ने अश्विनों का आह्वान[4] किया, जिसे सुनकर उन्होंने ऋज्राश्व को नेत्र ज्योति प्रदान की[5]। सायण[6] तथा मुद्गल[7] ने इस

---

१. ऋ० १. १००. १७.
२. वही १. ११६. १६ ; १. ११७.१७ ; १. ११७.१८.
३. वही १. ११६.१६ ; १. ११७. १७.
४. वही १. ११७. १८.
५. वही १. ११६.१६ ; १. ११७.१७.
६. वही १. ११६. १६ ; पर भाष्य
७. वही भाष्य

आख्यान का उल्लेख किया है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य संहिताओं में इस आख्यान का कोई संकेत नहीं मिलता। अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों तथा आरण्यक आदि में भी इस आख्यान का कोई रूप नहीं मिलता। निरुक्त में भी वृक शब्द के दृष्टान्त रूप में उक्त व्याख्यानमूलक ऋचा उद्धृत है।[8] श्री धाद्विवेद विरचित नीतिमंजरी में भी यह आख्यान देखने को मिलता है -

यो हितोऽन्य: पिता ज्ञेयो ह्यहितोऽपि पिताऽपिता।
ऋज्राश्वोऽन्ध: कृत: पित्रा नासत्याभ्यां सुलोचन: ॥[9]

महर्षि कण्व सम्बन्धी आख्यान -

महर्षि कण्व सम्बन्धी आख्यान ऋग्वेद के अष्टम मण्डल से सम्बन्धित है। तदनुसार असुरों ने महर्षि कण्व के ऋषित्व की परीक्षा लेने हेतु उन्हें एक अन्धकारपूर्ण स्थान में डाल दिया। वहाँ एकाकी कण्व ने दु:खी होकर, अश्विनों का स्मरण किया, जिन्होंने तत्काल उपस्थित होकर उन्हें चक्षु प्रदान किये। ऋग्वेद[10] के विभिन्न स्थलों पर इस आख्यायिका का संकेत मिलता है। ऋग्वेद अष्टम मण्डल के एक मन्त्र के[11] अनुसार नृषद पुत्र ऋषि कण्व को असुरों द्वारा एक हर्म्य के नीचे बांध

---

८. निरु ५. २०.

९. नी० मं० पृ० ६५-६६.

१०. ऋ० १.३६.१७ ; १.३९.९ ; १.११७.८ ; ११८.७ ; ८.५.२३ ; १०.३१.११.

११. 'युवं कण्वाय नासत्याऽपिरिप्ताय हर्म्ये शाश्वदूतीर्दशस्यथ:' - ऋ० ८.५.२३.

रखने की चर्चा है। कहीं-कहीं ऋषि की स्तुति सुनकर दृष्टि राहित्य के कारण दृष्टि प्रदान करने के साथ-साथ सुनने हेतु श्रवण शक्ति प्रदान करने का भी उल्लेख मिलता है।[१२]

ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य संहिताओं में इस आख्यान का कोई उल्लेख नहीं मिलता। भाष्यकार सायण[१३] तथा वेंकटमाधव[१४] ने भी इस आख्यान का उल्लेख किया है।

शांखा० ब्रा०[१५] में इसका वर्णन बहुत सुव्यवस्थित रूप से किया गया है। तदनुसार आख्यान इस प्रकार है -- नृषद पुत्र कण्व ने बकासुर की पुत्री से विवाह किया। जिससे त्रिशोक और नभाक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। वह क्रुद्ध होकर अपने परिवारजनों के पास लौट आयी। उसके पीछे-पीछे वह नृषद पुत्र कण्व भी वहां आया। परन्तु असुरों ने मिलकर उसे अन्धकार से अवलिप्त कर कहा कि 'यदि तुम ब्राह्मण हो तो बीती हुयी उषावेला को जानो'। उसे अश्विनों ने जान लिया। क्योंकि वे देवताओं को बन्धन-मुक्त करने वाले हैं। वे अदृश्य रूप से ऋषि के समीप जाकर बोले, 'जिस समय हम वीणा बजाते हुये (हर्म्य के) ऊपर-ऊपर जायें उस समय तुम उषा के विगत काल को जानो।' इस प्रकार वे दोनों वीणा बजाते हुये (हर्म्य के) ऊपर-ऊपर गये।

----

१२. ऋ० १. १. ११७. ८.

१३. वही १. ११७. ८. पर भाष्य

१४. वही भाष्य

१५. वही १. ११७. ८. के वें० मा० भाष्य में उद्धृत

यह देखकर उन्होंने (असुरों ने) कहा यह ऋषि ब्राह्मण है । इसकी पत्नी को पास लाकर इसे ही दे देते हैं । तब उसे इसको दे दिया ।

परावृज

कष्टों से उबारने वाले अश्विनों ने ऋज्राश्व, कण्व आदि ऋषियों के समान ही परावृज नामक ऋषि को भी अपनी औषधियों के माध्यम से नेत्र ज्योति प्रदान की । परावृज के सम्बन्ध में उसके अपंग होने का भी संकेत मिलता है । अश्विनों की कृपा से उसे पुनः चलने फिरने योग्य बनाने का उल्लेख ऋ० में किया गया है।[१६]

वन्दन की सहायता

अपने भिषक् कर्मों के अतिरिक्त अश्विनों ने कष्टपीड़ित, विपत्तिग्रस्त लोगों की भी सहायता की । वन्दन अश्विनों के प्रिय ऋषि तथा कृपा पात्र थे । असुरों द्वारा ऋषि के कूप प्रक्षेपण तथा अश्विनों द्वारा उन्हें कूप से बाहर निकालने का संकेत हमें सर्वप्रथम ऋग्वेद[१७] में प्राप्त होता है । तदनुसार एकबार दुष्ट असुरों ने वन्दन ऋषि को कुये में फेंक दिया था, वहाँ पृथिवी पर सोये हुये मनुष्य की भाँति दर्शनीय वन्दन

---

१६. 'याभिः शचीभिः परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।'
- ऋ० १. ११२. ८.

१७. ऋ० १. ११२. ५ ; ११६. ११ ; ११७. ५ ; ११८. ६ ;
११९. ६ ; १०.३९.८.

ऋषि कुयें में छाय प्राप्त सूर्य के समान प्रतीत होते थे। वहां पर ऋषि ने अपने प्रिय अश्विनों का आह्वान किया। जिन्होंने तुरन्त उपस्थित होकर प्यासे पथिकों द्वारा दर्शनीय उस कूप से गुप्त खजाने की भांति वन्दन को कूप से बाहर किया[18] तथा उसकी आयु भी बढ़ा दी[19]।

ऋ० भाष्यकार सायण[20] तथा मुद्गल[21] ने भी अपने-अपने भाष्यों में इस आख्यान का संक्षिप्तोल्लेख किया है। मुद्गल ने सायण भाष्य का ही अनुसरण किया है। श्रीधाद्विवेद ने 'नीतिमंजरी'[22] में भी इस आख्यान को प्रस्तुत किया है। नीतिमंजरी के अनुसार एकबार वन्दन नामक कोई ऋषि दैत्यों के आश्रम में जाकर कुछ काल तक वहीं रुका। किसी दिन उन (दैत्यों) के द्वारा कूप में गिरा दिये जाने पर बाहर निकलने में असमर्थ होकर उस ऋषि ने अश्विनों का स्तवन किया। तब अश्विनों ने ऋषि द्वारा अपना स्तवन सुनकर शीघ्र ही वहां पहुंच कर उसे कूप से बाहर निकाला।

----

१८. ऋ० १. ११२.५ ; १. ११८.६ ; १०.३९.८.

१९. वहीं १. ११९. ६. 'प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायु षा'

२०. वही १. ११२.५ ; १.११६.११ ; १. ११७.५ ; १. ११८.६ ; १०.३९.८. पर भाष्य

२१. वही १. ११६. ११. पर भाष्य

२२. न वचादोषशीलानामाश्रयं (य: ?) क्रूरकर्मणाम्।
दैत्या वचाश्रया: कूपे प्राक्षिपन् रेभवन्दनौ ॥

(नीतिपद्य ३९)

- नी० म० पृ० ८४-८५

रेभ सम्बन्धी आख्यान -

रेभ सम्बन्धी आख्यानों का संकेत ऋग्वेद के कई सूक्तों में प्राप्त होता है।[२३] आख्यान का संकेत इतना ही है कि निर्दयी असुरों ने रेभ ऋषि को किसी कुयें में फेंक दिया था, जहां वह नौ दिन और दस रातों तक पड़े रहे। जल में निमग्न रेभ ने अश्विनों की प्रार्थना की। जिससे प्रसन्न होकर अश्विनों ने उन्हें कूप से बाहर निकाला। ऋग्वेद प्रथम मण्डल के कुछ सूक्तों में सितम्[२४] श्नथितम्,[२५] अप्सु गूळ्हम्[२६] परिषूतः-उरुण्यथ:[२७] जैसे शब्द या शब्द समूहों का सीधा सम्बन्ध रेभ से है जिससे रेभ का बन्धन युक्त होना या जल में निमग्न होना या किसी घिरे हुये स्थान में बन्धक होना संकेतित है। अत: इस आख्यायिका का सम्बन्ध जहां एक ओर बन्धन में पड़े हुये अथवा कूप में निमग्न या जल में गूहित रेभ से सम्बन्धित है, वहीं दूसरी ओर किसी भी आबद्ध व्यक्ति या बन्धन में पड़े हुये व्यक्ति अथवा डूबते हुये व्यक्ति से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।

रेभ जहां एक ओर व्यक्ति विशेष का वाचक है वहीं यह स्तुति करने वाले या स्तोता के अर्थ में प्रयुक्त होने से किसी का विशेषण नहीं बन सकता, इससे यह सिद्ध होता है कि मूलत: यह किसी स्तोता के लिये ही प्रयुक्त होता रहा है। किन्तु धीरे-धीरे यह व्यक्ति-वाचक संज्ञा

---

२३. ऋ० १. ११२. ५ ; ११६.२४ ; ११७.४ ; ११८. ६ ; ११९. ६ ; १०.३९.९.

२४. वही १. ११२.५.

२५. वही १. ११६. २४.

२६. वही १. ११७. ५.

२७. वही १. ११९. ६.

के रूप में विकसित हो गया । यहां मंत्रों का विनियोग और उस विनियोग के आधार पर बन्धनयुक्त व्यक्ति की मुक्ति ही प्रधान विषय रहा, जो धीरे-धीरे आख्यायिका बन गया ।

रेभ ऋषि से सम्बन्धित इस आख्यायिका का मूल रूप तो हमें ऋग्वेद की ऋचाओं[२८] में प्राप्त होता है जहां निर्दयी असुरों द्वारा ऋषि को प्रताड़ित कर रस्सियों से बांधकर कूप में फेंक देने का उल्लेख किया गया है । नौ दिन और दस रात जल में पड़े रहने से मृतप्राय: होकर उन्होंने अश्विनौ का स्तवन किया । आहूत अश्विनौ ने अध्वर्यु द्वारा स्रुवा से सोम निकालने की भांति ही ऋषि रेभ को कूप से बाहर निकाला तथा अपनी औषधियों के माध्यम से उसके घायल अंगों को पूर्ववत ठीक कर दिया ।[२६]

ऋग्भाष्यकार स्कन्द स्वामी,[३०] सायण[३१] तथा मुद्गल[३२] ने भी अपने-अपने भाष्यों में इस आख्यायिका को कुछ प्रस्तुत किया है । सायण तथा मुद्गल द्वारा उल्लिखित आख्यान एक सा है, किन्तु स्कन्द स्वामी की प्रस्तुति इससे कुछ भिन्न है ।

भाष्यकार स्कन्द के अनुसार रेभ नामक ऋषि को असुरों ने सन्ध्या-समय स्नान करके कूप से निकाल कर अग्नि होत्र करने के लिये अपने

---

२८. ऋ० १. ११२.५ ; १. ११६. २४ ; १. ११७.४ ; १.११८.६.
२६. वही १. ११७. ४.
३०. वही १. ११२. ५. पर भाष्य
३१. वही १. ११६. २४ पर भाष्य
३२. वही भाष्य

आश्रम की ओर लौटते हुये देखा । उन्होंने उस (ऋषि) को देवों के निमित्त हवन करने वाला जानकर क्रुद्ध होकर प्रताड़ित कर और बांधकर उसी कूप में फेंक दिया । दस रात्रि तक वह वहीं पड़े रहे । उन्होंने वहां मृतप्राय होकर अश्विनौ का स्मरण किया । आहूत वे अश्विनौ उसके समीप आये और उसे वहां से बाहर निकाला ।

दीर्घतमस् की आख्यायिका

वैदिक तथा उत्तरवैदिक वाङ्मय में हमें अश्विनौ-सम्बन्धी विभिन्न आख्यानोपाख्यान प्राप्त होते हैं जिसे पढ़कर हम यह कह सकते हैं कि ये युग्म देव अपने याजकों,भक्तों- की पुकार सुनकर तत्काल स्थल विशेष पर पहुंचते हैं तथा अपने स्तोताओं की यथोचित सहायता करते हैं । इसी सम्बन्ध में हमें दीर्घतमस् की भी एक आख्यायिका वैदिक साहित्य में मिलती है जहां दीर्घतमस् की स्तुति सुनकर अश्विनौ त्वरित सहायक के रूप में उनके समीप आये तथा उनकी रक्षा की ।

ऋग्वेद के अनुसार दीर्घतमस् एक मन्त्र द्रष्टा ऋषि हैं।[३३] इन्हें उचथ्य[३४] एवं ममता[३५] का पुत्र कहा गया है । दश युग बीत जाने पर ममता पुत्र दीर्घतमस् अत्यन्त वृद्ध हो गये । शरीर के जर्जर होने से वृद्ध दीर्घतमा ने अश्विनौ की स्तुति की । परन्तु दासों ने उन्हें भलीभांति बांधकर नदी

---

३३. ऋ० १. १५८. १.

३४. वही १. १५८. १.

३५. वही १. १५८. ६.

में फेंक दिया । उसी बीच त्रैतन नामक किसी दास ने उनके शिर को खंडित करते समय अपने स्कन्ध तथा वक्ष को भी शस्त्र से घायल कर दिया।[36]

शौनक ने बृहद्देवता में[37] भी इस आख्यान का उल्लेख करते समय दासों द्वारा दीर्घतमस् को नदी के जल में फेंक देने की बात तथा त्रैतन नामक दास द्वारा दीर्घतमस् पर अपना शस्त्र प्रहार करते हुये अपने ही शिर स्कन्ध तथा वक्ष को खंडित करने की बात कही है । महान् पाप में लिप्त उसका वध करने के पश्चात् दीर्घतमस् ने जल में अत्यन्त संज्ञा-शून्य हो रहे अपने अंगों को हिलाया । नदी की धारा में उन्हें प्रवाहित कर अङ्ग देश के निकट पहुंचा दिया ।

ऋग्वेद भाष्यकार वेंकट[38] ने इस आख्यान को प्रस्तुत करते हुये बृहद्देवता[39] को भी उद्धृत किया है । परन्तु सायण ने[40] अपने भाष्य में इस

----

३६. न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ।।
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ।।
- ऋ० १. १५८. ५-६.

३७. बृ० दे० ४. २१-२४.

३८. ऋ० १. १५८. ५. पर भाष्य

३६. बृ० दे० ४. ११. १४.

४०. ऋ० १. १८. १ ; १. १५८.४, १.१५८.५ पर भाष्य

आख्यान का उल्लेख करते हुये दीर्घतमा को घर रखने में असमर्थ अपने घर के दासों द्वारा ही उसे जलाने के लिये आग में फेंकने का उल्लेख किया है । वहां उसने अश्विनौ की स्तुति की । तत्काल उपस्थित होकर अश्विनौ ने उसकी रक्षा की । तब न मरने वाले उन्होंने उसे जल में गिराया । दीर्घ-तमस् ने वहां पुन: अश्विनौ का स्तवन किया । अपना आह्वान सुनकर प्रसन्न हुये अश्विनौ ने उसे जल से ऊपर निकाला । इस प्रकार त्रैतन नामक किसी दास द्वारा अवध्य उसके शिर तथा स्कन्ध को काट डालने पर भी अश्विनौ ने उसकी पालना की । इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां ऋग्वेद की ऋचाओं में दीर्घतमस् को दासों द्वारा बांधकर नदी में फेंकने का उल्लेख किया गया है वहीं सायण ने अपने भाष्य में उन्हें दासों द्वारा जलाने के लिये अग्नि में फेंकने का उल्लेख किया है ।

अत्रि सम्बन्धी आख्यान -

अत्रि से सम्बन्धित आख्यान अश्विनौ सम्बन्धी अनेक सन्दर्भों में संकेत रूप में प्राप्त होता है । ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में यह संकेत मिलता है कि असुरों ने अत्रि ऋषि को यन्त्रणा गृह में डालकर तुषाग्नि से पीड़ित किया । ऋ० प्रथम मंडल के कुछ सूक्तों में यह कहा गया है कि अत्रि ऋषि को असुरों ने सौ द्वारों वाले यन्त्रणागृह में डालकर जब तुषाग्नि से पीड़ित किया, उस समय अत्रि ने अश्विनौ की स्तुति की । अश्विनौ ने प्रसन्न होकर पीड़ित करने वाली इस प्रदीप्त अग्नि को हिम के समान शीतल जल से शान्त कर दिया और ऋषि को अन्न एवं दुग्ध द्वारा शक्ति प्रदत्त कर पुष्ट किया । इसके बाद उस अन्धकारमय यन्त्रणागृह में पड़े हुए ऋषि को कुशलतापूर्वक बाहर निकाल कर उनके घर पहुंचाया । इस घटना का वर्णन ऋ० के चार मन्त्रों में

प्राप्त होता है।[४१] असुरों द्वारा प्रसारित माया को अश्विनौ ने दूर कर[४२] अन्धकारपूर्ण यातनागृह में औंधे मुख पड़े हुये सन्तप्त ऋषि को बाहर निकाल कर तथा सुरक्षित घर में पहुंचा कर उन पर महती कृपा की।[४३]

निरुक्त[४४] सायण-भाष्य[४५] मुद्गल-भाष्य[४६] और नीतिमंजरी[४७] में इस आख्यान को विस्तार दिया गया है। यास्क ने ऋ० से इस आख्यान को मात्र उद्धृत किया है, इस पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है। सायण[४८] ने अपने भाष्य में इस आख्यान को विस्तारपूर्वक विकसित किया है। असुरों द्वारा ऋषि को यन्त्रणागृह में डालना और अश्विनौ द्वारा उनका उद्धार-- सायण द्वारा विवेचित आख्यान में यही प्रमुख विषय है।[४६] मुद्गल ने अपने ऋग्वेद-वृत्ति में इस आख्यान के लिये सायण-भाष्य का अनुसरण किया है। नीतिमंजरी[५०] में इस आख्यान का वर्णन निरुक्त तथा सायण-भाष्य के आधार पर किया है।

----

४१. ऋ० १. ११६. ८ ; १. ११७. ३ ; ५.७८.४ ; १०.३९.९.

४२. वही १. ११७. ३.

४३. वही १. ११६. ८. ; १०. ३९. ९.

४४. निरु० ६. ३५. ३६.

४५. ऋ० १. ११६. ८ पर भाष्य

४६. वही भाष्य

४७. नी० मं० - पृ० ७७-७९ तक

४८. ऋ० १. ११६. ८. पर भाष्य

४९. वही भाष्य

५०. विप्रपीडाकरो दैत्यो विप्ररक्षाकरः सुरः।
दैत्यैर्बद्धस्तमस्यत्रिरश्विभ्यां मोचितो वधात्॥
- नी० मं० पृ० ७७ नीति पद्य (३६)

में भुज्यु के नाम का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद के पश्चात् सायण भाष्य[56] तथा नीतिमंजरी[57] आदि में इस आख्यान को विस्तार दिया गया है।

ऋग्वेद के विभिन्न मन्त्रों में भुज्यु सम्बन्धी आख्यान को यदि विस्तार दिया जाये तो इस प्रकार होगा - शत्रुओं से पीड़ित तुग्र ने भुज्यु को जब उन पर विजय प्राप्त करने के लिये नावों द्वारा सेना सहित प्रेषित किया तो समुद्र के मध्य में नाव के मग्न हो जाने पर भुज्यु सिर के बल जल में गिर पड़े।[58] निराश्रित होने पर भी वह पीड़ा से रहित था।[59] इसी बीच उन्होंने बार-बार अश्विनों का आह्वान किया।[60] दुष्ट साथियों ने उसे समुद्र के मध्य अकेला छोड़ दिया।[61] उसकी सहायता के लिये अश्विनौ चार नौकाओं सहित उसके पास गये[62] और उसकी रक्षा की।[63] भुज्यु को नौकाओं सहित समुद्र से निकाल कर[64] सौ डांड़ो वाली[65] पंखों

---

५६. ऋ० १. ११६. ४. पर भाष्य

५७. नी० मं० पृ० ७९ पर

५८. ऋ० १. १८२. ६.

५९. ऋ० १. ११७. १५.

६०. वही १. ११७. १५.

६१. वही ७. ६८. ७.

६२. वही १. १८२. ६. ; १०. १४३. ५.

६३. वही १. ११८. ६ ; १. १८२. ५ ; १. ११२. ६. २०.

६४. वही १. ११७. १४-१५ ; १८२. ५ ; १०. ४०. ७ ; १०. ६५. १२.

६५. वही १. ११६. ५.

से युक्त[66] अन्तरिक्षगामिनी उन नौकाओं द्वारा[67] द्रुत गति से चलते हुये तीन रात और तीन दिन में[68] शुष्क स्थान से[69] अश्व युक्त तीन रथों द्वारा उसे दूरस्थ पिता के समीप सुरक्षित पहुंचा दिया।[70] ऋग्वेद के एक सन्दर्भ में[71] उन्हें अश्व युक्त रथों से समुद्र से बाहर निकालने का उल्लेख है। ऋग्वेद में तुग्र द्वारा भुज्यु को समुद्र में भेजने का प्रयोजन तथा नौका के टूटने का उल्लेख नहीं है। कुछ मन्त्रों में भुज्यु को समुद्र से नौकाओं द्वारा और कुछ के अनुसार रथों से बाहर सुरक्षित निकालने या ले जाने की बात कही गयी है। सायण भाष्य[72] में प्राय: आख्यान के इसी रूप की चर्चा की गयी है। वहां नौका के टूटने का कारण वायु को कहा गया है। साथ ही अश्विनों ने अकेले भुज्यु को ही नहीं वरन् उसकी सेना की भी रक्षा की और अपनी चार नावों में इन्हें समुद्र से पार कर तीन रथों, छ: अश्वों और १०० पदातियों के साथ तीन-रात, तीन-दिन में तुग्र के समीप पहुंचाने की बात कही है। इस प्रकार ऋग्वेद में भुज्यु सम्बन्धी आख्यान जहां एक ओर भुज्यु की कथा का विकास करता है वहीं दूसरी ओर अश्विनों को मानवीय रूप में उपस्थित करने तथा उसकी शक्ति को उद्घाटित करने का प्रयास भी करता है।

----

६६. ऋ० १०. १४३. ५.

६७. वही १. ११६. ५.

६८. वही १. ११६. ४.

६९. वही १. ११६. ४.

७०. वही १.११६.५ ; १.११९.४ ; ६.६२.६ ; ७.६९.७ ; १०.३९.४.

७१. वही १. ११९. ४ ; ६. ६२. ६ ; ७. ६९. ७.

७२. वही १. ११६. ३. पर भाष्य

कक्षीवान् सम्बन्धी आख्यान -

कक्षीवान् सम्बन्धी आख्यान के साथ जुड़े हुये उनके अनेक नामों का भी महत्व है, उनका अन्य नाम उशिक् पुत्र अथवा औशिज है उनके औशिज नाम के पीछे वैदिक साहित्य के अनेक सन्दर्भों में कुछ आख्यान प्राप्त होते हैं, जिससे उनका उशिक् पुत्रत्व सिद्ध होता है। ऋग्वेद [७३], यजुर्वेद [७४], अथर्ववेद [७५], बृहद्देवता [७६] तथा पुराणादि [७७] में कक्षीवान् से सम्बन्धित आख्यान प्राप्त होते हैं।

कक्षीवान् और अश्विनों का सम्बन्ध ऋषि के बुद्धि-विनाश और अश्विनों द्वारा उन्हें बुद्धि प्रदान करने से सम्बद्ध है। प्राचीन काल में पज्र कुल में उत्पन्न ऋषि कक्षीवान् की बुद्धि नष्ट हो गयी थी। उन्होंने ज्ञान प्राप्ति हेतु अश्विनों का आह्वान किया। स्तोता कक्षीवान् द्वारा अपना स्मरण देख ये देव शीघ्र ही उसके समक्ष पहुंचे तथा उन्हें महती बुद्धि प्रदान की और सुरा को प्रस्रुत करने वाले पात्र-विशेष के समान शक्तिशाली अश्व के खुर से सौ घड़े सुरा के प्रवाहित किये। [७८] एक अन्य

---

७३. ऋ० १.१८.१ ; १.५१.१३ ; १.११२.११ ; १.११६.७ ;
१.११७.६ ; १.१२६.३ ; १.१५८.५-६ ; ४.२६.१ ;
६.७५.८ ; १०.२५.१० ; १०.६१.१६.

७४. मा० सं० ३-२८

७५. अथर्व० ४. २६.५.

७६. बृ० दे० ४. २१-२५.

७७. वा० पु० ६१. ११७ ; ६६. ७०.

७८. ऋ० १. ११६ .७ ; नी० म० पु० ७६-७७ तु० ऋ० १.५१.१४ ;
१.११७. ६ ; १. १२०. ५.

ऋचा[७९] में सोम द्वारा ज्ञान सम्पन्न ऋषि कक्षीवान् की बुद्धि को बढ़ाने का संकेत भी मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थान[८०] पर इन्द्र द्वारा वृद्ध कक्षीवान् को वृचया नाम की युवती भार्या प्रदान करने का भी वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद के पश्चात् इस आख्यान का सुव्यवस्थित स्वरूप सर्वप्रथम आचार्य सायण[८१] ने अपने भाष्य में किया है। मुद्गल[८२] ने सायण भाष्य का ही अनुसरण अपने भाष्य में किया है। नीतिमंजरी में[८३] श्री द्या द्विवेद ने यह आख्यान सायण के ऋग्वेद-भाष्य से उद्धृत किया है।

अश्विनी तथा वर्तिका -

ऋग्वेद के कुल मिलाकर पांच सूक्तों में[८४] वर्तिका सम्बन्धी आख्यायिका का उल्लेख हुआ है। इन पांच सूक्तों के पांच मन्त्रों में वर्तिका[८५] (एक बार) और वर्तिकाम्[८६] पदों का प्रयोग हुआ है। एक

---

७९. ऋ० १०. २५. १०.

८०. वही १. ५१. १३

८१. वही भाष्य १. ११६. ७.

८२. वही भाष्य

८३. नी० म० पृ० ७६-७७ नी० पद्य ३६.

८४. ऋ० १. ११२. ८ ; १. ११६. १४ ; १. ११७. १६ ; १. ११८. ८ ;
१०. ३९. १३.

८५. वही १. ११७. १६.

८६. वही १. ११२. ८ ; १. ११६. १४ ; १. ११८. ८ ; १०. ३९. १३.

मन्त्र में वर्तिका को अश्विनों का आह्वान करते हुये कहा गया है— अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नोयत्सीममुञ्चत वृकस्य ।[87] चार मंत्रों में अश्विनों को वर्तिका को वृक की पकड़ से मुक्त कराते हुये कहा गया है[88] तथा एक मन्त्र में उन्होंने उसे अंहस् से मुक्त किया ।[89] वृक और अंहस् में शब्द साम्य नहीं है । यदि दोनों के सतही अर्थ को ग्रहण किया जाये तो एक भेड़िया और दूसरा पाप का वाचक शब्द है । किन्तु यदि दोनों के मौलिक अर्थ को ग्रहण कर विश्लेषण किया जाय तो तो दोनो प्रकाश अथवा 'अच्छे के' वर्जक हैं और बुरे (Evil) के प्रतीक हैं ।[90] निरुक्तकार यास्क ने इस आख्यायिका की व्याख्या का एक बहुत अच्छा संकेत दिया है । उन्होंने वर्तिका को उषा और वृक को सूर्य कहा है । यद्यपि आख्यायिका को एक प्राकृतिक रूप में उपस्थित करना अच्छा प्रयास माना जा सकता है ; किन्तु वृक को सूर्य मानना सन्देहास्पद लगता है ; क्योंकि वृक्, वृत्र, अंहस् आदि शब्द मन्त्रों में अन्धकार को द्योतित करने वाले और प्रकाश का वर्जन करने वाले हैं । वर्तिका सम्बन्धी इन सभी सन्दर्भों में वृक् शब्द का प्रयोग वर्जन करने वाले पकड़ लेने वाले, घेरने वाला रोकने वाला आदि अर्थों को प्रकट करता है । यदि इस आख्यायिका को हम प्राकृतिक उपादानों के सन्दर्भ में रखकर देखें और इसकी व्याख्या करें तो यह यास्क की सरणि

---

८७. ऋ० १. ११७. १६

८८. वही १. ११२. ८ ; १. ११६. १४ ; १. ११७. १६ ;
१०. ३९. १३.

८९. वही १. ११८. ८.

९०. निरु० ५. २१.

में अन्धकार और उषस् का प्रतीकात्मक रूप है। अन्धकार रूपी वृक उषस् को पकड़ता है उसके मार्ग को वर्जित करता है, और अश्विनौ, जो सूर्य और चन्द्रमा के प्रतीक हैं, उषस् को मुक्त करते हैं। वही उषस् यहाँ वर्तिका के रूप में है। यह तो वर्तिका का प्रतीकात्मक रूप हुआ किन्तु उसके साथ जो अन्य आख्यान जुड़े हुये हैं और जिन मन्त्रों में वर्तिका का प्रयोग है उन्हीं मन्त्रों में परावृज, शयु, विश्पला आदि के आख्यानों का संकेत और ग्रसित वर्तिका का मुक्त होना[६१] उसे ठोस रूपात्मक स्थिति प्रदान करता है। यद्यपि वर्तिका सम्बन्धी पांचों मन्त्रों का रूप अन्य आख्यायिका सम्बन्धी मन्त्रों से भिन्न है और सभी में एक जैसी भाषा और शैली, यहाँ तक कि शब्दों का प्रयोग भी एक जैसा दृष्टिगत होता है, किन्तु आख्यानों की सरणि में रखकर उसकी व्याख्या करना उसे अमूर्त से मूर्त की ओर ले जाना है। सभी आख्यान किसी न किसी मूर्त रूप से जुड़े हुये हैं। अत: वर्तिका को भी एक मूर्त रूप देकर ही उसे किसी आख्यायिका से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार जिन भाष्यकारों ने इस आख्यान को जो मूर्त रूप प्रदान किया है उस दृष्टि से इसका विवेचन करना भी आवश्यक है।

स्कन्द स्वामी ने[६२] अपने ऋग्वेद भाष्य में वर्तिका सम्बन्धी आख्यान को इस प्रकार उपस्थित किया है -- उनके अनुसार वर्तिका एक पक्षिणी है। किसी वृक के द्वारा ग्रसित किये जाने पर जब उसने अश्विनौ का आह्वान किया तो उन दोनों के परस्पर संघर्ष में अश्विनौ

----

६१. ऋ० १. ११७. १६.

६२. वही १. ११६. १४ पर भाष्य.

ने उसे वृक् से मुक्त कराया । मुद्गल[९३] और सायण[९४] ने भी इसी आख्यान का अनुसरण किया है । नीतिमंजरी[९५] में भी आख्यान का यही रूप है ।

सप्तवध्रि -

सप्तवध्रि नामक ऋषि की भी अश्विनो ने सहायता की । सप्तवध्रि ऋषि से सम्बन्धित आख्यान हमें ऋग्वेद,[९६] अथर्ववेद,[९७] वृहद्देवता[९८] आदि में प्राप्त होते हैं । ऋग्भाष्यकार वेंकट[९९], सायण[१००] तथा मुद्गल[१०१] में अपने-अपने भाष्यों में भी इस आख्यान का उल्लेख किया है ।

---

९३. वही भाष्य

९४. वही भाष्य

९५. निर्गुणेषु सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधव: ।
अश्विभ्यां मोचिता ग्रस्ता पक्षिणी वर्तिका शुभा ।।
- नी० मं० पृ० ९१-९२

९६. ऋ० ५. ७८. ५-६ ; ८. ७३. ९ ; १८.

९७. अथर्व० ४. २९. ४.

९८. वृ० दे० ५. ८२-८६.

९९. ऋ० ५. ७८. ५ पर भाष्य.

१००. वही भाष्य

१०१. वही भाष्य

एकबार सप्तवध्रि नामक ऋषि को उसके बन्धुजनों ने मिलकर एक पेटी में डालकर उसे बन्द कर दिया, जिससे वह अपनी प्रिया के पास न जा सके। वे नित्य-प्रति उसे प्रात:काल उस पेटी से बाहर निकालते व ताड़ित करते थे। इस प्रकार कुछ समय पेटी में पड़े रहने से वह ऋषि अत्यन्त कृशकाय हो गया। ऋषि ने अपनी सुरक्षा के लिये अश्विनों का स्तवन किया। अश्विनों ने तत्काल उपस्थित होकर उसे बंद पेटी से बाहर निकाला व स्वयं अदृश्य हो गये। जिससे वह रात्रि के समय अपनी भार्या के साथ रमण कर प्रात: होते ही भयभीत हो उस पेटी में पूर्ववत् सो जाता है। इस प्रकार पेटी में रहते हुये उसे दो ऋचाओं का ज्ञान प्राप्त हुआ। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में ऋषि के काष्ठ निर्मित पेटी में बन्द होने का स्पष्टोल्लेख किया गया है।[१०२]

अथर्ववेद में तो ऋषि की सिर्फ रक्षा करने भर का उल्लेख है -- यो विमदमवथ: सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहस:।[१०३]

आचार्य शौनक ने बृहद्देवता में[१०४] सप्तवध्रि के आख्यान को बहुत ही सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। तदनुसार सात बार विफल हो जाने के बाद भी भरतवंशी राजा अश्वमेध ने ऋषि को पुन: नियुक्त किया, क्योंकि उनका वैवाहिक जीवन पुत्र-विहीन था। परन्तु आठवीं बार भी विफल हो जाने पर राजा ने उसे वृक्ष द्रोणी में रखकर एक गर्त में फेंक दिया, जहां वह पूरी रात निश्चेष्ट सा पड़ा रहा। तब

----

१०२. ऋ० ५. ७८.५ ; ८.७३.६ ; १८.

१०३. अथर्व० ४. २६.४.

१०४. बृ० दे० ५. ८२-८६.

उसने अश्विना सूक्त (ऋ० ५-७८) द्वारा शुभस्पती अश्विनौ का स्तवन किया । उन्होंने तत्काल उपस्थित होकर उसे गर्त से ऊपर उठाकर पुन: सफलता प्रदान की ।

वेंकट माधव[१०५] ने इस आख्यान के वर्णन हेतु बृहद्देवता को ही उद्धृत किया है ।

घोषा का आख्यान -

उपचार सम्बन्धी आख्यानों में घोषा का आख्यान भी प्रसिद्ध है जिसकी सहायता अश्विनौ ने की । वह आख्यान निम्न प्रकार से है -- घोषा कक्षीवान ऋषि की इकलौती पुत्री थी । जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही वह अत्यन्त रूपवती व सौन्दर्यवान कन्या थी । परन्तु दुर्भाग्यवश शनै: शनै: वह कुष्ठ रोग से पीड़ित हुयी । जिससे उसका शारीरिक सौन्दर्य क्षीण होने लगा । ऐसी स्थिति में वह घोषा अपने पिता की छत्रछाया में रहकर अपना जीवन बिताने लगी । पिता कक्षीवान् पुत्री के पाणिग्रहण के सम्बन्ध में विचार कर बहुत परेशान रहने लगे । परन्तु शारीरिक सौन्दर्य के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने से उसका विवाह न हो सका और वह कन्या धीरे-धीरे वृद्धावस्था को प्राप्त होने लगी । इस प्रकार कुष्ठ रोग ग्रस्ता घोषा को अश्विनौ ने ही रोग-मुक्त कर पति और पुत्र प्रदान करके उसका जीवन सफल बनाया ।

घोषा के प्रति किये गये इस कृपापूर्ण कृत्य का उल्लेख

---

१०५. ऋ० ५-७८ ५.

ऋग्वेद[१०६] में अनेकों स्थलों पर मिलता है। घोषा सम्बन्धी इस आख्यान का प्रस्फुटन हमें बृहद्देवता[१०७] मेंप्राप्त होता है। वहा यह कहा गया है कि घोषा ने पिता के घर में साठ वर्ष की आयु बिता दी - 'उवास षष्टीं वर्षाणि पितुरेव गृहे पुरा[१०८]।

आचार्य शौनक विरचिता बृहद्देवतानुसार कक्षीवान् की पुत्री घोषा एक पाप रोग के कारण अपंग हो गयी।[१०९] उसका शारीरिक सौन्दर्य क्षीण होने लगा। इस प्रकार बिना पति तथा पुत्र के वृथा ही वृद्धावस्था को प्राप्त जीवन को देखकर घोषा बहुत व्याकुल हो उठी तथा उसने शुभस्पती (अश्विनौ) की शरण में जाने का निश्चय किया --

> आतस्थे महतीं चिन्तां न पुत्रो न पतिर्मम
> जरां प्राप्तां मुधा तस्मात् प्रपद्येऽहं शुभस्पती ।।[११०]

उसने सोचा मेरे पिता कक्षीवान् को भी उन्हीं की आराधना से यौवन, आयु, ऐश्वर्य तथा आरोग्य प्राप्त हुआ था,[१११] अतः मुझे भी यदि उन

----

१०६. ऋ० १. ११७.७ ; १.१२२.५ ; १०.३९.३ ; ६ ;
 १०.४०.५ ; ९.

१०७. बृ० दे० ७.४२.-४७.

१०८. वही ७. ४२.

१०९. आसीत्कक्षीवती घोषा पापरोगेण दुर्भगा
 उवास षष्टिं वर्षाणि पितुरेव गृहेपुरा ।। - बृहद्दे० ७।४२

११०. वही ७. ४३.

१११. वही ७. ४४.

अश्विनौ को सन्तुष्ट करने वाले मन्त्र मिल जायें तो मैं भी अपना पूर्ववत् सौन्दर्य पुन: प्राप्त कर सकती हूं -

रूपवत्तां च सौभाग्यम् अहं तस्य सुता यदि
ममापि मन्त्रा: प्रादु: स्युर् यै: स्तोष्यते मयाश्विनौ ।[११२]

ऐसा विचार करते हुये ही उसे दो ऋक् सूक्तों का दर्शन प्राप्त हुआ। घोषा ने तुरन्त हो अश्विनौ की स्तुति की । दिव्याकृति अश्विनौ ने उसके अङ्गों में प्रवेश कर उसे जरा रहित रोग-विहीन व सौन्दर्यवान बना दिया, साथ ही उसको एक पति और पुत्र के रूप में सुहस्त्यस्य प्रदान किया ।[११३]

आचार्य सायण[११४], मुद्गल[११५] तथा स्कन्द स्वामी[११६] आदि भाष्यकारों ने अपने-अपने भाष्यों में इस आख्यान का उल्लेख किया है ।

---

११२ बृ० दे० ७.४५

११३. चिन्तयतीति सूक्ते द्वे यो वां परि ददर्श सा ।
स्तुतौ तावश्विनौ देवौ प्रीतौ तस्या भगान्तरम् ।।
प्रविश्य तिजरारोगां सुभगां चक्रतुश्च तौ ।
भर्तारं ददतुस्तस्यै सुहस्त्यं च सुतं मुनिम् ।।
- वही ७.४६; ४७.

११४. ऋ० १.११७.७. पर भाष्य

११५. वही भाष्य

११६. वही भाष्य

स्कन्दस्वामी ने बृहद्देवता के अनुसार ही इस आख्यायिका को दर्शाया है। परन्तु आचार्य सायण द्वारा प्रतिपादित भाष्य में कुछ भिन्नता प्रतीत होती है, वहाँ पर हमें घोषा का कुष्ठ रोग द्वारा पीड़ित होना तो पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है लेकिन उसके पति द्वारा त्याग दिये जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता बल्कि वहाँ उसके अविवाहित जीवन व्यतीत करने का संकेत किया गया है।[११७] अश्विनौ द्वारा घोषा के शरीर में प्रवेश करके उसे सौन्दर्यवान् बना देने का भी यहाँ कोई संकेत नहीं मिलता। वरन् अश्विनौ की कृपा से उसके कुष्ठ रोग ठीक होने के तत्पश्चात् पति प्राप्त करने का ही उल्लेख मिलता है। मुद्गल का भाष्य सायण भाष्य का ही अनुसरण करता है।

नमुचि का वध और अश्विनौ -

यद्यपि नमुचि सम्बन्धी आख्यान का सीधा सम्बन्ध इन्द्र तथा नमुचि के मध्य उपस्थित है। किन्तु अश्विनौ के साथ इन्द्र का सम्बन्ध होने से इसे हम अश्विनौ सम्बन्धी आख्यानों के मध्य जोड़ रहे हैं। नमुचि के वध के लिये इन्द्र को शक्ति की आवश्यकता थी उस शक्ति के अर्जन हेतु उन्होंने सरस्वती और अश्विनौ से सहायता प्रदान करने की कामना की। ऋग्वेद के एक मन्त्र के अनुसार अश्विनौ ने असुर नमुचि के वध के लिये सुरापान करके इन्द्र की सहायता की।

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥[११८]

---

११७. ऋ० १. ११७. ७ पर भाष्य
११८ वही १०. १३१. ४.

यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के अनुसार अश्विनौ ने नमुचि के सोम को हरण कर उसे स्थापित किया । इन्द्र के वीर्य के लिये उसी का सरस्वती ने सेवन किया अथवा इन्द्र के पीने के लिये सरस्वती ही उसको लेकर आयी ।[११९]

श० ब्रा०[१२०] में भी इस आख्यान का वर्णन बहुत सुव्यवस्थित रूप से मिलता है जिसके अनुसार नमुचि को असुर बताया गया है । उसने सुरा की सहायता से इन्द्र के पराक्रम, अन्न के रस अर्थात् सोमपान को हर लिया । अत्यधिक खिन्न होकर वह इन्द्र सरस्वती तथा अश्विनौ की शरण में गये तथा उनसे कहा कि, 'मैंने नमुचि से प्रतिज्ञा की है कि मैं तुमको न दिन में, न रात्रि में, न डंडे से, न धनुष से, न थप्पड़ से, न मुक्के से, न सूखी वस्तु से और न भीगी चीज़ से मारूंगा ।' अब यह मेरी ये वस्तुयें उठा ले गया है । आप हमारी इन वस्तुओं को पुनः वापिस दिलवा दीजिये ।[१२१] अश्विनौ बोले, 'यदि इसमें हमें भी कुछ अंश दिया जायेगा तब हम आपकी सहायता करेंगे ।' इन्द्र ने समर्थन करते हुये उनकी बात को स्वीकार कर लिया ।[१२२] उन

---

११९. वा० सं० १९. ३४ ; २०. ५९.

१२०. श० ब्रा० ५.४. १. ९ ; १२. ७.३.१-३.

१२१. इन्द्रस्येन्द्रियमन्नस्य रसम् । सोमस्य भक्षं सुरयाऽऽसुरो नमुचिरहरत्सोऽश्विनौ च सरस्वतीं चोपाधावच्छेपानोऽस्मि नमुचये न त्वा दिवा न नक्तं हनानि न दण्डेन धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न शुष्केण नार्द्रेणाथ म इदमहार्षीदिदं म आजि-ऽहीर्षथेति ।'

श० ब्रा० १२. ७. ३.१

दोनों अश्विनो तथा सरस्वती ने जलों के फेन को वज्र बनाया, 'यह सूखा है न गीला ।' इन्द्र ने उस फेन निर्मित वज्र से नमुचि के शिर को ऐसे समय काट लिया जब रात्रि तो समाप्त हो चुकी थी और दिन अभी नहीं उदित हो पाया था । क्योंकि यह न रात्रि काल था, न दिन का समय था[१२३] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्द्र अश्विनौ की सहायता से ही नमुचि-वध करने में समर्थ हुये । जिसका सुव्यवस्थित रूप हमें श० ब्रा० में प्राप्त हो जाता है । जबकि कथा मूल रूप से इन्द्र तथा नमुचि के साथ ही सम्बन्धित है ।

पेदु के लिये अश्व -

अश्विनौ ने अन्य ऋषियों की भांति पेदु नामक ऋषि को भी प्रसन्न किया । जिसका संकेत ऋग्वेद[१२४] की कतिपय ऋचाओं में प्राप्त होता है । अश्विनौ ने पेदु के लिये तीव्रगामी, शक्ति सम्पन्न, श्वेत वर्ण वाला, असुरों को पराजित करने वाला एक अश्व प्रदान किया[१२५] ।

श्रीधाद्विवेद विरचित नीतिमंजरी में भी इस लघु-आख्यायिका का संकेत मिलता है ।

> यादृशाज्जायते जन्तर्नाम कर्म्मास्य तादृशम् ।[१२६]
> अश्विना वश्त जावश्वं ददतुः पेदवे सितम् ।।

---

१२३. श० ब्रा० १२. ७. ३. ३.

१२४. ऋ० १. ११६. ६ ; १. ११७. ६ ; १. ११९. १० ; १०. ३९. १०.

१२५. वही १. ११७. ९ ; १. ११९. १०.

१२६. नी० म० पृ० ७२-७५

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी राजा हुये जो अश्विनौ की कृपा से ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सके । इस श्रेणी में पठर्वा नरेश तथा शर्याति मुख्य हैं जो युद्ध-भूमि में अश्विनौ की अनुकम्पा से ही विजय प्राप्त कर सके ।

याभि: पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्नि र्ना दी देच्चित् इद्धो अज्मन्ना ।
याभि: शर्यातिमवथो महाधने ताभि रु षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।[१२७]

मुख्यत: मानव मात्र की सहायता करने वाले अश्विनौ ने जाहुष राजा की भी सहायता की । जिसका संकेत हमें ऋग्वेद में[१२८] मूलरूप से प्राप्त हो जाता है । तदनुसार एक बार जाहुष नरेश शत्रुओं से घिर गया था, शत्रुओं ने उन्हें राज्याच्युत कर दिया । इस प्रकार विपत्ति में पड़े जाहुष ने अश्विनौ का स्मरण किया । अपना आह्वान् सुनते ही अश्विनौ ने शीघ्र ही अपने रथ पर आरूढ़ होकर परिचित मार्गों से जाहुष को शत्रुओं के घेरे से बाहर लाकर उसकी रक्षा की ।

अश्विनौ ने पिपासित व्यक्तियों के लिये जल की धारा प्रवाहित करके उन्हें तृप्त किया । इस सम्बन्ध में भी एक लघु आख्यायिका ऋग्वेद में प्राप्त होती है जो मुख्यत: स्तोता गौतम[१२९] से सम्बद्ध है । किसी समय यज्ञ भूमि में विद्यमान स्तोता गौतम के लिये अश्विनौ ने एक अन्य स्थान पर कूप का निर्माण कर उसे ऋषि के समीप भेज दिया । कूप को ऋषि के पास पहुंचा कर उनके स्नान तथा पीने के लिये जल प्रवाहित करते हुये अश्विनो ने उस कूप को उल्टा कर दिया जिससे

---

१२७. ऋ० १. ११२. १७.

१२८. वही १. ११६. २० ; ७. ७१. ५ :

१२९. वही १. ११६. ६.

उसका तला ऊपर हो गया और द्वार नीचे । इसी प्रकार उन्होंने अपने सामर्थ्य से ऋवत्क के पुत्र शर के लिये भी नीचे कूप से जल को उसकी ओर प्रवाहित कर उसकी पिपासा को शान्त किया ।[130]

अश्विनों ने अपने उपासक कृष्ण पुत्र विश्वक को अपने सामर्थ्य से खोये हुये पशु की भाँति उसके पुत्र विष्णापु से मिलाकर उस पर बहुत कृपा की । जिसका संकेत ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में मिलता है ।[131]

पूर्वोल्लिखित कुछ आख्यान ऐसे हैं, जिनकी चर्चा प्राय: अश्विनों के साथ की गयी । इन आख्यानों के अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे आख्यान हैं जिनका केवल संकेत मात्र ही ऋ0 के कुछ मन्त्रों मे उपलब्ध है । सोमरस का पान कराने वाले वम्र ऋषि की उन्होंने रक्षा की । जिनके साथ स्तुति करने वाले कलि और विमद, जिसे उत्तम धर्मपत्नी देकर अश्विनों ने उपकृत किया,[132] का नाम भी जुड़ा हुआ है । पृथि नामक ऋषि के अश्व कहीं दूर चले गये थे, जिससे वे दु:खी थे अश्विनों ने उसको

----

१३०. ऋ0 १. ११६.२२ ; १.११७.२० ; १.११८.८ ; १.११०.६ ;
१०.३६.१३.

१३१. अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्याशचीभि: ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।।
-ऋ0 १.११६.२३

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।।
- वही १.११७.७.

१.११२.४ ; ११६.११ ; ११७.४ ; ११८.६ ; १०.३६.१३.

१३२. वही १. ११२.१५ ; १.११७.२०.

प्राथना को स्वीकार कर उसके समीप जाकर रक्षा की[१३३]। इसी प्रकार शयु ऋषिकीवन्ध्या गाय को अश्विनौ ने दुधारू बना कर उन पर कृपा की।[१३४] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विशिष्ट औषधि के द्वारा अश्विनौ ने ऋषि की गाय को बन्ध्या होने पर भी दुधारू बनाया।[१३५] इसीलिये एक दूसरे सन्दर्भ में उन्हें अपक्व गो में पक्व दुग्ध का आधान करते हुये कहा गया है --

'युवं पय उस्त्रियायाम धत्त पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः[१३६]

अश्विनौ अनेक लोगों को उत्तम बल सन्तति ऐश्वर्य,पराक्रम दीर्घजीवन आदि प्रदान करने वाले कहे गये हैं। इसी से उन्हें पुरुभुजौ, नरौ, नासत्यौ, सुक्षत्रौ आदि विशेषणों से युक्त किया जाता है। जह्नव की प्रजा अश्विनौ को दिन में तीन बार अन्न एवं तीन सवनों में हवि प्रदान करती थी। इसलिये उसकी प्रजा को उन्होंने क्षत्र, बल ऐश्वर्य आदि से परिपूर्ण किया।[१३७]

शम्बर जैसे राक्षसों के वध के लिये अनेक देवताओं एवं ऋषियों ने प्रयास किया,जिनमें अतिथिग्व, कुशोयुव, दिवोदास,त्रसदस्यु

----

१३३. ऋ० १. ११२. १५.

१३४ वही १. ११७. २०.

१३५. वही १. ११२.३.

१३६. वही १. १८०. ३.

१३७. 'रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता।
आ जह्नावीं समनसोप वाजै स्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम्।
- वही १. ११६. १६.

ऐसे नाम हैं जिनकी सहायता अनेक देवताओं ने की । अश्विनौ का नाम भी इन देवताओं के साथ संयुक्त है, जिन्होंने इन लोगों की रक्षा दस्युओं को परास्त करने में की[१३८]। अनेक ऋषि ऐसे हैं जिनकी सहायता अश्विनौ ने उनके सुकर्मों में की । भरद्वाज मान्धाता आदि का नाम ऐसे ही लोगों के अन्तर्गत है जिनकी सहायता अश्विनौ के द्वारा की गयी ।[१३९] शयु, अत्रि, मनु आदि ऋषियों के नाम भी इसी श्रेणी में गिनाये जा सकते हैं ।[१४०] इन्होंने कर्कन्धु, पृश्निगु, पुरुकुत्स आदि की भी रक्षा की ।[१४१]

विश्पला -

अश्विनौ के शल्य तन्त्र सम्बन्धी आख्यान वैदिक तथा उत्तरवैदिक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । वेदाध्ययन से अश्विनौ के कुछ ऐसे आश्चर्यजनक कार्यों का वर्णन मिलता है, जिनसे प्राचीनकाल के शल्य तन्त्र की विकसित स्थिति को हम भलीभाँति देख सकते हैं । शल्य सम्बन्धी आख्यानों में हम सर्वप्रथम विश्पला सम्बन्धी आख्यान की चर्चा कर रहे हैं ।

---

१३८. ऋ० १. ११२. १४.

१३९. याभि: सूर्यं परियाथ: परावति मान्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।
- वही १. ११२. १३.

१४०. वही १. ११२. १६.

१४१. वही १. ११२. ६; ७.

ऋग्वेद के प्रथम मंडल में अश्विनौ सम्बन्धी प्रथम कुछ सूक्तों के अन्तर्गत[१४२] किसी भी आख्यान का संकेत नहीं प्राप्त होता । ऋ० १. ११२ तथा कुछ अन्य सूक्तों में[१४३] विश्पला सम्बन्धी आख्यान का संकेत है- 'याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं[१४४] - - - - -' जिसमें विश्पला के आख्यान पर कुछ प्रकाश डाला गया है । भाष्यकार स्कन्द,[१४५] सायण[१४६] तथा मुद्गल[१४७] आदि के भाष्यों में इस आख्यान का उल्लेख मिलता है ।

ऋग्वेद के अनेकों स्थलों पर अश्विनौ के इस कृपापूर्ण कृत्य का उल्लेख मिलता है । जिसके अनुसार खेल नामक राजा की पुत्री विश्पला किसी संग्राम में गयी हुयी थी जिसमें रात्रि के भ्रमण के समय उसकी एक टांग पक्षी के पंख के समान कट गयी[१४८] पुरोहित अगस्त्य द्वारा स्तुति किये जाने पर अश्विनौ ने[१४९] शीघ्र ही उपस्थित होकर लोहे की जंघा बनाकर[१५०] विश्पला को लगाकर[१५१] उसे चलने फिरने योग्य बना दिया ।[१५२]

---

१४२. ऋ० १.१.३ ; १.३४ ; १.४६ ; १.४७.

१४३. वही १.११६ ; ११७ ; ११८ ; १०.३९.

१४४. वही १.११२.१० ;

१४५. वही १. ११२. १० पर भाष्य

१४६. वही १. ११६. १५ पर भाष्य

१४७ वही भाष्य

१४८. वही १. ११६.१५.

१४९. वही १. ११७. ११.

१५०. वही १.११८.८. तु० १. ११६. १५.

१५१. वही १. ११२. १० ; १.११६.१५ ; १.११७.११.

१५२. वही १. ११२.१० ; ११६.१५ ; १०.३९.८.

स्कन्द स्वामी ने इस आख्यान को प्रस्तुत करते हुये राजा को ऐल बताया है।[१५३] जबकि इसका उल्लेख सम्बन्धित ऋचा[१५४] में भी नहीं मिलता है। लेकिन एक अन्य ऋचा[१५५] के भाष्य में उन्होंने राजा को `खेल` ही बताया है। भाष्यकार स्कन्द के अनुसार अगस्त्य ऐल नामक राजा के पुरोहित थे। उनकी सेना में विश्पला नाम की युद्ध करने वाली नारी थी। अन्न और धन के लिये युद्ध करती हुयी उसकी जंघा को शत्रुओं ने विच्छिन्न कर दिया। उसकी विच्छिन्न जंघा का समाचार सुनकर पुरोहित अगस्त्य ने अश्विनौ को सन्तुष्ट किया जिन्होंने विश्पला को लौहमयी जंघा प्रदान कर चलने योग्य बना दिया।[१५६]

सायण[१५७], मुदगल[१५८] तथा श्रीपादद्विवेद[१५९] ने भी कुछ शब्दों के हेर फेर से इस आख्यान को प्रस्तुत किया है। मुदगल ने तो सायण भाष्य ही उद्धृत किया है। इस प्रकार इस आख्यान के माध्यम से मात्र अश्विनौ के कार्यों पर ही नहीं, वरन् तत्कालीन शल्य चिकित्सा सम्बन्धी विज्ञान पर भी प्रकाश पड़ता है। जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वैदिक संस्कृति अनेक प्रकार के विज्ञानों से परिपूर्ण थी।

----

१५३. अगस्त्यपुरोहित: ऐलो नाम राजा बभूव - - - - - -।
-ऋ० १.११२.१० पर भाष्य

१५४. वही १. ११२. १०.

१५५. वही १. ११६. १५.

१५६ वही १. ११२.१० पर भाष्य

१५७. वही १. ११६. १५ पर भाष्य.

१५८. वही भाष्य

१५९. न स वरणशील: स्याम्निशि नि:शङ्क मानस :।
विश्पलाछिन्न पादाऽऽसीत् खेलस्याजौ यतोनिशि।-नीतिपद (४३)
= नी० म०४९३

वध्रिमती का आख्यान -

विश्पला के ही समान वध्रिमती की आख्यायिका भी प्रसिद्ध है। इस आख्यायिका का मूल रूप हमें ऋग्वेद की ही कुछ ऋचाओं में[१६०] मिलता है। तदनुसार बुद्धिमती ऋषि पुत्री वध्रिमती ने अश्विनों का बार-बार आह्वान किया।[१६१] वध्रिमती द्वारा अपना आह्वान[१६२] सुनकर शीघ्र ही उसके समीप पहुंचकर वध्रिमती की प्रसववेदना[१६३] को दूर कर पुत्राभिलाषिणी उस ऋषि पुत्री को हिरण्यहस्त[१६४] पिंगल वर्ण का पुत्र[१६५] प्रदान किया।

स्कन्द,[१६६] सायण[१६७] तथा मुद्गल[१६८] आदि भाष्यकारों ने अपने-अपने भाष्यों में इस लघु आख्यायिका को प्रस्तुत किया है। परन्तु स्कन्द द्वारा प्रदत्त आख्यायिका में कुछ भिन्नता दिखायी पड़ती है -- जिसके अनुसार वध्रिमती नाम की कोई युद्ध कारिणी नारी थी, जिसका हाथ शत्रुओं ने युद्ध में काट दिया था उसने अश्विनों की स्तुति की, जिन्होंने प्रकट होकर उसे स्वर्णिम हस्त प्रदान किया।[१६९] सायण ने[१७०]

---

१६०. ऋ० १.११६.१३ ; १.११७.२४ ; ६.६२.७ ; १०.३६.७ ;
१०.६५.१२.

१६१. वही १.११६.१३ ; ६.६२.७ ; १०.३६.७.

१६२. वही १.११६.१३ ; ६.६२.७.

१६३. वही १०.३६.७.

१६४ वही १.११६.१३ ; १.११७.२४ ; ६.६२ ७.

१६५. वही १०.६५.१२.

१६६. वही १.११६.१३ पर भाष्य

१६७. वही १. ११६. १३ पर भाष्य

१६८ वही भाष्य

१६९ वही - स्क० भा० १.११६.१३.

१७०. सा० भा० १. ११६..१३.

इसी आख्यायिका को प्रस्तुत करते हुये पुत्र प्राप्ति का उल्लेख किया है उनके अनुसार वध्रिमती किसी राजर्षि की पुत्री थी जिनका पति नपुंसक था , उसने पुत्र प्राप्ति के लिये अश्विनौ की प्रार्थना की जिन्होंने उसे स्वर्णिम हाथ वाले और सुन्दर रूप वाले पुत्र को प्रदान किया । ऋग्वेद के एक मन्त्र वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम्[१७१] में हिरण्यहस्तम् शब्द स्वर की दृष्टि से बहुव्रीहि समास है । `हिरण्यहस्तम्` में उदात्त स्वर पूर्व पद पर है । अत: `बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्`[१७२] (बहुव्रीहि समास में पूर्व पद पर उदात्त स्वर होता है) के अनुसार बहुव्रीहि पद होने के कारण यहाँ इसे `स्वर्णिम हाथ वाले` अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है । तथा ऐसी स्थिति में इसका अर्थ `स्वर्णिम हाथ` नहीं किया जा सकता । अत: सम्पूर्ण मन्त्रांश का अर्थ होगा--`वध्रिमती के लिये स्वर्णिम हाथ वाले को अश्विनौ ने प्रदान किया ।` इस प्रकार स्कन्द द्वारा दी गयी आख्यायिका सन्देहात्मकप्रतीत होती है । यद्यपि सायण ने कोई साक्ष्य नहीं दिया; किन्तु मन्त्रांश के अर्थ की दृष्टि से उनके द्वारा दी गयी आख्यायिका उपयुक्त प्रतीत होती है ।

ऋग्वेद के १. ११७. २४ में भी वध्रिमती के इस आख्यान का संकेत है,जिसकी व्याख्या में सायण ने उसे किसी राजर्षि की ब्रह्मवादिनी पुत्री के रूप में प्रस्तुत किया है । साथ ही उपर्युक्त आख्यायिका को संयुक्त किया है । इस सन्दर्भ में स्कन्द-स्वामी ने[१७३] भी उसके पुत्र-प्राप्ति

---

१७१. वही १. ११६. १३.

१७२. पा० सू० ६. २. १.

१७३ वही १. ११६. १३ पर भाष्य

की चर्चा की है जिसे एकबार श्याव भी कहा गया है।[१७४] ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य संहिताओं तथा ब्राह्मणादि ग्रन्थों में इस कथा का कोई संकेत नहीं है।

दध्यङ्·ाथर्वण की आख्यायिका

दध्यङ्· द्वारा अश्व-शिर से अश्विनों के प्रति मधु-विद्या का उपदेश

ऋग्वेद में अश्विनों का मधु से घनिष्ठ सम्बन्ध सर्वत्र उल्लेखनीय है।[१७५] इसी मधु से सम्बन्धित 'दध्यङ्· द्वारा अश्व-शिर से अश्विनों के प्रति मधु-विद्या का उपदेश' की आख्यायिका वैदिक वाङ्·मय[१७६] में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

ऋ० वे० में प्रस्तुत आख्यान का मूल रूप बहुत ही संक्षेप में मिलता है।[१७७] तदनुसार अथर्वा पुत्र दध्यङ्· ने इन्द्र के स्थान पर त्वष्टा से मधु-विद्या प्राप्त की थी। जब अश्विनों ने दध्यङ्· को अश्व-शिर धारण कराया, तब उससे उन्होंने अश्विनों को मधु-विद्या की शिक्षा दी। यहां इन्द्र द्वारा ऋषि के अश्व शिर पर वज्र प्रहार करने का कोई संकेत नहीं मिलता।

---

१७४. श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम।

- वही १०. ६५. १२.

१७५. ऋ० १.११७.६ ; ४.४५.३ ; ८.२२.६ ; १०.४०.६.

१७६. वही १.११६.१२ ; ११७.२२ ; ११९.९.
श० ब्रा० ४.१.५.८ ; ६.४.२.३ ; १४.१.१८-२५
बृ० दे० ३.१८-२४.

१७७. वही १.११६.१२ ; ११७.२२ ; ११९.९ ; १०.४८.२.

ऋग्वेद के पश्चात श० ब्रा०[१७८] में इस आख्यान का सर्वप्रथम सुव्यवस्थित ढंग से वर्णन मिलता है। तदनुसार दध्यङ् (दधीची) ऋषि इस प्रवर्ग्य या मधु विद्या को जानते थे। जब अश्विनौ को इस बात का ज्ञान हुआ कि दध्यङ् ऋषि को यह विद्या मालूम है कि यज्ञ का शिर किस प्रकार जोड़ा जाता है? व कैसे उसे पूर्ण किया जाता है?[१७९] तो वह इस रहस्य को जानने के लिये ऋषि के पास पहुंचे। परन्तु ऋषि ने उन्हें इन्द्र द्वारा की गयी वर्जना का उल्लेख तथा अपने सिर के कट जाने के भय[१८०] को व्यक्त करते हुये शिक्षा देने में असमर्थता व्यक्त की। ऋषि की बात सुनकर अश्विनौ ने उन्हें पूर्णरूपेण आश्वासन दिया। उन्होंने कहा कि, 'हम देवों के वैद्य हैं, अत: आपकी पूर्णतया रक्षा करेंगे। ऋषि के पूछने पर उन्होंने बताया कि, 'हम आपका सिर काटकर अन्यत्र रख देंगे और उसके स्थान पर एक अश्व शिर लाकर आपके जोड़ देंगे।' उसी के माध्यम से आप हमें यज्ञ-रहस्य की शिक्षा दे दें। इस प्रकार ऋषि दध्यङ् की अनुमति पाकर उन्होंने एक अश्व का शिर लाकर उसे जोड़ दिया[१८१] जिससे ऋषि ने मधु-विद्या का रहस्य देवों के भिषक उन अश्विनौ के प्रति कह डाला। फलत: क्रोधित हुये इन्द्र ने ऋषि पर प्रहार किया। जिससे उनका अश्व शिर कट गया तथा अश्विनौ ने ऋषि का पूर्व वास्तविक सिर लाकर उन्हें जोड़ दिया।[१८२] इस प्रकार अश्व शिर

----

१७८. श० ब्रा० ४.१.५.८ ; ६.४.२.३ ; १४.१.१.१८-२५.

१७९. यथा यथैतद् यज्ञस्यशिर: प्रतिधीयते।
यथैष कृत्स्नो यज्ञो भवति, — वही १४.१.१.१८.

१८०. वही १४.१.१.१९.

१८१. वही १४. १. १.३३.

१८२. 'अथास्य इन्द्र शिरश्चिच्छेद अथास्य स्वं शिर आहृत्य तद् ह अस्य प्रति दधतु:।'
— वही १४. १. १. २४.

के माध्यम से ऋषि दध्यङ· अश्विनौ को मधुविद्या का रहस्य की शिक्षा देने में समर्थ हुये ।

श० ब्रा० के अनुसार दध्यङ· ऋषि इस विद्या को पहले से ही जानते थे । त्वष्टा अथवा इन्द्र द्वारा इस विद्या के ज्ञान देने का कोई उल्लेख नहीं है । जबकि ऋग्वेद में त्वष्टा द्वारा ऋषि को मधु विद्या का ज्ञान देने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।

श० ब्रा० के चतुर्दश काण्ड में आये बृहदारण्यकोपनिषद में[१८३] भी दध्यङ· द्वारा अश्व शिर से अश्विनौ के प्रति प्रवर्ग्य की इस मधु विद्या का ज्ञान देने का उल्लेख मिलता है ।

बृहद्देवता[१८४] में भी प्रस्तुत आख्यान का उल्लेख मिलता है,परन्तु मधु-विद्या का उपदेश देते हुये ऋषि के अश्व-शिर को इन्द्र द्वारा काट डालने का उल्लेख तो ब्राह्मणों में उद्धृत कथा के समान ही है, परन्तु उसके बाद की कथा भिन्नता लिये हुये है।[१८५] तदनुसार जब इन्द्र ने दधीची के अश्व शिर को वज्र से काट डाला तो वह शर्यणावत नामक सरोवर में विद्यमान पर्वत पर गिरा तथा उन जलों से ऊपर उठकर वह प्राणियों को

----

१८३. इदं वै तन्मधु दध्यङ· आथर्वणो अश्विभ्यामुवाच तदेतद् ऋषि: पश्यन्नवोचद् आथर्वणाय अश्विना दधीचे अश्व्यं शिर: प्रत्यैरतम् ।।'

- बृ० उ० २.५. १६ ; १७ ; १८.

१८४. बृ० दे० ३.१८. २४.

१८५. वही ३. १६. २४.

विविध वर देते हुये युगपर्यन्त उन्हीं जलों में डूबा रहा।[१८६] ऐसा कोई उल्लेख ब्राह्मणों में नहीं मिलता।

स्कन्द०[१८७], वेंकट,[१८८] सायण[१८९] तथा मुदगल[१९०] ने भी इस आख्यान का उल्लेख स्वकृत भाष्यों में किया है। स्कन्द द्वारा प्रदत्त आख्यान बृहद्देवतागत आख्यान के समान ही है।

अश्विनों का सर्व प्रसिद्ध आख्यान उनके उस भिषक् रूप से है जिसके माध्यम से उन्होंने अनेक लोगों को यौवन प्रदान किया। इस प्रकार के आख्यान अवान्तरकाल में भी विकसित होते चले गये हैं। ऋ० में इस आख्यान से सम्बन्धित सन्दर्भ प्रथम मंडल, पंचम मंडल, सप्तम मंडल और दशम मंडल में प्राप्त होते हैं। इस आख्यान के मुख्य नायक च्यवन ऋषि हैं जिनकी कथायें निरन्तर विकसित होती गयी हैं।

----

१८६. दधीचश्च शिरश्चाश्व्यं कृतं वज्रेण वज्रिणा।
पपात सरसी मध्ये पर्वते शर्यणावति ॥
तदश्वमयस्तु समुत्थाय भूतेऽभ्यो विविधान्वरान्।
प्रादाय युगपर्यन्त तास्वेवाप्सु निमज्जति ॥
- बृ० दे० ३.१६.२३-२४.

१८७. ऋ० १.८४.१४ पर भाष्य

१८८. वही १.११६.१२ पर भाष्य

१८९. वही भाष्य

१९०. वही भाष्य

च्यवन तथा सुकन्या की कथा -

ऋ० में च्यवन को 'च्यवान' कहा गया है । ऋग्वेद में इस आख्यायिका का मात्र संकेत ही प्राप्त होता है जिसका विकास अवान्तर काल में विभिन्न रूपों में हुआ है । ऋ० में जरा प्राप्त च्यवान ऋषि को पुनर्यौवन प्रदान कर अश्विनौ ने उसकी सहायता की -- 'युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः'[१६१] इस प्रकार के कथन ऋ० के अनेक सन्दर्भों में प्राप्त होते हैं ।[१६२]

उत्तर-वैदिक साहित्य में इस कथा का स्पष्टीकरण है । इसलिये हम यहाँ पर उन समस्त सन्दर्भों के आधार पर इसका उल्लेख कर रहे हैं । ऋग्वैदिक ऋचाओं में यह कथा बहुत ही संक्षिप्त है । वहाँ पर अश्विनौ द्वारा च्यवान को मात्र पुनर्यौवन प्रदान करने का ही संकेत है । अश्विनौ ने च्यवान ऋषि के जीर्ण-शीर्ण शरीर से वृद्धावस्था को कवच के समान उतार कर फेंक दिया[१६३] और उनको सौन्दर्य-युक्त, अनश्वर-शरीर प्रदान करके पुनः तरुण बना दिया[१६४] जिससे अनेक युवतियों ने उनके

---

१६१. ऋ० १. ११७. १३.

१६२. वही १. ११८. ६ ; ५.७४.५ ; ५.७५.५ ; ६.६२.७ ; ७.६८.६ ; ७.७१.५ ; १०.३६.४ ; १०.५६.१ ; १०.६१.२ ; १०.११५.६.

१६३. वही ७. ६८.६ ; १.११६.१०.

१६४. वही ७. ६८. ६.

साथ सहवास की कामना की --

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवनात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥[195]

ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य संहिताओं में तैत्तरीय संहिता[196] और अथर्ववेद[197] में च्यवन का मात्र नामोल्लेख ही देखने को मिलता है ।

श० ब्रा०[198] तथा जै० ब्रा०[199] में इस आख्यान को विस्तार दिया गया है । यहां च्यवन को भृगुपुत्र या भार्गव अथवा अङ्गिरस के पुत्र आङ्गिरस के रूप में वर्णित किया गया है । ऐ० ब्रा०[200] में च्यवन को भृगु का पुत्र तथा राजा शर्याति का पुरोहित कहा गया है । उनकी तीन आकांक्षायें थीं -- वे युवा बने, कुंवारी कन्याओं के साथ विवाह करें और सहस्त्र गोदक्षिणा ले यज्ञ करें । इन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की । उनकी तपस्या में विघ्न उत्पन्न करते हुये उन्हीं के यजमान राजा शर्याति के गोपालों ने उनका अपमान किया । उससे क्रुद्ध होकर च्यवन ने उनकी समस्त क्रियाओं को स्तम्भित कर दिया । इससे भयभीत होकर शर्याति ने ऋषि को अपनी दुहिता सुकन्या को विवाह के लिये समर्पित कर दिया । जिससे प्रसन्न होकर ऋषि

---

१९५. ऋ० १. ११६. १०.

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥
- ऋ० ५. ७४. ५.

१९६. तै० सं० ६. ४. ९. १.

१९७. अथर्व० ७. ५३. १.

१९८. श० ब्रा० ४. १. ५. सम्पूर्ण

१९९. जै० ब्रा० ३. १२१-१२८

२००. ऐ० ब्रा० ५. २१.

ने अपने आर्ष तेज से शर्याति के लोगों को पूर्ववत् कर दिया । विवाह के पश्चात् सुकन्या के पास अश्विनौ आते हैं और उससे सहवास की कामना करते हैं । अश्विनौ ने सुकन्या से कहा कि जीर्ण-शीर्ण व्यक्ति को छोड़कर हम दोनों के पास चली आओ हममें से किसी एक का पतिरूप में चयन कर लो । इस प्रकार अश्विनौ द्वारा ऋषि की निन्दा किये जाते हुये सुकन्या ने उन दोनों को मना करते हुये ऋषि च्यवन के समीप भेजा। जहाँ च्यवन ने उन्हें अपने पुनर्यौवन के बदले यज्ञ में सोमपान का अधिकारी बनाने की बात कही । इस प्रकार अश्विनौ द्वारा कहे जाने पर च्यवन समुद्र में स्नान हेतु गये और युग्मदेव अश्विनौ स्वयं भी उस समुद्र में कूद गये । कुछ समय बाद तीनों एक रूप होकर बाहर (ऊपर) आये और सुकन्या ने अपने पति को पहचान लिया । बाद में च्यवन ने भी पुन: युवावस्था प्राप्त कर लेने पर देवों के पास जाकर उनका शिरोहीन यज्ञ पूर्ण करके अश्विनौ को सोमपान का अधिकार प्राप्त कर लेने की बात कही । यज्ञ पूर्ण हो जाने पर देवों ने भी अश्विनौ का सोमपान गृहण करने के लिये आह्वान किया । इन ब्राह्मणों में च्यवन के आख्यान के साथ दध्यङ्-आथर्वण का आख्यान भी संयुक्त है । ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त आख्यानों में कुछ पारस्परिक मतभेद भी है, जिसका उल्लेख आगे सप्तम् अध्याय के अन्तर्गत किया गया है ।

इस प्रकार ऋग्वेद में प्राप्त विभिन्न आख्यान-संकेतों का ब्राह्मण साहित्य में जहाँ एक ओर विकास दृष्टिगत होता है, वहीं दूसरी ओर अनेक आख्यान कुछ इस प्रकार मिश्रित हो गये हैं कि उन्हें अलग कर पाना कठिन है । जिससे उनकी मौलिकता के सम्बन्ध में सन्देह होने लगता है । जहाँ अपने मूल रूप में यह आख्यान अश्विनौ की दैवी शक्तियों एवं चमत्कारों की ओर संकेत करती है, वहीं अपने

विकासात्मक रूप में यह च्यवन ऋषि की महत्ता का प्रतिपादन करने लगती है, जिसके द्वारा उनकी मधु-विद्या का प्रतिपादन और इसी मधु-विद्या के माध्यम से अश्विनौ को देवत्व प्रदान करने की धारणा विकसित की गयी। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में जहाँ अश्विनौ की प्रधानता है वहीं विकासात्मक अवस्था में च्यवन ऋषि प्रधान हो जाते हैं।

च्यवन सम्बन्धी यह आख्यान उत्तर-वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होता है। महाभारत में[२०१] इस आख्यान के मूलभूत अंश च्यवन ऋषि की यौवन-प्राप्ति, सुकन्या से उनका विवाह और उनके द्वारा अश्विनौ को मधु-विद्या का दान-कुछ विकसित अवस्था में प्राप्त होता है। महाभारत में आख्यान का प्रारम्भ च्यवन-सुकन्या के विवाह से है। ब्राह्मणग्रन्थों में प्राप्त च्यवन का अपमान, उनके द्वारा लोगों की नित्य क्रियाओं का स्तम्भन, सुकन्या से विवाह की शर्त स्वीकार कर लेने पर लोगों की स्तम्भन से मुक्ति तत्पश्चात सुकन्या से विवाह आदि विशेष बातें महाभारत में भी प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अश्विनौ का आगमन सुकन्या से उनकी प्रणय-याचना, सुकन्या द्वारा उसका प्रत्याख्यान, अश्विनौ द्वारा च्यवन को पुनर्यौवन प्रदान करना, आदि बातें भी समान हैं।

महाभारत में याचना ऋषि की ओर से नहीं वरन् सुकन्या की ओर से है। स्वयं सुकन्या च्यवन पर आसक्त होती है और कौतूहल वश उनकी देह पर लगे हुये वल्मीक को फोड़ते समय उनके नेत्र फोड़ देती है। अश्विनौ के आने पर सुकन्या द्वारा प्रस्ताव के प्रत्याख्यान के रूप में अश्विनौ च्यवन को पुनः युवावस्था प्रदान करते हैं। च्यवन के पुनर्यौवन प्राप्ति के बाद अश्विनौ ने अपने दोनों और च्यवन के मध्य किसी एक

---

२०१. वनपर्व १२३-१२४ अध्याय

को पतिरूप में चयन कर लेने को कहा । च्यवन और अश्विनौ एक सरोवर में स्नान करते हैं और निकलने पर सभी एक समान दिखाई पड़ते हैं । सुकन्या अपने पूर्ण विश्वास के कारण च्यवन को पहचान कर अङ्गीकार करती है ।

उपर्युक्त कथा को जै० ब्रा०[२०२] में कुछ मोड़ देकर उल्लिखित किया है कि अश्विनौ की चालाकी को स्वयं च्यवन जान लेते हैं और अपने को पहचानने के लिये सुकन्या को संकेत करते हैं ।

अश्विनौ का सोम प्राप्ति का वर्णन महाभारत में ब्राह्मण ग्रन्थों से नितान्त भिन्न है । महाभारत में च्यवन अपनी यौवन प्राप्ति के पश्चात् अश्विनौ को सोमपान का अधिकारी बनाने का वचन देते हैं तथा शर्याति के यज्ञ में स्वयं पौरोहित्य स्वीकार कर अश्विनौ को सोमरस-पान के लिये आमन्त्रित करते हैं । इन्द्र उनका विरोध कर उन पर भयंकर वज्र उठाते हैं । च्यवन अपनी शक्ति द्वारा इन्द्र का हाथ स्तम्भित कर उनके पीछे असुरों को प्रकट कर देते हैं । इन्द्र इससे भयभीत होकर अश्विनौ को सोमपान का अधिकारी बना देते हैं और च्यवन की शरण ग्रहण करते हैं ।

महाभारत के पश्चात पौराणिक साहित्य में[२०३] भी यह आख्यान प्राप्त होता है । श्रीमद्भागवत् पुराण में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । पौराणिक आख्यान बहुत कुछ महाभारत के आख्यान के समान है । पुराणों के अनुसार जिस सरोवर में च्यवन को

---

२०२. जै० ब्रा० ३, १२१-१२८.

२०३. श्रीमद भा० ९.३.२-२७.
श्रीमद देवी भा० : सप्तम स्कन्ध
वा० पु० ८६, २, २३.

स्नान कर यौवन प्राप्ति होती है, वह सिंहों द्वारा निर्मित है । यहाँ अश्विनौ द्वारा सुकन्या के प्रति कोई प्रस्ताव नहीं है और न तो च्यवन ऋषि पर आने के किसी प्रयोजन का भी उल्लेख है । इसके अतिरिक्त च्यवन अपनी पुनर्यौवन प्राप्ति के लिये स्वयं प्रार्थना करते हैं । शेष कथा महाभारत जैसी है । च्यवन की भांति ही अश्विनौ ने कलि नामक राजा को पुनर्यौवन प्रदान किया -- पुन: कलेरकृणतं युवद् वय:[204] । युवावस्था प्रदान करने के पश्चात् उसे एक पत्नी भी प्रदान की[205] ।

—

---

२०४. ऋ० १०. ३९. ८.

२०५. वही १. ११२. १५.

षष्ठम अध्याय

षष्ठम अध्याय

-0-

अन्य संहिताओं में अश्विनौ का स्वरूप

यजुर्वेद संहिता में अश्विनौ -

यजुर्वेद संहिता का सम्बन्ध घनिष्ठ रूप से यज्ञीय कर्मकाण्ड से है। ऋग्वेद संहिता की परम्परा से हटकर इस संहिता में ऋषि, देवता और छन्द का विधान अनिर्णीत और अव्यक्त है। संहिताओं की परम्परा में यह बात अद्भुत लगती है, क्योंकि जहां ऋषि, देवता और छन्द के सम्यक् ज्ञान के बिना मन्त्रार्थ का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, वहीं इस संहिता में कहीं भी ऋषि, देवता और छन्द का संकेत नहीं किया गया है। यहां मन्त्रों का स्वरूप भी अन्य संहिताओं से भिन्न है। किसी कर्मकाण्ड में विनियुक्त अंश को ही मन्त्र की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार इन मन्त्रों का स्वरूप विवेचन और उनसे सम्बन्धित विषयों का विवेचन अन्य संहिताओं से भिन्न है। यहां देवता मन्त्रों का विषय है, ऋषि उसका प्रयोक्ता है और छन्द मन्त्रों के नियामक तत्व हैं।

यजुर्वेदीय देवताओं के स्वरूप का यदि हम विवेचन करें तो वहां हमें उनके दो रूप मिलेंगे। प्रथमत: जिस वस्तु को हम देवत्व प्रदान कर रहे हैं उसका लौकिक रूप और द्वितीयत: लौकिक वस्तु में देवत्व का आधान किये जाने पर उसका स्वरूप। इस प्रकार यहां वे सभी वस्तुएं, जो यज्ञ के कर्मकाण्ड का किसी भी प्रकार संस्पर्श करती है, देवत्व की कोटि में ग्रहण की जाती हैं और उन लौकिक वस्तुओं में देवत्व का आधान करते समय वैदिक देवताओं के साथ उनका तादात्म्य भी उपस्थित किया जाता है। ऐसी ही स्थितियों में हम यहां अश्विनौ का प्राय: दर्शन करते हैं।

यजुर्वेद की मूल दो शाखायें शुक्ल और कृष्ण में, शुक्ल यजुर्वेद में वाजसनेयी (या माध्यन्दिन) और काण्व संहिताओं में विषय का

विशेष अन्तर नहीं है। इसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय और काठक एवं उनकी सहगामिनी मैत्रायणी और कठ संहिताओं में भी बहुत अन्तर नहीं है। अत: अश्विनौ के स्वरूप विवेचन में सभी संहिताओं का अलग-अलग विवरण बहुत आवश्यक प्रतीत नहीं होता - क्योंकि मन्त्रों के सन्दर्भ प्राय: सभी में समान है। जहां कोई विशिष्ट बात दृष्टिगत होती है, उसका सन्दर्भ मात्र ही पर्याप्त होगा। इसीलिये हम इन दोनों शाखाओं की समस्त संहिताओं को एक समष्टि मानकर ही यहां अश्विनौ का विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

शुक्ल यजुर्वेद के प्रथमाध्याय की दशम कण्डिका के अन्तर्गत हवि का ग्रहण करते हुये अध्वर्यु अपने बाहुओं का तादात्म्य अश्विनौ के साथ उपस्थित करता है। यह तादात्म्य उस हवि को तथा व्यक्ति को - दोनों को दैवीकरण की प्रक्रिया से युक्त करता है। हवि अग्नि के आस्वाद के लिए है, अत: वह सामान्य मनुष्य के हाथों से नहीं ग्रहण की जा सकती। इसलिये बाहुओं और हाथों को पहले दैवीकरण की प्रक्रिया से युक्त किया जाता है, तत्पश्चात् हवि का संस्पर्श किया जाता है। बाहु पार्श्व से संलग्न है और अधिक व्यापक हैं, इसलिये उनका तादात्म्य अश्विनौ के साथ जोड़ागया है और उनके साथ ही अपने कर्म से सबका भरण-पोषण करने वाले हाथों का तादात्म्य पूषन के साथ संयुक्त किया गया है -- 'अश्विनोबाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम्'[१] यह बात यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं के विभिन्न सन्दर्भों में आवृत की

---

१. वा० सं० १. १०.

गयी है।[2] काण्व संहिता के एक सन्दर्भ में अश्विनौ का एक सन्दर्भ दोनों कन्धों के साथ --`दोर्भ्यामश्विना अंसाभ्यां रुद्र रोराभ्यां`[3] जोड़ा गया है। यह सभी सम्बन्ध यज्ञ के उन सन्दर्भों के साथ जुड़े हुये हैं, जहां बाहुओं और कन्धों का स्पर्श किया जाता है। इस प्रकार मानवीय शरीर में विभिन्न देवताओं का विभिन्न अंगों में आधान कर शरीर के प्रत्येक अंग को देवीकरण की प्रक्रिया से युक्त किया जाता है और इस दैवीकरण की प्रक्रिया में अश्विनौ का प्रमुख स्थान है।

यज्ञ के विभिन्न रूपों के साथ अश्विनौ का सम्बन्ध है। इसीलिये अध्वर्यु सर्वप्रथम यज्ञ के केतु के रूप में अश्विनौ को उस केतु पर ही (या यज्ञ की पताका पर ही) स्थान प्रदान करता है और वे दोनों जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के समीप गमन करता है, वैसे ही अपने वेष से आवेष्टित होकर अध्वर्यु के समीप गमन करते हैं जो उन्हें बैठाता है।[4] उसका यह आसादन स्वयं अपने लिए ही नहीं वरन् अन्य देवताओं के लिये भी होता है। वे दोनों अध्वर्यु रूप में स्वयं प्रतिष्ठित होकर अग्नि आदि देवताओं को भी प्रतिष्ठित करते हैं।[5] इसीलिये अग्नि को `होता` और

---

२. का० सं० १.२.६ ; १.८.१ ; १.६.१ ; २.३.४ ; ५.६.१ ५
   ५.७.१ ; ६.१.१ ; ६.२.३ ; ६.८.१ ; १०.५.८ ; १२.३.१ ;
   २१.७.१ ; ३७.१.१.
   तै० सं० १.१.४.२, १.१.६-१ ; १.७.१०.३ ; २.६.८.६ ;
   ४.१.१.३ ; ४.१.३.१.
   क० कठ० सं० १.८.६. ; ८.१२.

३. का० सं० २७.३.२.

४. वही १५.१.१, १५.१.३.

५. वही १५.२.१.

और अश्विनौ को 'अध्वर्यु', रुद्र, अग्नि और बृहस्पति को 'रूप-वक्ता' सोम को 'पुरोगा' कहा गया है।[6]

अश्विनौ का मधु से सम्बन्ध यजुर्वेद की संहिताओं में भी जोड़ा गया है। इस मधु का दोहन करने वाली सरस्वती रूपा धेनु है और वहीं अश्विनौ के लिए मधु का दोहन कर सोम के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर एक ओर दुग्ध, मधु और सोम के त्रिक की स्थापना करते है, तो दूसरी ओर गो, सोम और सरस्वती--तीनों को एकीकृत--सभी का सम्बन्ध अश्विनौ के साथ जोड़ती है[7] और इसी मधु युक्त सोम के माध्यम से अश्विनौ, इन्द्र और सरस्वती के सम्बन्धों की कल्पना की गयी है।[8] यही नहीं वरन् इस परिप्लुत सोम को इन्द्र के लिये प्रदान करते हुये एक ओर इन्द्र और दोनों अश्विनौ का त्रिक उपस्थित होता है तो दूसरी ओर सरस्वती, भारती और इला का त्रिक इन देवताओं के साथ सम्बद्ध होता है।[9] इसलिये अश्विनौ, सरस्वती और इन्द्र इन तीनों से रक्षा की कामना सोम रस के अभिषव के साथ की जाती है।[10] इसी सरस्वती के साथ धीरे-धीरे उषासानक्ता का योग भी अश्विनौ के

---

६. का०स० ६.८.३५ ; ६.११.३६.

७. का०स० २२.६.११ ; २३.६.७.

८. सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु
- का० सं० २२.६.१२.

६. तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीळा
- वही २२. ६. ६.

१०. वही २२.६. ८.

की पूर्ति के लिये अलग-अलग देवताओं से अलग-अलग वस्तुओं की पूर्ति की कामना की जाती है । जैसे अश्विनौ से भेषज्य की, सरस्वती से मधु की, इन्द्र और त्वष्टा से यश और रूप की कामना की गयी है।[१५]

अश्विनौ के साथ सरस्वती भी भिषक् रूप धारण करती है । वाणी के द्वारा सरस्वती मधु का दोहन करती है और इन्द्र को प्रदान कर उसकी शक्ति का संवर्धन करती है । इळा, भारती,सरस्वती-- इन तीन देवियों का अश्विनौ के साथ सामंजस्य, जिससे ये भेषज्य प्रदान करने में समर्थ होते हैं । इस भेषज्य के साथ यजुर्वेद में सुरा, मेष,वपा, सोम, घृत, मधु, बर्हि, दुग्ध आदि वस्तुओं को समन्वित कर सुख समृद्धि के साथ इन्हें जोड़ा गया है।[१६] स्विष्टकृत में अश्विनौ के साथ अग्नि, इन्द्र,सरस्वती, सोम का आह्वान किया जाता है वहां इन्द्र और अश्विनौ को बहुत अधिक समीप लाकर उपस्थित किया गया है।[१७] इसी सन्दर्भ में धन आदि की समृद्धि के लिए वनस्पतियों के द्वारा अश्विनौ को, पीपल की समिधा द्वारा सरस्वती को और मधु के द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किये जाने की बात भी कही है । जिससे यह स्पष्ट है कि अश्विनौ का सम्बन्ध वनस्पतियों औषधियों से सर्वाधिक है और इसी से उनका भिषक् रूप

----

१५. अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रिय॰ रूपं॰ रूपं मधु सुते ।।
- का० सं० २२. ६. १०.

१६. वही २३. ४. ३-१०.

१७. वही २३. ६. १० ; ११.

निरन्तर विकसित होता चला गया है।[१८] इसीलिये कुछ सन्दर्भों में जहां अश्विनौ के यजन की बात आयी है वहीं वनस्पति के यजन का सम्बन्ध भी स्थापित किया गया है। यह वनस्पति जहां एक ओर औषधि रूप है वहीं अग्नि का वाचक भी हो सकता है।[१९] एक स्थान पर अश्विनौ की हवि के रूप में गो-धूम को ग्रहण किया गया है -- `गोधूमै: कुवलैर्भेषजं मधु`[२०] और इसी सन्दर्भ में अज (बकरा) को सरस्वती के प्रति समर्पित किया गया है -- `सरस्वतीमजो धूम्रो न`[२१] सरस्वती का अश्विनौ के साथ यह घनिष्ठ सम्बन्ध धीरे-धीरे उन्हें पति-पत्नी के रूप में प्रकट करता है। एक मन्त्र में वह सरस्वती इनको अपने गर्भ के अन्तर में धारण करती हुयी इनकी पालिका या पत्नी के रूप में कही गयी है।[२२] इस प्रकार यह सम्बन्ध एक रहस्यात्मक भाव का द्योतन करता है जिसे हम सीधे अभिधात्मक रूप में नहीं ग्रहण कर सकते। यहांसरस्वती वाग्देवी के रूप में है, जो मधुमय मन्त्रों के माध्यम से अश्विनौ को अपने अन्तर्गत धारण करती हुयी उनको हर प्रकार से समृद्ध करती है। अनेक सन्दर्भों में सरस्वती का,जो धेनु रूप है, जिसके माध्यम से वह सोम का दोहन करती है, वह अभिधात्मक न होकर एक विशिष्ट व्यंजना से परिपूर्ण है, जहां मन्त्रात्मिका वाणी का ही रूप प्रकट होता है,जो प्राण,अमृत,मधु, सोम सब का तादात्म्य उपस्थित कर सभी को अश्विनौ के साथ संयुक्त करती है।[२३] यह बात उन मन्त्रों के माध्यम से अधिक स्पष्ट होती है जहां अश्विनौ और सरस्वती के परस्पर

----

१८. वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्यां

- का० सं० २३.६.६

१९. वही २३.४.११.

२०. वही २३. ४. १.

२१. वही २३.४.१.

२२. वही २१. ६. १५.

२३. वही २२. ६. १.

मिथुन भाव की कल्पना और उसके माध्यम से अमृतमय ज्योति का स्फुरण प्रकट किया गया है --

> अङ्‌गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्‌गै समधात् सरस्वती ।
> इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानः ।।[२४]

इसीलिये "सरस्वती ने अपने अंगों को भिषक् रूप अश्विनौ के अंगों के साथ समाहित किया, जिससे इन्द्र के रूप और उनकी आयु और ज्योतिर्मय अमृत का आधान हुआ ।" यजुर्वेद के अश्विनौ और सरस्वती से सम्बन्धित जो भी सन्दर्भ हैं उन सब का सम्बन्ध कहीं न कहीं इन्द्र के साथ, मधु के साथ, सोम के साथ सम्बद्ध है ।[२५] यह सम्बन्ध जहाँ एक ओर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिकल्पना के साथ सम्बद्ध है वहीं मानवीय शरीर के साथ भी इसका सम्बन्ध उपस्थित किया गया है, इसलिये एक स्थान पर कहा गया है कि[२६] मन के तत्व के द्वारा मनीषिगण और ऊर्णं सूत्र के द्वारा कविगण जिस प्रकार यज्ञ तन्त्र की सृष्टि करते हैं वैसे ही अश्विनौ यज्ञ को, सवितृ और सरस्वती इन्द्र की और वरुण भैषज्य की सृष्टि करते हैं ।[२७] यहीं पर मानवीय सृष्टि के सम्बन्ध में कहा गया है कि रुद्र के मार्ग का अनुवर्तन करने वाले, भिषक् रूप अश्विनौ और सरस्वती आन्तरिक रूप में रूप संचार

----

२४. का० सं० २१. ६. १४.

२५. वही २१. २. १ ; २१. २. ४ ; २१. ६. ६ ; २२. ६. ३ ;
२३. ६. ३ ; २३. ६. ५ ; २३. ६. ६.

२६. वही २१. ६. १.

२७. वही ३८. ३. २६., वा० मा० सं० १६. ८०.

करते हैं जिससे अस्थि, मज्जा, मांस रक्त, त्वचा का आधान होता है।[28] इसी के साथ हम उस सन्दर्भ को भी जोड़ सकते हैं जहां सरस्वती को वीर्य का, इन्द्र को बल का और अश्विनौ को तेजस् का आधान करने वाला कहा गया है।[29] अपनी मधुमती वाणी के द्वारा सरस्वती अश्विनौ के साथ यज्ञ का सेवन करती है[30] जिससे तेजस्, चक्षु, शक्ति, धन आदि की प्राप्ति होती है।[31]

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में एक सन्दर्भ में तेजस का अश्विनौ के साथ, वीर्य का सरस्वती के साथ और बल का इन्द्र के साथ तादात्म्य उपस्थित किया गया है —अश्विनौ तेज: सारस्वतं वीर्यम् ऐन्द्रं बलम् । हर्ष और आनन्द के लिये तथा महानता की प्राप्ति के लिये या महत् सौभाग्य के लिये इन देवताओं के समीप गमन किया जाता है अथवा उनके स्वामित्व की कामना की जाती है।[32] इस संहिता में अश्विनौ का सम्बन्ध सोम, अग्नि और इन्द्र के साथ निरन्तर स्थापित किया गया है। सौत्रामणि यज्ञ में अश्विनौ, सरस्वती, सोम और इन्द्र का साथ-साथ आह्वान, एक साथ उनके लिये हवि का प्रदान-उनके पारस्परिक सम्बन्धों का द्योतक है।[33] इन्द्र के साथ उनके सम्बन्ध का द्योतन करते हुये एक सन्दर्भ

---

२८. का० सं० ३८. ३. २६.
    वा० मा० सं० १६. ८२.

२६. का० स० २१. १. ७. ; २२. ८. १.

३०. वही ७. ५. १.

३१. वही २३. ६. १.

३२. वा० मा० स० १६. ८.

३३. वही १०. ३१.

में कहा गया है कि शचियों के साथ इन्द्र द्वारा सुरापान किये जाने पर अश्विनौ ने इन्द्र की रक्षा सुन्दर मन्त्रों के माध्यम से उसी प्रकार की है, जैसे कोई पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है।[34] इस प्रकार अश्विनौ की आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन कर इन्द्र के ऊपर उनकी महत्ता का द्योतन किया गया है। इन्द्र सुरापान करने के कारण उनकी सहायता की अपेक्षा करते हैं और अश्विनौ अपनी मंत्रात्मक शक्ति की महत्ता के कारण इन्द्र को अपनी शक्ति से अभिभूत करते हैं। इस प्रकार जहाँ तक ऋ० में अश्विनौ को सोमपान का अधिकारी भी नहीं पाते और इन्द्र का वर्चस्व सर्व व्याप्त है, वहीं इस संहिता में हमें इन्द्र के स्थान पर अश्विनौ का वर्चस्व अधिक प्रतीत होता है और इन्द्र का वर्चस्व धीरे-धीरे कम होता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार अन्य सन्दर्भ में यह संकेत किया गया है कि अश्विनौ अपने भेषज के द्वारा और सरस्वती अपनी वाणी के द्वारा इन्द्र में शक्ति का आधान करते हैं।[35]

औषधियों में रस का अधिष्ठान और सोम में शक्ति की स्थिति-यजमान को इस योग्य बनाती है कि वह इनके माध्यम से स्वयं भी प्रेरणा प्राप्त करें तथा सरस्वती अश्विनौ और इन्द्र एवं अग्नि को भी हर्षित करें। ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहाँ सरस्वती, अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि की चर्चा सोमपान में साथ-साथ की गयी है।[36] सोम का अभिषव इसीलिये किया ही जाता है कि उससे इन देवताओं की शक्ति का संवर्धन किया जा सके।[37]

---

३४. वा० मा० सं० १०. ३४.

३५. वही १९. १२.

३६. वही १९. ३३.

३७. वही १९. ३४

अश्विनौ और सरस्वती का सम्बन्ध यहाँ पति-पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। एक मन्त्र में कहा गया है कि अश्विनौ की पत्नी के रूप में सरस्वती उनके लिए अपनी यौनि और गर्भ के अन्तर्गत सुकृत का भरण करती है।[३८]

अश्विनौ से दुग्ध, सरस्वती से भेषज और सोम से अमृत की कामना की गयी है।[३९] सौत्रामणि याग में इन्द्र, सरस्वती और अश्विनौ का आह्वान एक साथ किया जाता है और अग्नि समिन्धन के पश्चात् धेनु रूपा सरस्वती का दोहन सोम के रूप में होता है, जो इन्द्र के शुक्र की कल्पना से युक्त है,[४०] उसी मधु स्वरूप सोम के द्वारा इन्द्र के लिये अश्विनौ और सरस्वती पथ का निर्माण करते हैं।[४१] वह मधु भेषज रूप में होता है --जिसका पान कर अश्विनौ और सरस्वती भिषक् रूप धारण करते हैं।[४२] जिस प्रकार अश्विनौ के द्वारा समस्त दिशाओं के द्वार समन्वित है, जिस प्रकार इन्द्र रोदसी का दोहन करता है, वैसे ही सरस्वती समस्त कामनाओं का दोहन करती है अर्थात् समस्त कामनायें पूर्ण करने वाली है।[४३]

----

३८. वा० मा० सं० १९. ९४.

३९. वही १९. ९५.

४०. वही [illegible]. [illegible] २०.३३ ; २०. ५५.

४१. वही २०. ५६.

४२. वही २०. ५७.

४३. वही २०. ६०.

अश्विनौ के साथ जहाँ सरस्वती का सम्बन्ध है वहीं उषस् और रात्रि भी उनके साथ जोड़ी गयी हैं। अश्विनौ उषासानक्ता के साथ दिवस में उसी प्रकार संयुक्त रहते हैं जिस प्रकार इन्द्र अपनी समस्त इन्द्रियों के साथ सायंकाल में उनके साथ संगमन करता है और वे दोनों अर्थात् उषस् और रात्रि सुन्दर रूप वाली होकर सबको जानती हुयी सरस्वती के साथ समज्जित होती हैं।[४४] अश्विनौ और सरस्वती का यह सम्बन्ध रक्षक रूप में दिन और रात्रि में अलग-अलग रूप में है। अश्विनौ दिन में रक्षा करते हैं और सरस्वती रात्रि में।[४५] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती रात्रि स्वरूपा है और अश्विनौ दिवस के प्रतिरूप हैं।

मानवीय शक्तियों के आधान कर्ता के रूप में भी अश्विनौ-सरस्वती का मुख्य स्थान है। अपने तेज के द्वारा अश्विनौ चक्षु के रूप में है। प्राण के द्वारा सरस्वती वीर्य का आधान करती है। वाणी के द्वारा इन्द्र शक्ति प्रदान करता है तथा अश्विनौ और सरस्वती अपने बल से इन्द्र में इन्द्रियों का आधान करते हैं।[४६] इसी प्रकार अश्विनौ और सरस्वती मधुमय भेषज प्रदान करने वाले हैं। त्वष्टा और इन्द्र यश एवं श्री प्रदान करने वाले हैं तथा मधुमय सोम रूप प्रदान करता है।[४७]

अश्विनौ के साथ सरस्वती प्राय: धेनु रूपा कही गयी है, जो सोम का दोहन करती है, यह धेनु और कुछ नहीं, वरन् मंत्रात्मक

---

४४. 'संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या'
- वा० मा० सं० २०. ४१.

४५. वही २०. ६२.

४६. वही २०. ८०.

४७. वही २०. ६४.

वाणी का लक्षणात्मक रूप है, जिसके माध्यम से सोम रूपी अमृत का दोहन कर ऋषि तुष्टि और पुष्टि को प्राप्त करता है। अश्विनौ सोम को परिप्लुत करते हैं और सरस्वती उसका आधान करती है।[४८] इसी को अनेक सन्दर्भों में मधु का दोहन करने वाली के रूप में कहा गया है।[४९] अश्विनौ, इन्द्र और सरस्वती - ये सभी इस मधु रूपी आज्य का दोहन करने वाले तथा पान करने वाले कहे गये हैं, इसलिये पयस् रूप सोम और घृत रूप मधु से इनका यजन किया जाता है।[५०] सरस्वती के साथ ही भारती, इळा का त्रिक् अश्विनौ के साथ सम्बद्ध है। इला, भारती और सरस्वती, अश्विनौ के साथ सोमपान कर हर्षित होती हैं। इसीलिये वीर्य, बल और धन की प्राप्ति के लिये - इन सब का एक साथ आह्वान किया जाता है।[५१]

असुरों के विनाश के लिये देवता इन्द्र के बल का वर्धन करते हैं। इस बल के संवर्धन में सोम रस मुख्य आधार है और उस आधार को प्रदान करने वाले अश्विनौ और सरस्वती है। ये सोमरस का आहरण करते हैं तथा उसका परिस्रवण (दोहन) करते हैं और उसके पश्चात् इन्द्र के पान के लिए उसको प्रस्तुत करते हैं तथा इन्द्र उसका पान कर बल से संवर्धित होकर असुरों का हनन करते हैं। नमुचि जैसे राक्षसों के बल का

----

४८. वा० मा० सं० २०. ६६.

४९. वही २०. ६५ ; २०. ६६ ; २१. २३ ; २१. ३४.

५०. वही २१. २९-३२ ; ३५ ;

५१. वही २०. ५८ , २०. ६३.

२१. ३७ ; २१. ५४ ; २१. ५५.

भेदन या हनन करने वाले तथा वृत्र जैसे राक्षस का विनाश करने वाले इन्द्र बिना अश्विनौ और सरस्वती की सहायता के अपने कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकते, इसीलिये एक मंत्र में कहा गया है कि सरस्वती इन्द्र की कर्मों में रक्षा करने वाली है -- सरस्वतीन्द्रं कर्म स्वावत[५२] इसी प्रकार के अनेक सन्दर्भों में सरस्वती के साथ अश्विनौ का इन्द्र के बल संवर्धन में मुख्य योगदान है।[५३]

इन्द्र को सुन्दर रेतस वाला वृषभ, वीरता-पूर्ण कार्य करने वाला और त्वष्टा कहा गया है। किन्तु इसके रेतस बल और शक्ति का आधान करने वाले भिषक रूप अश्विनौ और सरस्वती है।[५४] इसलिये अश्विनौ और सरस्वती के भिषक रूप की चर्चा अनेक मन्त्रों में की गयी है।[५५] अश्विनौ का सम्बन्ध प्रातः सवन से है, इन्द्र का सम्बन्ध माध्यन्दिन सवन से और सरस्वती का सायं सवन से है।[५६] किन्तु मन्त्रों में जब इनका आह्वान होता है तो एक साथ होता है, इसलिये इन सबका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार गार्हपत्याग्नि में हविर्धान के समय सभी का एक साथ आह्वान किया जाता है।[५७]

----

५२. वा० मा० सं० २०.७६.

५३. वही २०.५६ ; २०.६७ ; २०.६८ ; २०.६६ ;
२०.७५ ; २१.३६.

५४. वही २१.३८.

५५. वही २१.३६ ; २१.४६. २१.५८.

५६. वही १६.२६.

५७. वही १६.८.

जहाँ तक अश्विनौ सरस्वती और इन्द्र के लिए बलि प्रदान करने की बात है, सभी के लिये अलग-अलग बलि का विधान किया गया है। अश्विनौ के लिये छाग की बलि, सरस्वती के लिये मेष की बलि, और इन्द्र के लिये वृषभ् की बलि दी जाती है[58]। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अश्विनौ का रंग काला है, जिसके कारण उन्हें छाग की बलि दी जाती है अथवा छाग के दो गल जिह्वा के युग्म के कारण उसका तादात्म्य अश्विनौ के साथ उपस्थित कर उसकी बलि का विधान किया जाता है। काठक सं०[59] में अश्विनौ के लिये धूम्र ललाम रंग वाले पशु के आलभन की बात कही गयी है, जिसकी बलि से वरुण-पाश से मुक्त कराया जाता है। यहाँ धूम्रललाम की कल्पना सम्भवत: वरुण के रंग के आधार पर की गयी है और जब वरुण पाश से मुक्त करता है तो जहाँ एक ओर अश्विनौ को प्रसन्न करने की बात है वहीं दूसरी ओर वरुण के साथ भी उस आलभन का सम्बन्ध होने से वरुण के प्रसन्नता की भी बात उठती है, जिसके कारण बलि पशु का रंग अश्विनौ के कारण धूम्र है और वरुण के कारण ललाम होने से धूम्रललाम की कल्पना की गयी है।

यहाँ धूम्र और ललाम दो रंगों का तादात्म्य अश्विनौ के जोड़े के साथ ही है जिनकी तुलना अनेक स्थानों पर उन पशुओं अथवा पक्षियों से की गयी है जो प्राय: युग्म में चलते हैं : जैसे -- हंस, गुरुड़, श्वान, छाग, करिण इत्यादि। ऋ० ५. ७८. १ से ५. ७८. ३ तक इनकी तुलना हंसों, हरिणों, गौवों के जोड़ों से की गयी है। यही युग्म

---

५८. वा० मा० सं०२१. ५६; २९. ६०.

५९. 'प्रमुञ्चत आश्विनं धूम्रललाममालभेत'
- काठ सं० १३. ६. १३.

भाव यज्ञ की प्रक्रिया में बलि सम्बन्धी सन्दर्भों में भी मूल रूप से कार्य करता है।

कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में भी अश्विनौ का सम्बन्ध प्राय: यज्ञीय कर्मकाण्डों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है और इन्हीं के माध्यम से हम उनके सम्बन्ध में कुछ जान पाते हैं। अश्विनौ को मिथुनीकरण की प्रक्रिया से युक्त माना जाता है जिसकी चर्चा इसके पूर्व युग्म देवताओं के सन्दर्भ में की जा चुकी है।[६०] तै० सं० में इसी मिथुन भाव से अश्विनौ को जोड़ते हुये यह कहा गया है कि जो यजमान पुष्टि की कामना वाला है वह यम रूप वाली गौ का आलभन करें, जिसमें अश्विनौ अपना भाग प्राप्त करने के लिये उसके समीप जाते हैं और वे उसे पुष्टि प्रदान करते हैं जिससे वह यजमान प्रजा और पशु के द्वारा संवर्धित होता है।[६१]

शुक्ल यजुर्वेद की संहिता के समान यहां भी अश्विनौ की भैषज्य की चर्चा और इसी सन्दर्भ में जब अनेक देवताओं के ग्रहों की चर्चा होती है तो उसमें वरुण सम्बन्धी ग्रह के माध्यम से यजन करते हुये जिस प्रकार यजमान वरुणपाश से मुक्ति की कामना करता है वैसे ही अश्विनौ को यजन कर भैषज्य की कामना की जाती है, क्योंकि उन्हें देवताओं के

----

६०. द्रष्टव्य - युग्म देवता और अश्विनौ, पृ० २०-४१

६१. तां मिथुने पश्यन्तस्यां न समराधयन्तावश्विनावब्रूतामावयोर्वा एषा मैतस्यां वदध्वामिति साऽश्विनोरेवा भवत्: पुष्टिकाम: स्यात्स एतामाश्विनीं यमीं वशामालभेताश्विनावेतस्वेनभागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन्पुष्टिं धत्त: पुष्यति प्रजया पशुभि: ।।
- तै० सं० २.१. ६.४.

प्राण रूप में कहा जाता है -- 'प्राणोऽसीत्याहाश्विनौ वै देवानाम्'[६२] यज्ञ में स्फ्या आदि का अश्विनौ की बाहुओं के द्वारा ग्रहण और अश्विनौ सम्बन्धी द्विकपालों का विधान शुक्ल यजुर्वेद की संहिताओं के समान यहाँ भी है।[६३] किन्तु अश्विनौ को नक्षत्रों के साथ सम्बन्धित कर तै० सं० में प्रथम बार उनका तादात्म्य अश्विनी नक्षत्र के साथ सम्बद्ध किया गया है और उन्हीं के साथ शतभिषा के साथ इन्द्र, प्रोष्ठपदा के साथ अज एकपात्, रेवती के साथ पूषन् और भरणी के साथ यमदेवता का तादात्म्य उपस्थित किया गया है।[६४]

अश्विनौ का यज्ञ में सोमपान का अधिकारी न होना ऋग्वेद में संकेतित है और उसी को तै० सं०[६५] में स्पष्ट रूप देते हुये यह कहा गया है कि एकबार देवताओं ने यज्ञ के शीर्ष का छेदन किया और अश्विनौ से यह कहा कि 'तुम दोनों भिषक् हो, इसीलिये इस यज्ञ के शिर को पुन: आरोपित कर दो'। तब उन दोनों ने उस कार्य के बदले देवताओं से यज्ञ में सोमपान सम्बन्धी ग्रह को प्रदान करने के लिये कहा। देवताओं ने पहले तो स्वीकार कर लिया किन्तु जब उन्होंने यज्ञ के सिर का आरोपण कर दिया तो उनसे कहा कि तुम दोनों ने यह जो मनुष्य रूप में यज्ञ के सिर

----

६२. तै० सं० २.३.११.२.

६३. वही २.६.४.१ ; ८.६ ; ६.३.६ ; ४.१.१.३ ; ४.१.३.१ ; ६.२.१०.१ ; ३.६.३ ; ४.४.१.

६४. वही ४.४.१०.३.

६५. वही ६.४.६.१ ; २.

का आरोपण किया है इससे अपवित्र हो गये हो और सोमपान के अधिकारी नहीं हो ; क्योंकि ब्राह्मण के द्वारा भैषज्य कर्म विहित नहीं है । यह अपवित्र और अमेध्य कर्म है । इसलिए यज्ञ में तुम्हें सोमपान का अधिकारी नहीं बनाया जाएगा । किन्तु उनके सोमपान के लिए बहिष्पवमान की व्यवस्था की गयी । इसीलिए यज्ञ में बहिष्पवमान के द्वारा अश्विनौ को तृप्त किया जाता है और उसी के द्वारा यजमान भैषज्य की प्राप्त करता है । इस प्रकार तै० सं० अश्विनौ के स्वरूप को कुछ नये रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है ।

यजुर्वेद की कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा की काठक शाखा में अश्विनौ सम्बन्धी मंत्रों की संख्या बहुत है जिनका विनियोग विभिन्न कर्मों में किया जाता है ; किन्तु इन मन्त्रों में अश्विनौ और पूषन् से सम्बन्धित 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्'[६६] मत्रांश से युक्त मन्त्रों की संख्या सबसे अधिक है । जहां अश्विनौ के बाहुओं की चर्चा बार-बार की गयी है तथा जो अंश यजुर्वेद की समस्त संहिताओं में समान रूप से विकीर्ण है, जिसकी विशिष्ट चर्चा करना यहां पुनरावृत्ति होगी । इसी प्रकार अश्विनौ को अनेक स्थानों पर अध्वर्यु के रूप में भी[६७] उपस्थित किया गया है जिसकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है । इस

----

६६. काठ सं० - १.२.५ ; १.४.१७ ; १.५.१६ ; १.८.२४ ; १.६.२५ ; २.६.४७ ; २.११.६० ; २.१२.६२; ३.३.१२ ; ३.५.२१ ; ३.१०.४० ; ६.६.३६-३७; १४.२.१३ ; १५.२.२ ; १६.१.१ ; १६.३.२१-२२ ; २२.१५.६१ ; ३८.३.२७-२६ ; ३५ ; ३८.४.४५ ; ४०.६.४० ; ४०.१०.१५ ; ४०.६.६६.

६७. वही १७.१.१ ; १७.१.२ ; ३ ; ४, ६ ; ७.८.६.

सरणि में उनके भिषक् रूप की भी चर्चा है जिसमें एक आख्यायिका के माध्यम से उन्हें इन्द्र के भिषक रूप में भी उपस्थित किया गया है। बहुत अधिक सोमपान करने के कारण इन्द्र को अनेक प्रकार के रोगों ने ग्रहण कर लिया। जिसके भैषज्य के रूप में सौत्रामणि यज्ञ के द्वारा अश्विनौ ने इन्द्र को सोमपान जनित रोगों से मुक्त कराया और इस प्रकार इन्द्र के वैद्य रूप में प्रतिष्ठित हुये। इसी प्रकार राजसूय यज्ञ में वाणी के माध्यम से उन्होंने देवताओं को भैषज्य प्रदान किया जहां उन्हें वाग्देवी सरस्वती के साथ समन्वित किया गया।[६८]

अश्विनौ सम्बन्धी सबसे महत्वपूर्ण चर्चा काठक संहिता में उस सन्दर्भ में की गयी है जहां अग्नि, विष्णु, सोम, सवितृ, पूषन्, मरुद्गण, बृहस्पति, मित्र, वरुण, वसुगण, रुद्र इत्यादि देवताओं के साथ अश्विनौ को अक्षरों के साथ जोड़ा गया है। एक से लेकर १५ अक्षरों की वाणी के द्वारा अनेक देवता वस्तुओं या उपादानों पर विजय प्राप्त करते हैं या अपना आधिपत्य प्रस्तुत करते हैं। जैसे अग्नि एकाक्षर के माध्यम से वाणी पर विजय प्राप्त करता है इसी प्रकार अश्विनौ दो अक्षरों के द्वारा प्राण और अपान को जीतते हैं। जहां प्राण और अपान के साथ अश्विनौ का तादात्म्य उपस्थित करना उनके स्वरूप को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में उपस्थित करना है जिसका सातत्य हमें अथर्ववेद में तथा अवान्तरकालीन वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। इसी सन्दर्भ में अग्नि को एकाक्षर द्वारा पृथिवी विजित करते हुए और अश्विनौ को दो अक्षरों के द्वारा प्रभा

---

६८. काठ सं० १२. १०. २६ ; ३०.

या अन्तरिक्ष को जीतते हुये और तीन अक्षरों के द्वारा विष्णु द्वारा स्वर्गलोक की विजय की चर्चा की गयी है। इसी को यदि हम कहें कि एकाक्षर 'ओम्' के द्वारा अग्नि वाणी पर विजय प्राप्त करता है और द्वयाक्षर 'स्वाहा' शब्द के द्वारा अश्विनौ प्राण और अपान को जीतते हैं अथवा यह कहें कि 'एकाक्षराव्याहृति भू:' के द्वारा अग्नि पृथिवी को जीतता है 'द्वयक्षराव्याहृति भुव:' के द्वारा अश्विनौ अन्तरिक्ष को जीतते हैं, जिसे हम प्राण लोक कहते हैं और 'त्र्यक्षरा व्याहृति स्व:' (सुवर्) के द्वारा विष्णु स्वर्ग लोक पर विजय प्राप्त करते हैं, तो अधिक उपयुक्त होगा। इसी क्रम में ही अन्य देवताओं द्वारा[६९] विजित अन्य उपादानों की भी व्याख्या की जा सकती है। अन्यत्र भी सोम के संयोग में उपांशु मंत्र द्वारा अश्विनौ को सोम रस प्रदान किये जाते हुये कहा है। जहाँ मंत्र का उपांशु रूप प्राण रूप कहा गया है[७०] और प्राण का सम्बन्ध अश्विनौ के साथ उपस्थित किया गया है।

---

६९. अग्निरेकाक्षरामश्विनौ द्वयक्षरां विष्णुस्त्र्यक्षरां - - - -
अग्निरेकाक्षरया वाचमुदजयदश्विनौ द्वयक्षरय: प्राणापानौ
उदजयतां विष्णुस्त्र्यक्षरया त्रीनिमाल्लोकानुदजयत् - - - -
अग्निरेकाक्षरया मामुदजयदिमां पृथिवीमश्विनौ द्वयक्षरया
प्रमामन्तरिक्षं विष्णुस्त्र्यक्षरया प्रतिमां स्वर्ग लोकम्

- काठ० सं० १४. ४. २४.

- तै० सं० १. ७. ११. १.

७०. काठ० सं० २७. १. ५.

अश्विनौ असोमपायी के रूप में प्रसिद्ध हैं,क्योंकि प्रथमत: उन्हें यज्ञ में सोमपान का अधिकार नहीं दिया गया है जिससे उन्होंने यज्ञ में सोमपान का अधिकार ग्रहण करने के लिए प्रयास किया । देवताओं ने उन्हें यज्ञ के बाहर ही सोमपान करवाया जिससे बहिष्पवमान सृष्टि की सार्थकता सिद्ध की गयी । इसीलिए जिससे विरोध किया जाता है उसको परिबाधित करने के लिये बहिष्पवमान इष्टि का विधान किया जाता है और जो बहिष्पवमान यज्ञ करता है वह अश्विनौ के द्वारा भेषज्य को प्राप्त कर दीर्घायु होता है -- एतवद्वै भेषजं तदस्मै करोति जीवति सर्वमायुरेति न पुरायुष: प्रमीयते ।[७१]

इस प्रकार काठक संहिता जहां एक ओर अन्य संहिताओं का अनुसरण करती है वहीं कुछ नये तथ्यों को भी जोड़ती है ।

कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता में भी वा० मा० सं० और तै० सं० के समान अश्विनौ की बाहुओं[७२] उनके भिषक् रूप[७३] और भेषज्य का[७४] इन्द्र, सरस्वती आदि के साथ उनके सम्बन्धों का,[७५] यज्ञ में उनके सोमपान के अधिकार[७६] एवं प्रात: सवन के समय आगमन का[७७] और

---

७१. काठ० सं० २७. ४. १३.

७२. मै० सं० ३. ६. ६ , ३.४.३.

७३. वही ३. ११. ५.

७४. वही ३. ११. २ ; ३.

७५. वही ३. ११. २ ; ६.

७६. वही ३. ११. ४ ; ६ ; ४. ६. १ ; २.

७७. वही ४. १२. ६.

इन्द्र द्वारा उनके सोमपान के अधिकारी बनाये जाने की विशिष्ट चर्चा[७८] की गई है ।

कृष्ण यजुर्वेद की अन्य शाखा कपिष्ठल कठ संहिता है जो अपूर्णरूप में प्राप्त होती है, जिसका संपादन डा० रघुवीर द्वारा किया गया है । इस संहिता में बहुत कम ऐसे अंश हैं जो पूर्ण रूप में प्राप्त होते हैं । जो प्राप्त भी है उनमें प्राय: काठक या अन्य संहिताओं का पुनरावर्तन ही अधिक है । अश्विनौ सम्बन्धी बहुत कम चर्चायें इसमें हैं । पूर्व संहिताओं के अनुरूप यहां भी अश्विनो की अध्वर्यू,[७९] देवताओं का भिषक,[८०] असौमपायी,[८१] आदि रूप में वर्णित किया गया है । एक सन्दर्भ में पुरुष के अन्तर्गत विद्यमान विभिन्न इन्द्रियों को विभिन्न देवताओं के साथ जोड़ा गया है जिनमें श्रौत्र[८२] और आत्मा का तादात्म्य अश्विनौ के साथ उपस्थित किया गया है ।

अथर्ववेद में अश्विनौ

ऋग्वेद और अथर्ववेद सम्बन्धी मन्त्रों में कुछ मौलिक अन्तर है, जो उनके विषय-रूप देवताओं के स्वरूप पर भी प्रभाव डालता है ।

---

७८. मै० सं० ३. ११. ४.

७९. क० कठ० २५. १० ; ८.११ ; ४४.५.

८०. अश्विना देवानां भिषजौ

- वही ३१. १२.

८१. वही ४२. ४.

८२. "श्रौत्रं वात्मा वाश्विन:"

- वही ४२. ५.

जहाँ ऋग्वेद के मन्त्र यज्ञीय कर्मकाण्ड के साथ गहरे रूप में जुड़े हुये हैं, जिनके साथ उनके विषय-रूप देवताओं का स्वरूप भी यज्ञ के परिप्रेक्ष्य में उभरता है, वहीं अथर्ववेद के मन्त्रों का सम्बन्ध मानवीय-जीवन के लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक सिद्धियों के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ है और इसी कारण अथर्ववेदीय मन्त्रों के विषय से सम्बन्धित देवताओं का बाह्य स्वरूप और आन्तरिक स्वरूप प्राय: दो अलग-अलग धरातलों पर उभरता हुआ प्रतीत होता है। इसीलिये यहाँ रहस्यात्मकता और भी बढ़ जाती है। यह रहस्यात्मकता उस दृष्टि में महत्वपूर्ण बन जाती है जब मन्त्रों का अभिधात्मक अर्थ कुछ और है और उनका प्रयोगात्मक स्वरूप कुछ और। इससे नयी-नयी व्यंजनाओं की सृष्टि होती है जिसे हम वैदिक साहित्य के ग्रन्थों में प्रायश: उद्धृत 'परोक्ष प्रिया वै देवा:'[८३] के माध्यम से दृष्टिपात करने से समझने में अधिक सफल हो सकते हैं। उस दृष्टि के बिना मन्त्रों की सम्पूर्णता को समझना अत्यन्त दुरूह कार्य है। इसी स्थिति में हमें कौत्स की वह बात सार्थक प्रतीत होती है जहाँ उसने यह कहा है कि -- 'निरर्थका हि मन्त्रा:'[८४]। यद्यपि यास्क ने इसका प्रतिवाद करते हुये -- 'स्थाणुरयं

---

८३. तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै तमिन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवा: परोक्षप्रिया इव हि देवा:।

- ऐ० उ० १. ३. १४.
  श० ब्रा० ६.१.१.२ ; १४-६-११-२
  बृ० उ० ४.२.२.
  ऐ० आ० २. ४.३.

८४. निरु० १. १५.

भारहार: किलाभूत[८५] - - - - - इत्यादि, अर्थात् मन्त्रार्थ का समझना भी आवश्यक है। किन्तु अथर्ववेद के मन्त्रों पर दृष्टिपात करने से और उनके प्रयोगिक सन्दर्भों से कौत्स की बात ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है, फिर भी जहाँ तक विवेचन का सम्बन्ध है या मन्त्रों के विश्लेषण का सम्बन्ध है, हम बिना मन्त्रों के अर्थ को समझे हुये आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिये मन्त्रार्थ की दृष्टि से और प्रयोग की दृष्टि से भी हमें मन्त्र साहित्य का विश्लेषण एवं विवेचन करना होगा। अत: इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर ही हम अथर्ववेद के अन्तर्गत अश्विनी की चर्चा करने जा रहे हैं —

अथर्ववेद में कुछ ऐसे भी मन्त्र हैं जो सीधे ऋग्वेद की परम्परा से सम्बद्ध हैं। किन्तु अधिकांश मन्त्रों का सम्बन्ध अथर्ववेद की अपनी शाखाओं से है। ऐसे मन्त्रों में हमें अश्विनी के परवर्ती रूप के दर्शन होंगे। अथर्ववेद तृतीय काण्ड में कुछ सूक्तों में अश्विनी की चर्चा हुयी है। एक सन्दर्भ में यह कहा गया है कि मित्रावरुण, मरुद्गण तथा विश्वेदेव अश्विनी का आह्वान करें।[८६] यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ ऋग्वेदीय परम्परा में प्राय: अश्विनी से यह प्रार्थना की गयी है कि वे मधुपान के लिये अन्य देवताओं का आह्वान करें, वहीं अथर्ववेद में अश्विनी

---

८५. स्थाणुरयं भारहार: किलाभूदधीत्यवेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥
- निरु० १.१८.

८६. अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वेदेवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु
- अथर्व० ३.४.४.

के आह्वान के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण ऋग्वेदीय देवताओं से प्रार्थना की गयी है। यह बात अश्विनों के विकासात्मक महत्त्व को समझने में सहायक है। तृतीय काण्ड का ही एक अन्य मन्त्र उनकी प्रात:कालीन स्तुति से सम्बन्धित है जिसमें इन्द्र इत्यादि अन्य देवों का भी आह्वान किया गया है।[८७] जिसमें ऋग्वेद के ही अनेक मन्त्रों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। किन्तु इसी काण्ड के अन्य मन्त्र में अश्विनों के वर्चस् की बात अग्नि और सूर्य के वर्चस् के साथ जोड़ी गयी है और इन्हें 'पुष्करस्रजा'[८८] कहा गया है। यहाँ उनके वर्चस् की बात ध्यान देने योग्य है। ऋग्वेद में प्राय: अश्विनों के सौम्य स्वरूप की ही चर्चा की गयी है और कहीं पर भी उन्हें अग्नि और सूर्य के समानान्तर नहीं उपस्थित किया गया। किन्तु यहाँ अथर्ववेदीय सन्दर्भों में अग्नि और सूर्य के वर्चस् का मानवीय जीवन में आधान करने वाले अश्विनौ हैं जिनसे स्तुति कर्ता असीम तेज प्रदान करने की प्रार्थना करता है।[८९]

अथर्ववेद दुरित, दुर्भाग्य, पाप-ताप-शाप, निर्ऋति आदि के

---

८७. 'प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे - - - - - - अथर्व० ३.१६.१.

८८. अथर्व० ३. २२. ४.

८९. यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुते: ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिन: ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ।।
- अथर्व० ३. २२. ४.
वही ६.६९.३ ; ९.१.११ ; २०.१३९.२.

के निवारण से बहुत ही घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध है । अतः इनके निवारणार्थ विभिन्न देवताओं से प्रार्थना की जाती है । अश्विनौ भी इन देवताओं के साथ निर्ऋति आदि के निवारण में सहायक माने गये हैं ।[६०] इसी प्रकार उन्हें गर्भ के धारण कराने वाले देवताओं में भी स्थान दिया गया है,[६१] जिसे हम ऋ० के पंचम मण्डल के एक विशिष्ट सूक्त के साथ सम्बद्ध मान सकते हैं ।[६२]

अथर्ववेद में अश्विनौ का 'शुभस्पती' अभिधान प्रायः मानवीय जीवन के शुभसंकल्पों और शुभ-कर्मों के साथ जुड़ा हुआ है । जिन-जिन कर्मों के माध्यम से शुभ या कल्याण की कामना की जाती है उन-उन कर्मों में शुभस्पती अश्विनौ का आह्वान किया जाता है । अथर्ववेद के षष्ठ-काण्ड में उषासानक्ता और अपां नपात् के साथ समस्त कल्याण की भावना से अश्विनौ का आह्वान किया गया है ।[६३] यह शुभ की कामना गर्भादि के धारण तक ही सीमित नहीं ; वरन् व्रीहि, धान्यादि के भाण्डार को सुरक्षित रखने तथा चूहा, टिड्डी, शलभ, कीट, घुणादि से अन्न को

---

६०. आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ।
- अथर्व० ५. ३. ६.

६१. 'गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ।'
- वही ५. २५.३.

६२. ऋ० ५. ७८. ५-६.

६३. अथर्व० ६.३.३ ; ६.४.३.

बचाने के लिए भी प्रार्थनाएं की जाती हैं, जिन प्रार्थनाओं में अश्विनौ रक्षक के रूप में कार्य करने वाले माने गये हैं।[६४] जहां सुरापान आदि के कारण दोष उत्पन्न होते हैं, ऐसे स्थानों में मधुपायी अश्विनौ से कल्याण की कामना करते हुये वर्चस् प्राप्ति की प्रार्थना की जाती है। उनका मधु युक्त होना ऋग्वेद में 'माध्वी' के रूप में उपस्थित किया गया है और उसी की परम्परा में अथर्ववेद में उन्हें अनेक सन्दर्भों में मधु का प्रदाता अथवा मधुमय वातावरण से सम्पृक्त माना गया है।[६५]

अथर्ववेद में सौमनस्य की कामना करने वाले अनेक सूक्त हैं। जब कभी परिवार में या भाइयों में सौमनस्य की कमी होती है, वहां अश्विनौ की प्रार्थना के माध्यम से सौमनस्य के वातावरण की सृष्टि की जाती है। यह सम्भवतः इसलिए है कि अश्विनौ दो सहोदर भाई के रूप में पूरे देवशास्त्र में उपस्थित किये गये हैं और उनमें कहीं भी सौमनस्य का अभाव नहीं देखा जा सकता है। इसलिये उन देवताओं की प्रार्थनाओं के माध्यम से लौकिक जीवन में पारिवारिक एवं बान्धवीय सौमनस्य को स्थापित करने के लिए अश्विनौ से प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद के एक सूक्त में ऋषि का कथन है कि जिस प्रकार से 'हे अश्विनौ! ये दोनों बाहु एक साथ संवर्तित होते हैं, इसी प्रकार से तुम्हारा मन मेरी ओर सम्यक् प्रकार से प्रवर्तित होवे। जैसे कोई तृण एक दूसरे में गूंथा जाता है, वैसे ही तुम्हारा मन मुझमें गुंथ जाये।[६६]

---

६४. अथर्व० ६.५०.१ ; २. विशेष द्र० कौ० सू० ७. २.

६५. वही ६.६६.१ ; २.

६६. वही ६. १०२. १;२

पशु संवर्धन में भी अश्विनौ की कृपा की आकांक्षा की गयी है । अथर्ववेद के षष्ठ काण्ड में बछड़ों के कानों पर चिन्ह का अंकन अथवा कर्ण छेदन[97] तथा गायों के शरीर पर गर्म लोहे से चिन्ह बनाना[98] और उन चिन्हों के साथ अश्विनौ का तादात्म्य उपस्थित करना, अश्विनौ के देवशास्त्र के साथ उतना सम्पृक्त नहीं है, जितना उनके नाम में अश्व शब्द के साथ निहित होने से है । लक्षणया शब्द साम्य के माध्यम से ही पशु-संवर्धन के साथ अश्विनौ को जोड़ा गया है। यह परम्परा ऋग्वेद से ही ग्रहण की गयी है । ऋ० अष्टम मण्डल में एक मन्त्र अश्विनौं को वत्स की रक्षा हेतु संकलित है[99] जिसे अथर्ववेद में वत्स की रक्षा में विनियुक्त किया जाता है[100]। इस पशु धान की रक्षा के साथ कृषि रक्षा भी सम्बद्ध है इसलिए अथर्व० के दशम काण्ड में कृषिरक्षा हेतु अश्विनौ की प्रार्थना करते हुए क्षेत्र के चारों ओर मणि बन्धन किया जाता है और इस प्रकार अश्विनौ को कृषि के साथ संलग्न किया जाता है[101]। इसी सन्दर्भ में हम ऐसे मन्त्रों को भी ले सकते हैं जिनमें गौवों के संवर्धन के लिए अश्विनौ से प्रार्थना की गयी है । अथर्ववेद के एक मन्त्र में `गौ` को हिंकार करती हुयी वसुपत्नी के रूप में कहा गया है जो वत्स की कामना करती हुयी प्रार्थना करने वाले के सौभाग्य के संवर्धन हेतु अघ्न्या

----

९७. अथर्व० ६. १४१. २.

९८. वही ६. १४१. ३.

९९. ऋ० ८. ९. १.

१००. अथर्व० २०. १३९. १.

१०१ वही १०. ६. १२.

होकर अश्विनौ के द्वारा संवर्धित होती है क्योंकि उसके बछड़े के उत्पन्न होने में अश्विनौ का योगदान रहता है। इससे यह भी अर्थ निकाला जा सकता है कि अश्विनौ की स्तुति के माध्यम से लोग गौवों की समृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।[१०२]

गौवों और अश्विनौ का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिये अमति को दूर करने में गौवों के साथ अश्विनौ को भी सम्मिलित किया गया है। गौ और अश्विनौ के माध्यम से दुरित, दुर्मति, दुर्भाग्य दूर किये जाते हैं।[१०३] इसीलिये गौ के दूध के साथ सोम का पान और वाणी[१०४] के साथ अश्विनौ का आह्वान यज्ञ में समान समझा जाता है।

अश्विनौ का सम्बन्ध मधु के साथ प्रारम्भिक काल से ही चला आ रहा है। ऋग्वेद में उन्हें बार-बार माध्वी कहा गया है। अथर्ववेद इस परम्परा की शृंखला का निरन्तर परिबृंहण करता हुआ प्रतीत होता है। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में सोम रस के पान के लिये अश्विनौ का आह्वान[१०५] और मधुपान हेतु दूसरे देवताओं को ले आने की स्तुति अनेक सन्दर्भों में की गयी है। यज्ञ में अश्विनौ का आह्वान मधुपान के लिये

---

१०२. हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ।।
- अथर्व० ७. ७३. ८.

१०३ वही २०. २१. ४.

१०४. वही २०. १४२. ४.

१०५. वही २०. १४१. ३ ; ४.

किया जाता है जिस मधु को समस्त देवतागण और गन्धर्व इत्यादि स्वाहाकार के साथ यज्ञ में ग्रहण करते हैं।[१०६] यह मधु उषाकाल में प्रदान किया जाता है, जिसको सृष्टि के धारक रूप में अश्विनौ आकाश के प्रकाशमान लोक में ग्रहण करते हैं। `तप्तंघर्मं पिबतं रोचने दिव:।`[१०७] अध्वर्यु स्वयं यह कामना करता है कि यह सोम रस अश्विनौ को व्याप्त करे तथा मधु और दुग्ध का सम्मिश्रण उषस् रूपी गो के पयस् रूप में अश्विनौ को प्राप्त हो --`तप्तो वा घर्मो नक्षतु स्वहोता - - - -।`[१०८] यहाँ `नक्षतु` का प्रयोग अश्विनौ के साथ तादात्म्य उपस्थित करने के लिए किया गया है, क्योंकि अश्विनौ में `अश्` धातु और नक्षतु में नक्ष् धातु - दोनों धातुएं व्याप्त होने अर्थ में प्रयुक्त है इसलिये सर्वव्यापी अश्विनौ के साथ सोम को व्यापक बनाने के लिये अश्विनौ को `नक्षतु` कहकर प्रार्थना की गयी है।

मधु का सम्बन्ध आनन्द और वर्चस् से है। इसीलिये आनन्द और वर्चस् की प्राप्ति के लिए अश्विनौ से मधुपान की प्रार्थना की जाती है जिससे वे प्रसन्न होकर स्तोता को आनन्द और वर्चस् प्रदान करें। एक मन्त्र में कहा गया है कि जिस प्रकार मधु में मधु को बार-बार उड़ेला जाता है, वैसे ही अश्विनौ स्तोता की आत्मा में वर्चस् का आधान करें[१०९] और उस वर्चस् के साथ-साथ बल और ओजस् को भी प्रदान करें।[११०] यही

----

१०६. अथर्व० ७.७३.१ ; ७.७३.३.
१०७. वही ७.७३.४.
१०८. वही ७.७३.५.
१०९. वही ९.१.१६.
११०. वही ९.१.१७.

नहीं वरन् जिस प्रकार उन्हें मधु से संसिक्त किया जाता है वैसे ही वे हमारी वाणी को वर्चस् से संसिक्त करें।[१११] इसी मधु से युक्त होने के कारण अश्विनौ को सोम देवता के साथ संयुक्त किया गया है।[११२] एक मन्त्र में तो यह कहा गया है कि सोम वधू रूप में है और अश्विनौ उसके वर रूप में -- सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा[११३] इसी सन्दर्भ को सूर्या विवाह के साथ भी जोड़ा गया है। एक मंत्र में यह कहा गया है कि बृहस्पति ने सूर्या के शीर्ष पर केशों को प्रकल्पित किया और अश्विनौ को उसके पति रूप में उपस्थित किया।[११४] एक अन्य सन्दर्भ में यह कहा गया है कि सवितृ से उत्पन्न सूर्या का अश्विनौ ने भार्या के रूप में वहन किया।[११५] इसी से सम्बन्धित दूसरा सन्दर्भ भी है जहां यह कहा गया है कि अश्विनौ ने अपने तीन पहियों वाले रथ से सूर्या का वहन किया[११६] और दूसरे सन्दर्भ में यह कहा गया है कि अश्विनौ सूर्या के वर रूप में थे और अग्नि पुरोहित रूप में।[११७] यद्यपि यह सभी बातें बहुत ही रहस्यात्मक हैं और आथर्वण प्रयोगों की दृष्टि से मन्त्रों में निहित शाब्दिक अर्थों का कोई तारतम्य नहीं है, फिर भी जहां तक देवशास्त्रीय परिचर्या का प्रश्न है हम इन्हीं मन्त्रों के आधार पर ही अपना निष्कर्ष निकाल सकते हैं। जहां यह कहा जाता है कि भग देवता तुम्हारा नयन करें और अश्विनौ तुम्हारा हाथ

----

१११. अथर्व० ६. १. १६.

११२. वही २०. १३६. ४.

११३. वही १४. १. ६.

११४. वही १४. १. ५५.

११५. वही ६. ८२. २.

११६. वही १४. १. १४.

११७. वही १४. १. ८.

ग्रहण कर रथ से तुम्हें ले जाये[११८] वहाँ सन्दर्भ तो सूर्या के होते हैं, किन्तु प्रयोग की दृष्टि से ऐसे मन्त्रों का विनियोग वैवाहिक कर्म में होता है। यहीं ऐसे ही मन्त्रों का विनियोग विवाह से भिन्न अन्य कर्मों में होता है तो वहाँ अर्थ का कोई महत्त्व नहीं रह जाता और न ही देव-शास्त्रीय दृष्टि कार्य करती है। अश्विनौ का सम्बन्ध अन्य देवताओं से भी ऋग्वैदिक परम्परा में प्रस्तुत किया गया है। एक ओर तो अग्नि, इन्द्र जैसे प्रमुख देवताओं के साथ उन्हें उपस्थित किया गया है[११९] और दूसरी ओर गन्धर्व, अप्सरस, ब्रह्मणस्पति, अर्यमन् आदि लघु देवताओं के साथ भी उनका सम्बन्ध है[१२०]। अघस्, दुरित, पाप आदि के निवारण में तथा शान्ति कर्मों में अथर्ववेद के जिन मन्त्रों की शृंखला का विनियोग किया जाता है उनमें बृहत् और लघु दोनों प्रकार के देवताओं का आह्वान किया जाता है और ऐसी स्थिति में अश्विनौ प्राय: सभी के साथ विद्यमान रहते हैं।

अथर्ववेद में देवपत्नियों को अग्नायि और अश्विनी कहा गया है। इससे अश्विनौ का देव-पत्नियों के साथ सम्बन्ध अथवा उनकी पत्नी का संकेत प्राप्त होता है। अथर्व० का यह अंश, जिसमें देवपत्नियाँ 'ग्ना:' कही गयी हैं और उनके साथ इन्द्राणी, अग्नायी, अश्विनी, रोदसी, वरुणानी का सम्बन्ध है, जो ऋतुओं की कर्त्री के रूप में उपस्थित है, हमें एक ऐसे धरातल पर ले जाता है जहाँ अश्विनौ को हम अग्नि,

---

११८. अथर्व० १४. १. २०.

११९. वही ६. १२. १६.

१२०. वही ११. ८. ४ ; १४. २. १३ ; २०. १४१. २ ; ६. १०२. १.

इन्द्र वरुणादि देवताओं के साथ सपत्नीक देखते हैं। अन्यथा अश्विनौ की कल्पना सतत् कुमारों के रूप में ही प्राप्त होती है और यदि कभी स्त्रियों के साथ उनका सम्बन्ध घोतित भी हुआ है तो वह मात्र `ग्ना:` के साथ है जिन्हें देवपत्नियां कहा गया है[121]। यज्ञ में पत्नीसंयाज में ऐसे मन्त्रों का विनियोग होने के कारण ही सम्भवत: समस्त देवताओं की पत्नियों के साथ अश्विनौ की पत्नियों का भी उल्लेख किया गया है। अन्य सन्दर्भ में उन्हें शचियों के साथ संलग्न किया गया है[122]। जिसमें इन्द्र की पत्नी शची का उल्लेख प्राय: मन्त्रों में मिलता है किन्तु उसके बहुवचनान्त रूप की कल्पना मात्र रहस्य का अवगुंठन करती है, उद्घाटन नहीं। इसी प्रकार ऐसे भी सन्दर्भ हैं जहां अश्विनौ के साथ सरस्वती तथा शचियों का उल्लेख सुरापान के सन्दर्भ में किया गया है[123]। गर्भ के धारक रूप में सिनीवाली, सरस्वती और अश्विनौ का उल्लेख इस देवता युग्म को सिनीवाली के साथ भी जोड़ देता है[124]। यदि हम ऋग्वेदीय परम्परा के सातत्य के रूप में इसका परिग्रहण करें तो सूर्या, उषस् आदि भी इन देवपत्नियों के साथ अश्विनौ के साथ जुड़ जायेंगी[125]।

---

१२१. `उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ ग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु ॥`
अथर्व० ७.५१.२.

१२२. वही ७.५३.१.

१२३. `यत्सुरामं व्यपिब: शचीभि: सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्`।
- वही २०.१२५.५.

१२४. वही १०.१८४.२ ; ५.२५.३.

१२५. वही १४.१.६ ; २०.१४२.२ ; ३ ; २०.१४३.१,
ऋ० १.११६.५ ; ४.४१.१ ; ८.६.१८ ; ६.६.१७.

अथर्ववेद में अश्विनी का आह्वान शान्ति कर्म, पुष्टि कर्म, तुष्टि कर्म, पाप-नाशक, रक्षोहण, वशीकरण, गर्भधारण आदि अनेक कर्मों के साथ जुड़ा हुआ है। किन्तु इन सबसे ऊपर उठकर उनका भिषक् रूप प्राण विद्या में समाहित होकर अथर्ववेदीय मधु विद्या के रहस्य को उजागर करता हुआ उनके भिषक् रूप को अत्यन्त महत्त्वशाली बना देता है। मधु विद्या का रहस्य जानना अत्यन्त गोपनीय और असम्भव माना जाता है, जिसकी अनेक अन्तकथाएं ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्विनी के साथ जोड़ी गयी है, जिन आख्यायिकाओं के अन्तर्गत अश्विनी को अन्य ऋषियों से मधु-विद्या के दान की याचना करते हुये प्रदर्शित किया गया है, वहां अश्विनी की महत्ता का एक प्रकार से अवमूल्यन हुआ है और ऋषियों की महत्ता का मूल्यांकन बढ़कर किया गया है। किन्तु अथर्ववेद के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देवताओं के अन्तर्गत अश्विनी स्वयं प्राण विद्या एवं मधुविद्या के ज्ञाता और प्रवर्तक हैं, जिनसे परम्परया अन्य ऋषियों ने इस विद्या को ग्रहण किया। उनका भिषक् रूप जहां एक ओर उन्हें अनेकानेक औषधियों का ज्ञाता और उन औषधियों के प्रयोग के माध्यम से जन समूह के रोग निवारक के रूप में उपस्थित करता है, वहीं मधु विद्या के प्रदाता के रूप मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणों के संचालक और इस विद्या के रहस्य के अधिष्ठाता के रूप में उपस्थित किये गये हैं।

यह मधु विद्या समुद्र के रेतस् के रूप में प्राप्त होकर सृष्टि के प्राणियों में प्राण रूप में तथा देवताओं में अमृत रूप में निविष्ट है।[१२६] यह अग्नि और वायु से उत्पन्न होकर आदित्यों की मां के रूप में, वसुओं

----

१२६. 'तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम्'
- अथर्व० ९.१.२.

की दुहिता के रूप में प्रजाओं के प्राण रूप में और अमृत की नाभि के रूप में हिरण्यवर्णा होकर महत् तेज के रूप में प्राणियों में विचरण करती है।[१२७] माता के रूप में वह समस्त विश्व का निरीक्षण करती है, जिसे जानना बहुत ही कठिन है।[१२८] अश्विनों को इस विद्या का ज्ञान है, इसीलिए उनसे इसे प्राप्त कराने की प्रार्थना की गयी है। मेघ गर्जन, उदक-सेचन, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश, विद्युत, सूर्य -- ये सात मधु-विद्या के सप्त मधु-बिन्दु हैं[१२९] अथवा धरती पर ब्राह्मण, राजन्, धेनु, अनड्वान्, ब्रीहि, यव और मधु-- ये उस विद्या के सात अंग हैं। इन समस्त का सम्यक् ज्ञान ही व्यक्ति को

---

१२७. पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमाना: ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्ति: ।।
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राण: प्रजानाममृतस्य नाभि: ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान्भर्गश्चरति मर्त्येषु ।।
- अथर्व ९.१.३, ४.

१२८. वही ९. १. ५ ; ६.

१२९. स्तनयित्नुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यांदिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति
पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौ: कशा विद्युत्प्रकशो हिरण्ययो बिन्दु: ।।
यो वै कशाया: सप्त मधूनि वेद मधुमान्भवति ।
ब्राह्मणश्चराजा च धेनुश्चानड्वाश्च ब्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ।।
- अथर्व० ९. १. २०-२२.

अमृतमय बनाता है --'यो वै कशाया: सप्त मधूनि वेद मधुमान्भवति'[130] अश्विनो की इस मधु-विद्या को 'मधु-कशा' भी कहा गया है, क्योंकि वे अश्ववान है और उन अश्वों का ताड़न करने के लिये इस विद्या का उपयोग किया जाता है। दूसरे रूप में हम यह कह सकते हैं कि अश्वों का तादात्म्य प्राणों के साथ है। उन प्राणों को ताड़ित करने के लिये अथवा उनका नियमन करने के लिये इस विद्या का उपयोग किया जाता है। इसीलिये इसे प्राण-विद्या भी कहा है। स्थूल रूप से यह वायु की वीर्य द्वारा, अथवा मरुद्गणों के द्वारा, या सूर्य रश्मियों के द्वारा उत्पन्न मानी गयी है।[131] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राण वायु का अवरोधन, या उसका नियमन और सूर्य की सप्तरश्मियों का प्राण वायु के साथ पान, या उनका संयोजन इस मधु-विद्या के मूल में है। उपर्युक्त विवरण में हमने इस मधु विद्या के सप्त बिन्दुओं की चर्चा की है। सूक्ष्म रूप से इसके पांच उपादान हैं -- १- दिव्य ज्योति, २- पृथिवी का रस, ३- अन्तरिक्ष का बल, ४- अग्नि का ताप, ५- वायु का वीर्य या उसमें निहित शक्ति-- इन पांचों उपादानों से ही मधुकशा-विद्या की उत्पत्ति होती है।

इस मधुविद्या के प्रवर्तक के रूप में अथवा उसके ज्ञाता के रूप में अथवा उसके ज्ञाता ही अश्विनो को 'माध्वी' कहा जाता है और जब वे किसी पुरुष को इस मधु-विद्या से अंचित करते हैं तो उसमें वर्चस्, तेजस्, ओजस् और बल का आधान करते हैं। इन सब का आधान मानों उसमें मधु या अमृत का आधान है। यह मधु अधिदैव रूप मेघ है, अध्यात्म रूप

----

१३०. अथर्व० ६.१-२२.

१३१. वही ६.१.३.

प्राणों का पंचकोश है[132] अथवा इसे उच्चार्यमाण वैखरी वाणी के अन्तर्गत जाना जा सकता है।

इन्हीं को हम 'आधिदैविक या आध्यात्मिक' दो रूपों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम में पृथिवी, अन्तरिक्ष आकाश, विद्युत और चन्द्र रश्मियों से युक्त अन्तरिक्षस्थ जल को ग्रहण किया जाता है और द्वितीय के अन्तर्गत गन्ध, गर्भ, कशा, प्रकाश बिन्दु या उपर्युक्त पंचकोशों की गणना की जाती है। श० ब्रा० में 'यज्ञो ह वै मधु-सारघम्'[133] कहा गया है। जहाँ यज्ञ को ही समस्त मधु-विद्या का अधिष्ठाता माना जाता है। इसी को बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मा के साथ जोड़ा गया है जहाँ यह कहा गया है कि 'अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु, अस्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु।'[134] इस प्रकार अथर्ववेद की मधु-विद्या धीरे-धीरे प्राण विद्या या आत्म-विद्या के रूप में प्रतिष्ठित हुयी। इसीलिये इस विद्या के ज्ञान से युक्त अश्विनौ का सबके प्राण रक्षक या भिषक् रूप में प्रतिष्ठित होना समीचीन है।

अश्विनौ सम्बन्धी विवेचन की इतिश्री तब तक नहीं होती जब तक कि हम उनसे सम्बन्धित अनेक आख्यानों की चर्चा न कर लें। ऋ० में अश्विनौ की चर्चा करते समय हमने इन आख्यानों की चर्चा की है, जिनसे ... वध्र्यश्व, कक्षीवान्, काण्व, भुज्यु आदि से सम्बन्धित आख्यायिकायें

---

१३२. पञ्चकोश - अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश, आनन्दमयकोश।

- तै० उप० ३.२-६

१३३. श० ब्रा० ३.४.३.१४.

१३४. बृ० उ० ३. २. ५.१४.

सम्बद्ध है। उन्हीं का सातत्य हमें अथर्ववेद के मन्त्रों में भी प्राप्त होता है। यहाँ अन्तर यह है कि जहाँ ऋग्वेद में इन-इन आख्यायिकाओं के साथ-साथ उन-उन व्यक्तियों के विशेष कष्टों दु:खों और कठिनाइयों की चर्चा है, वहीं अथर्ववेद में ऋग्वेद के आवर्तित मन्त्रों को छोड़कर, इन व्यक्तियों के नाम अंहस् अथवा पाप के साथ जोड़े गये हैं ; जिससे अश्विनौ उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं। अत: यहीं आख्यायिकाओं का स्मरण दिलाकर ऋषि पुन: अंहस से मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। इन आख्यायिकाओं से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम अथर्ववेद में जहाँ-जहाँ आये हैं, वे मन्त्र प्राय: दुरित, दुर्भाग्य, पाप, ताप, शाप, भय, बाधा निवारण में विनियुक्त है।

अथर्ववेद का मुख्य विषय अभिचार कर्म भी है। अभिचार कर्म के अन्तर्गत मारण, सम्मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वेषण और वशीकरण जैसे षट्कर्म प्रधान हैं। किन्तु इसके साथ ही और बहुत से विषयों का सन्निवेश भी अभिचार कर्म के अन्तर्गत किया जाता है, जिसमें रोगोपशमन, पति-पत्नी आनुकूल्य, सौमनस्य, शत्रु-पराजय, राजा की पुन: स्थापना आदि विषयों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन है। वास्तव में अथर्ववेद जन-सामान्य का वेद है और जन-सामान्य से सम्बन्धित या उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अनेक विषयों का इसमें समावेश किया गया है। यद्यपि इन विषयों से सम्बन्धित बहुत से मन्त्र ऋग्वेद आदि संहिताओं में भी है, किन्तु उनका संयोजन और विनियोजन उस प्रकार से नहीं है, जैसा कि अथर्ववेद में प्राप्त होता है। यहाँ हमारा मुख्य विषय उन अभिचार मन्त्रों का या सन्दर्भों का उल्लेख करना ही है, जिनका सम्बन्ध अश्विनौ से है। हम यहाँ प्रथमत: अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के तीसवें सूक्त को ग्रहण कर रहे हैं जो किसी कामिनी के मन के अभिमुखीकरण में विनियुक्त है। इसके द्वितीय

मंत्र के देवता अश्विनौ हैं ; जिसमें उनसे प्रार्थना की गयी है कि वे अभिलषित कामिनी का हमारी ओर वहन करें और उसके चित्त को मुझमें संलग्न करें ।[135] यहां अश्विनौ के साथ औषधियां भी देवता हैं जिससे अश्विनौ और औषधियों का सामीप्य दृष्टिगत होता । इसी प्रकार दीर्घायु प्राप्ति के लिये भी उनसे प्रार्थना की गयी है, इसी प्रकार इससे पूर्व सूक्त में दीर्घायु की प्राप्ति के लिए अश्विनौ से कामना की गयी है जिसमें उनके हृदय को तृप्त करने के लिये सोमरस को प्रदान किया जाता है, उसी पान के माध्यम से पुन: दीर्घायु की प्राप्ति की जाती है ।[136] इस सन्दर्भ में उनका 'सावासिनौ' विशेषण कुछ ध्यान देने योग्य है ।[137] यद्यपि ऋग्वेदादि के अन्य सन्दर्भों में अश्विनौ की चर्चा हुयी है किन्तु इस प्रकार का विशेषण उनके साथ नहीं जोड़ा गया है - 'सावासिनौ' के दो अर्थ संभव हैं - पहला साथ-साथ रहने वाले ; दूसरा, एक ही वस्त्र में आच्छादित । अभिचार कर्मों में एक-एक शब्द का अपना विशिष्ट महत्व होता है और उन्हीं शब्दों के अर्थों के अनुकूल्य से विशिष्ट प्रकार की अभीष्टियों की प्राप्ति की जाती है ।

अश्विनौ का सदैव एक साथ रहना उनके सौमनस्य का द्योतक है । इसलिए सौमनस्य की कामना के लिये अथर्ववेद में अश्विनौ का आह्वान किया जाता है । एक सन्दर्भ में उनसे यह प्रार्थना की गयी है कि हम आपस

----

१३५. सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथ: ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥
- अथर्व० २.३०.२.

१३६. शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठा: सुवर्चा: ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥
- वही २.२९.६.

१३७. वही २.२९.६.

में एक दूसरे का ज्ञान प्राप्त करें तथा हमें अपने शत्रुओं का भी ज्ञान प्राप्त हो । इस प्रकार की संवेदनात्मक शक्ति का वे हममें आधान करें।[१३८]

ऋग्वेद[१३९] के प्रसिद्ध विष्णु सूक्तों में पृथिवी के निर्माता अथवा उसके मापक के रूप में विष्णु की ही चर्चा की गयी है । किन्तु अथर्ववेद का प्रसिद्ध भूमि सूक्त अश्विनों को भी इसकी प्रतिष्ठा प्रदान करता है । उसमें एक मन्त्र में यह कहा गया है कि 'जिस धरती को अश्विनों ने निर्मित किया या उसका मापन किया, जिस पर विष्णु ने परिक्रमा की, इन्द्र ने जिसे अपना आत्मीय बनाया वही मातृ स्वरूपा भूमि पुत्र रूप मेरे लिये पय का सृजन करे[१४०] ।

अथर्ववेद का चतुर्दश काण्ड विवाह-सूक्त के रूप में प्रसिद्ध है । जिसमें वधू के प्रति अनेक प्रकार की आशीर्वादात्मक कामनायें की गयी है, एक मन्त्र में यह कहा गया है कि जो वर्चस् या तेज अक्षों में, सुरा में और गांवों में निहित है उसे अश्विनों वधू के अन्तर्गत निहित करें । यह

----

१३८. संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ।।
- अथर्व० ७.५४.१.

१३९. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ।।
- ऋ० १. १५४.१.

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ।।
- ऋ० १. १५४.३.

१४०. यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मने नामित्रां शचीपतिः ।।
- अथर्व० १२.१.१०.

कामना अश्विनौ के साथ वधू के तादात्म्य को या उसके प्रथम सहवास को व्यक्त करती है।[141] उसी वधू की रक्षा के लिये भी उनसे प्रार्थनायें की गयी है। इन प्रार्थनाओं में गो, अक्ष, सुरा आदि की संलग्नता महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। क्योंकि जहां भी विनियोजन होता है वहां निर्दिष्ट पदार्थों का संयोजन भी किया जाता है। अत: वर्चस् प्राप्ति में अक्ष, सुरा और गो से उत्पन्न दुग्ध, घृतादि पदार्थों को सन्दर्भित करने का आशय ही यह है कि वधू की वर्चस् प्राप्ति के लिये इन पदार्थों को उसको प्रदान किया जाता है, जिसमें अश्विनौ की प्रार्थना एक प्रकार से उन पदार्थों के अभिमन्त्रण रूप में है। किसी वस्तु को अभिमन्त्रित करने का तात्पर्य यह है कि उस वस्तु में उस विशिष्ट देवता की शक्ति का आधान किया जाता है जिससे सम्बन्धित वह मन्त्र होता है। प्रत्येक शुभकर्म में देवताओं का आह्वान मात्र प्रार्थना रूप में नहीं होता, वरन् वहां अनेक वस्तुओं के साथ उनका तादात्म्य भी उपस्थित किया जाता है। अत: वधू के आगमन के समय जिन वस्तुओं के साथ या कर्मों के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है उन-उन वस्तुओं को या कर्मों को किसी देवता के साथ जोड़कर उसका सानिध्य प्राप्त किया जाता है और इस प्रकार सभी दृष्टियों से उसे शक्ति सम्पन्न किया जाता है। मात्र अश्विनौ ही नहीं, वरन् उनके साथ इन्द्र, अग्नि, द्यावापृथिवी, मातरिश्वन्, मित्रा-वरुण, भग, बृहस्पति, मरुद्गण, ब्रह्म, सोम आदि देवताओं से भी वधू

---

१४१. यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम्।
यद्गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम्॥
- अथर्व० १४.१.३५.

के रक्षा और उसकी सन्तान वृद्धि की कामना की जाती है।[142] उसके मन में कामनाओं को जगाकर कल्याणकारी अश्विनौ के माध्यम से उसके हृदय में मिथुन भाव की उत्पत्ति की जाती है और कठिनता से प्राप्त होने वाली उस वधू की सर्वत: प्राप्ति की कामना की जाती है।[143] अश्विनौ उसकी हर प्रकार से रक्षा करें, यह मुख्य कामना है।[144]

अथर्ववेद का १८ वां काण्ड पितृ मेध सूक्तों का है। यहां अश्विनौ से प्रार्थना की गयी है कि वे समस्त पितरों के लिए अमृत स्वरूपा माध्यमिका वाक् को उद्घाटित करें, जिस प्रकार की उन्होंने विवस्वान् के लिये सवर्णा को उद्घाटित किया। इस सन्दर्भ में एक विशिष्ट आख्यायिका निहित है। त्वष्टा की पुत्री सरण्यू ने विवस्वान् से यम और यमी के जोड़े को उत्पन्न किया। वही वैद्युताग्नि और माध्यमिका वाक् के रूप में जाने जाते हैं। इसी सरण्यू ने अपने समान रूपा एक नारी को प्रकट कर स्वयं आदित्य का त्याग किया और अश्वा का रूप धारण कर बाहर चली गयी। आदित्य ने अश्व का रूप धारण किया और देवताओं तथा मनुष्यों से अपने को छिपाकर अश्व रूपा सरण्यू को प्राप्त किया। जिससे अश्विनौ की उत्पत्ति हुयी। इस आख्यायिका से सम्बन्धित चर्चायें हमने पूर्व विवरणों में

---

१४२. इन्द्राग्नी द्यावापृथिवीमातरिश्वा मित्रावरुणाभगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥
- अथर्व० १४. १. ५४.

१४३. वही १४. १. ५८.

१४४. वही १४. १. ६३.

इस प्रकार अथर्ववेद अश्विनौ को जहां एक ओर परम्परागत रूपों में प्रतिष्ठित करता है वहीं अनेक सन्दर्भों में उनके साथ अनेक नवीन उद्भावनाओं को भी संयुक्त करता है, जिससे उनका व्यक्तित्व अधिक व्यापक बन जाता है।

--

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

-0-

ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्विनौ

ब्राह्मण ग्रन्थों में जहां एक ओर संहिताओं से सम्बन्धित अवधारणाओं का सातत्य प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर अनेक प्रकार की परिवर्तनशील अवधारणाएं भी जुड़ती चलती गयी है, जिससे सातत्य और परिवर्तन की परम्परा की अभिवृद्धि दृष्टिगत होती है । अश्विनौ सम्बन्धी जिन आख्यानों का अंकुरण संहिताओं में प्राप्त होता है, उनका प्रस्फुटन, संवर्धन और विकास हमें ब्राह्मण-साहित्य में दृष्टिगत होता है । ब्राह्मणों में जहां एक ओर विनियोग के माध्यम से मन्त्रों का उद्धरण देकर मन्त्रों की मूल भावनाओं का संरक्षण किया गया है, वहीं उन मन्त्रों के अन्तर्निहित भावों की व्याख्या में विषय का परिवर्धन कर उसे जन सामान्य की पहुंच के अन्तर्गत लाकर उपस्थित किया गया है ।

अश्विनौ के व्यक्तित्व की जिन मूल-भूत धारणाओं को हमने संहिताओं में परखा-संजोया है उन बातों का आवर्तन तो ब्राह्मणों में है ही, किन्तु इसके साथ ही बहुत सी ऐसी नवीन बातें भी यहां संजोयी गयी है जो संहिताओं में अप्राप्य है । ब्राह्मणों में अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ श० ब्रा० यजुर्वेद से सम्बन्धित है जिसमें अश्विनौ के अनेक रूपों का विकास परिलक्षित होता है । उनका दो बाहुओं के रूप में यज्ञ में उपस्थित होना यजुर्वेद की प्रायः सभी संहिताओं में -- 'अश्विनोर्बाहु पूष्णो हस्ताभ्याम् ------'[1] मन्त्र के साथ दृष्टिगत होता है, वहीं उन्हें अध्वर्यु रूप में

---

१. श० ब्रा० १.१.२.१७ ; १.२.४.४.
काठ० सं० १.८.२४ ; २.११.६०.
तै० स० १.१.४.२ ; १.१.६.१.
कप० क० १.८ ; १.६ ; ८.१२;

(अश्विनावध्वर्यू)[2] प्रतिष्ठित कर उनके महत्व का संवर्धन किया गया है। अध्वर्यु एक प्रकार से यज्ञ की धुरि है, जिसके चारों ओर यज्ञ कर्म का आवर्तन होता है अथवा यह कहें कि वही यज्ञ का संचालक है अत: अश्विनो का अध्वर्यू के साथ तादात्म्य उपस्थित करना उनके यज्ञीय महत्व को बढावा देना है।

दर्शपूर्णमास यज्ञ यजुर्वेदी यज्ञों की परम्परा में बहुत ही महत्वपूर्ण है। वहां अश्विनो की पूर्ण प्रतिष्ठा उनके महत्व की परिचायक है। पितृपिण्ड पुरोडाश की स्थापना करते हुये सर्वप्रथम अश्विनो के लिये उसे प्रतिष्ठित होने के लिये कहा गया है -- 'अश्विभ्यां तिष्ठ सरस्वत्यै तिष्ठेन्द्राय तिष्ठसि स:'[3]। इस कथन में सरस्वती और इन्द्र के पूर्व अश्विनो की स्थापना उनके महत्व की परिचायक है।

सोमयाग प्रकरण में आश्विनग्रह की स्थापना भी अश्विनो के वर्धित होते हुए महत्व की ओर इंगित करती है। यहां पर आश्विन-ग्रह को अश्विनो के श्रोत्र रूप में कहा गया है। इसी सन्दर्भ में च्यवन भार्गव और च्यवन अंगिरस के आख्यान की चर्चा है। वहां कृत्या के रूप में च्यवन के ऊपर वृद्धापन का आगमन और अश्विनो के माध्यम से उस कृत्या का परिहार एक विचारणीय प्रश्न है। ऋग्वेद में कृत्या शब्द का प्रयोग मात्र दो बार दशम्-मंडल के विवाह-सूक्त में हुआ है, वहां अभिचार की अभिमानिनी देवता के रूप में नील लोहित वर्ण वाली कृत्या को वधू के प्रति आसक्त कहा गया है और उसके मलिन वास के रूप में वधू के साथ निवास करती हुयी कृत्या का यदि पति के साथ संस्पर्श होता तो वह पति के

----

२. श० ब्रा० १.१.२.१७ ; १.२.४.४.

३. वही १.६.२.४.

मारक रूप में स्थित हो जाती है इसलिये उसे अश्लीरा, पापया के रूप में उपस्थित किया गया है।[4] ऋग्वेद का यह प्रकरण अथर्ववेद के चतुर्दश काण्ड के विवाह प्रकरण के समान है।[5] दोनों की एकरूपता तथा भाषा एवं शैली तथा विषय वर्णन आदि की दृष्टि से ऋग्वेद का यह अंश पर्याप्त अवान्तरकालीन प्रतीत होता है। अथवा यदि हम यह कहें कि यह लोक-सम्मत अवधारणाओं से युक्त है या लौकिक व्यवहारों के अनुरूप है तो अत्युक्ति न होगी। इसलिये हम यह मानकर चलते हैं कि इस सन्दर्भ में कृत्या का निरूपण और ऋग्वेद के अन्य सन्दर्भों में उसका नितान्त अभाव- इस बात का सूचक है कि कृत्या सम्बन्धी अवधारणा ऋग्वैदिक संस्कृति के अवान्तरकालीन अंशों में उद्भूत होकर अन्य संहिताओं, विशेषकर अथर्ववेद संहिता में, ब्राह्मणों में संवर्धित हुयी है। कृत्या प्राय: किसी मनुष्य के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति पर किया गया अभिचार है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति को शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक हानि पहुंचायी जा सकती है और उसके प्रति अनेक प्रकार के दु:खों को उत्पन्न

----

४. नील लोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते
एधन्ते अस्या ज्ञातय: पतिर्बन्धेषु बध्यते ।
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जायाविशते पतिम् ।।
अश्लीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो ३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ।।

- ऋ० १०.८५.२८-३०

५. अथर्व० १४. १.१-६४.

किया जा सकता है। अथर्व० में इसके अनेक रूपों की गणना की गयी है।[6] किसी कच्चे मिट्टी के बर्तन में अथवा मिश्रित अन्न में अथवा कच्चे मांस में कृत्या[7] सम्बन्धी अभिचार किसी व्यक्ति विशेष के नाम से किया जाता है। जिससे उस व्यक्ति के शनैः शनैः मरण की ओर उसके हर प्रकार के अभिभव तथा दुःख दैन्य की स्थिति उत्पन्न की जाती है। इसी प्रकार बकरे आदि पशुओं का एक पैर काटकर या गर्दभ[8] को मारकर किसी चौराहे पर कृत्या रूपी अभिचार किया जाता है। अथवा व्यक्ति विशेष की कृषि भूमि में अथवा उसके घर[9] में अग्नि प्रदूषण आदि कर कृत्या अभिचार सम्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार उस व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित, सभा, मन्दिर, अड्डा, सेना आदि में भी

---

६. अथर्व० ५.१४ ; ३१ ; १०.१.

७. यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५.३१.१.

८. यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५.३१.३.

९. यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५.३१.४.

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ।।
- वही १०.१.१८.

कृत्या आरोपित की जाती है।[10] अथवा किसी कूप में अथवा श्मशान अथवा किसी के घर में भी कृत्या की जाती है।[11] इस प्रकार कृत्या के अनेक रूप हैं, जिन्हें अवान्तरकाल में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि षट्कर्मों के साथ सम्बन्धित कर अनेक प्रकार के अभिचार तन्त्रों के रूप में विकसित किया गया है।

इस कृत्या परिहार के लिये अनेक प्रकार की औषधियों से स्नान, मन्त्रों से अभिषेचन, हवन आदि का विधान अथर्व० में किया

----

१०. यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५. ३१. ५.

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५.३१.६.

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५. ३१.७.

११. यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा नि चख्नुः
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।
- वही ५.३१.८.

गया है । अथर्व० के पंचम काण्ड में[12] और दशम् काण्ड[13] में कृत्या दूषण सम्बन्धी अनेक उपचारों की चर्चा की गयी है । जिनके माध्यम से किसी व्यक्ति विशेष पर किये गये कृत्या अभिचार को दूर कर उसे सुख समृद्धि और स्वास्थ्य लाभ कराया जाता है ।

कृत्या सम्बन्धी अभिचारों की चर्चा यजुर्वेद में भी की गयी है । शुक्ल यजुर्वेद के पंचमाध्याय में रक्षोहण सम्बन्धी मन्त्रों में कृत्या दूषण की चर्चा की गयी है । वहाँ इन्हें 'वलगा:' कहा गया है[14] जिसकी व्याख्या महीधर ने 'वधार्थमभिचाररूपेण भूमौ निखाता अस्थिकेशनखादि पदार्था: कृत्याविशेषा वलगा:'[15] — किसी व्यक्ति विशेष के वध के लिये अभिचार रूप में भूमि में मांस, केश,नखादि पदार्थों का गाड़ना कृत्या या वलगा कहा जाता है । इन सन्दर्भों में कृत्या के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि वह उस व्यक्ति विशेष तक ही सीमित न रहकर, उसके पुत्र, अमात्यादि को भी दूषित कर उन्हें भी दु:ख प्रदान करती है । इस प्रकार कृत्या के अनेक रूप वैदिक काल की संस्कृति में व्याप्त होकर अवान्तरकाल में प्रसारित होते रहे हैं ।

कृत्या के इसी उपर्युक्त स्वरूप की चर्चा शतपथ ब्राह्मण में[16] च्यवन के सम्बन्ध में की गयी है जहाँ तदेव वीर्णि: कृत्यारूपी वह

----

१२. वही ५.१४.१-१३.

१३. वही १०.१.१-३२.

१४. शु० यजु० ५.२३ ; २४ ; २६ ; २७.

१५. मही० भाष्य ५. २३.

१६. श० ब्रा० ४.१.५.१.

वाक्यांशके माध्यम से च्यवन के ऊपर की गयी कृत्या और उसके परिणाम स्वरूप उनके जीर्णत्व की चर्चा की गयी है । उनको इस जीर्णावस्था से मुक्त करने के लिए अश्विनौ ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया, जो औषधि-अभिषेचन आदि कर्मों से युक्त माना जा सकता है । यहां इससे अश्विनौ के स्वरूप विवेचन में पर्याप्त सहायता मिल सकती है ।

कृत्या के ही सन्दर्भ में श० ब्रा०[१७] में यह आख्यान है कि कृत्या से पीड़ित च्यवन ऋषि शर्याति नाम के व्यक्ति के ग्राम में प्रविष्ट हुये। वहां के बालकों ने क्रीड़ा करते हुये उनकी कृत्या को व्यर्थ माना और उनको लोष्ठों से मारा । च्यवन ऋषि शर्याति के लोगों पर क्रोधित हो गए और उन्हें ज्ञान-शून्य तथा उन्मत्त कर दिया, जिससे पिता-पुत्र से, भाई-भाई से कलह करने लगा । शर्याति ने विचार किया कि अब क्या करें, और कैसे इस आपत्ति से पार होवें ? उसने गोपालों और भेड़-पालकों को बुलाया तथा विचार-विमर्श किया । शर्याति के पूछने पर उन्होंने बताया कि एक जीर्ण शीर्ण कृत्या रूप वाला पुरुष यहां शयन कर रहा है, जिसको अनर्थ मानकर बालकों ने उसे लोष्ठों से ताडित किया है । शर्याति ने यह सुनकर सोचा कि वह तो च्यवन ऋषि हैं । उसने तत्काल रथ जोतकर उसमें अपनी कन्या `सुकन्या` को बैठाकर जहां ऋषि थे वहां गया और उसने ऋषि को प्रणाम कर कहा - `हे ऋषिवर ! मैं आपको नहीं जानता था इसीलिये यह हिंसा हुयी । यह मेरी पुत्री सुकन्या है । इसे स्वीकार करें । क्रोध शान्त करने की प्रार्थना करता हूं तथा उसी के द्वारा मैं आपका आह्वान करता हूं । आप मेरे ग्राम को जानें ।` इस प्रकार ऋषि ने उसके

---

१७. श० ब्रा० ४. १. ५ सम्पूर्ण तथा ८.२.१.३.

ग्राम को जाना और उस शर्याति ने यह प्रयास किया कि किसी दूसरे की हिंसा हम न करें। तभी वहां पर वैद्य का कार्य करते हुये अश्विनौ पहुंचे। वे दोनों सुकन्या के पास गए और उससे मैथुन की कामना की। किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। वे दोनों सुकन्या से बोले -- 'हे सुकन्ये! इस जीर्ण कृत्या वाले पुरुष के साथ क्यों रह रही हो? उन्होंने सुकन्या को उस वृद्ध तथा कुरूप पति को त्याग देने तथा अपने साथ चलने की बात कही।' परन्तु सुकन्या ने उन्हें कहा, जिसके लिये पिता ने मुझे प्रदान किया है, उसे मैं जीते जी नहीं त्याग सकती। इस बात को ऋषि ने जाना। उसने सुकन्या से पूछा कि ये दोनों तुमसे क्या कह रहे थे। उसने ऋषि से सब कुछ कह दिया। ऋषि ने उससे कहा, कि यदि तुमसे वे पुन: प्रस्ताव करें तो तुम उनसे कहना कि आप दोनों न तो सुसर्व है और न सुसमृद्ध। अर्थात् आप स्वयं असमृद्ध एवं असम्पूर्ण हैं; और इस प्रकार आप मेरे पति की निन्दा करते हैं। यदि वे दोनों तुमसे पूछें कि, 'हम किस कारण से असर्व हैं और किस कारण से असमृद्ध हैं, तो तुम उनसे कहना कि यदि मेरे पति को पुन: यौवन प्रदान कर दो तब मैं आप दोनों को यह बतलाऊंगी। वे दोनों उसके समीप पुन: आये और फिर से वही प्रस्ताव रक्खा। तब उसने ऋषि द्वारा कही हुयी बात को वैसे का वैसा उनसे कह दिया। ये दोनों उससे बोले - कि तुम अपने पति को झील में छोड़ दो जिससे वे युवावस्था को प्राप्त हो जायें। उसने वैसा ही किया और ऋषि अपने वय को प्राप्त कर निकल आये।

वे दोनों सुकन्या से बोले - 'सुकन्ये, हम दोनों कैसे असर्व हैं और कैसे असमृद्ध हैं? उन दोनों को ऋषि ने उत्तर दिया और कहा कि कुरुक्षेत्र में ये देवता यज्ञ का विस्तार कर रहे हैं और आप दोनों को यज्ञ

से बाहर किये हुये हैं, जिससे आप दोनों असर्व और असमृद्ध हैं। तब वे दोनो उस यज्ञ स्थान में गये और वहां जाकर देवताओं को यज्ञ का विस्तार करते हुये देखा तथा कहा कि हम दोनों का आह्वान भी किया जाये। देवताओं ने उनसे कहा - तुम दोनों को हम अपने साथ नहीं लेंगे, क्योंकि तुम दोनों बहुत से मनुष्यों में भिषक् रूप में पहुंच कर विचरण करते रहे हो, इसलिये यज्ञ-योग्य नहीं हो। तब वे दोनों बोले, `आप लोग भी तो इस यज्ञ को शीर्ष रहित बना कर ही यज्ञ कर रहे हैं। तब देवताओं ने इसका कारण पूछा तो उन दोनों ने कहा कि आप लोगों ने हमारा आह्वान नहीं किया है। तब देवताओं ने कहा कि ठीक है हम आपका आह्वान करेंगे। आप दोनों यज्ञ में अध्वर्यु रूप में हो जायें। इस प्रकार उन दोनों को यज्ञ के शीर्ष रूप में स्थापित किया गया और इस प्रकार बहिष्पवमान यज्ञ में अश्विनौ का आह्वान किया जाता है।

उपर्युक्त आख्यायिका के माध्यम से जहां एक ओर अश्विनौ के भिषक् रूप की चर्चा है, जिसमें उन्होंने मात्र औषधि स्नान के द्वारा, जो ह्रद के जल में व्याप्त थी, ऋषि च्यवन को पुनर्यौवन प्रदान किया, तो दूसरी ओर यज्ञ में उनके मुख्यत्व का द्योतन है, जहां वे शीर्ष रूप में विद्यमान होकर यज्ञ को समर्पित करते हैं और वही मुख्यत: सोमयाग में बहिष्पवमान के समय ग्रह कपालों की वसु संख्या के रूप में दृष्टिगत होता है।[१८]

इस सन्दर्भ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात अश्विनौ के सम्बन्ध में यह कही गयी है कि - यह आकाश और धरती ही प्रत्यक्ष रूप में अश्विनौ है ; क्योंकि ये दोनों ही सबको व्याप्त करते हैं और इसलिये

---

१८. वही ४. १. ५. १५-१६.

इन दोनों को पुष्करस्रजा कहा जाता है। इनमें से एक के लिये अर्थात् पृथिवी के लिए अग्नि पुष्कर रूप है और दूसरे के लिये अर्थात् आकाश के लिये आदित्य -- `इमे ह वै धावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ । इमे हीदं सर्वमाश्नुवातां पुष्करस्रजाविति अग्निरेवास्यै पुष्करम्, आदित्योऽमुष्यै ।[19]

यहां अश्विनौ के साथ आकाश और धरती का तादात्म्य तथा इन दोनों के साथ अग्नि और सूर्य का संयोजन अश्विनौ के स्वरूप के व्याख्यान में एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ता है। अभी तक अश्विनौ सम्बन्धी जो व्याख्यायें प्राप्त हैं, उनमें अनेक प्रकार के अनुमान लगाये जाते हैं कि अश्विनौ क्या है ? यदि हम प्रस्तुत सन्दर्भ के आधार पर उनके स्वरूप का विवेचन करें और उन्हें आकाश और पृथिवी के द्विधा विभक्त स्वरूप के एकीकरण के रूप में स्वीकार करें अथवा अग्नि और सूर्य के बोधक के मूल तत्व के रूप में उनके युग्म को मानें तो हम अश्विनौ की मूल अवधारणा को समझने में अधिक समर्थ हो सकेंगे। ब्राह्मण ग्रन्थों का यह आधार इस बात की पुष्टि करता है कि अश्विनौ की मूल अवधारणा `अग्नि और सूर्य` अथवा `सूर्य और चन्द्रमा` अथवा `आकाश और धरती` के विभिन्न युग्मों के प्रतीक रूप में प्रारम्भ हुयी और धीरे-धीरे अश्विनौ सम्बन्धी देवशास्त्र में अनेक प्रकार के प्रकरण जुड़ते चले गये जो सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिभाषाओं में आबद्ध होकर विभिन्न रूप में फलते-फूलते रहे और अश्विनौं सम्बन्धी देवशास्त्र में अनेक प्रकार की गुत्थियां उलझाते रहे ; जिनको सुलझा पाना बहुत कठिन हो गया। यदि हम प्रस्तुत सन्दर्भ[20] की परिधि में अश्विनौ की मूल अवधारणा को केन्द्रित मानकर उनके देवशास्त्रीय स्वरूप पर विचार करें तो बहुत कुछ सम्भव

---

१९. वही ४. १. ५. १६.

२०. वही ४. १. ५. १५-१७.

है कि उनके विकासात्मक स्वरूप को समझना आसान हो सकेगा ।

यजुर्वेद में अश्विनों की कशा को मधुमती सुनृतावती कहा गया है।[21] इसी को श० ब्रा० में विस्तार दिया गया है जिससे उन्हें मधु से अर्चित किया जाता है।[22] यही नहीं, इसके साथ एक लघु आख्यायिका भी जोड़ दी गयी है । आख्यायिका इस प्रकार है - आथर्वण दध्यङ ऋषि ने इनके लिये मधु नाम के ब्राह्मण से कहा - कि अश्विनों को मधु प्रिय है अथवा मधु ही इनका तेजस् अथवा स्थान है। इसीलिये उनको मधुमती अर्चा प्रदान की जाती है और उन्हें `माध्वी` कहा जाता है। इसलिये ओष्ठ के समान पात्र में मधुभर कर इनके प्रति यज्ञ में उसे स्थापित किया जाता है।[23]

राजसूय यज्ञ में अश्विनों से सम्बन्धित पुरोडाश का निरूपण दो कपालों में एक साथ किया जाता है क्योंकि युग्म रूप से ये सयोनी कहे गये हैं अर्थात् दोनों की उत्पत्ति एक ही मूल स्थान से साथ-साथ मानी गयी । दोनों एक ही रथ पर अधिष्ठित होकर संचरण करते हैं। इसलिये दोनों के प्रति दो गायों को दक्षिणा रूप में दिया जाता है।[24] सौत्रामणि

----

२१. य वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती
- यजु० वा० सं० ७. ११.

२२. तस्मान्मधुमत्यर्चा गृह्णाति, माध्वीभ्यां त्वेति सादयति ।`
- श० ब्रा० ४.१.५.१८.

२३. वही ४.१.५.१८-१६.

२४. `आश्विनं द्विकपालं पुरोडाशंनिर्वपति सयोनी वाऽअश्विनौ - - --
तस्य यमौ गावौ दक्षिणा ।`
- श० ब्रा० ५.३.१.८.

यज्ञ में अश्विनौ के लिए दो श्वेत भेड़ों की बलि दी जाती है। क्योंकि इन दोनों को श्वेत रंग का माना गया है। कहीं-कहीं अश्विनौ के लिये छाग की बलि का विधान है वहां उनके रंगों की चर्चा नहीं की गयी। किन्तु श० ब्रा० के प्रस्तुत सन्दर्भ 'श्येताऽश्विनौ भवति श्येताविव ह्याश्विना'।[25] इसी सौत्रामणि के सन्दर्भ में अश्विनौ के द्वारा अधिक सोमपान करने वाले इन्द्र के प्रति किये गये भैषज्य कर्म की भी चर्चा है।[26] इसीलिये अनेक औषधियों के माध्यम से अश्विनौ के प्रति हवन किया जाता है। इस यज्ञ में अश्विनौ का स्थान सरस्वती और इन्द्र के साथ कहा गया है। क्योंकि इन सबको साथ-साथ सोम रस प्रदान किया जाता है।[27]

चयन-निरूपण में प्रायेणेष्टि के अन्तर्गत अश्विनौ को मित्र-वरुण, पूषन् आदि के समकक्ष रखकर पशु, प्रजा, औषधि कृषि आदि की कामना के लिये इन सभी देवताओं का आह्वान किया जाता है और उसके अन्तर्गत देवताओं के पुरोहित या अध्वर्यु रूप में अश्विनौ को स्थान दिया गया है। इस प्रकार अश्विनौ का सम्बन्ध जहां औषधियों से है, वहां पूषन् के साथ अत्यन्त सन्निकटता के कारण इन्हें कृषि के साथ भी

---

२५. वही ५.५.४.१.

२६. 'स सोमातिपूतो मङ्कुरिव चचार, तमेतयाऽश्विनावभिषज्यताम्'
- वही ५.५.४.११.

२७. 'अश्विभ्यां पच्यस्व, सरस्वत्यैपच्यस्व इन्द्रायसुत्राम्णे पच्यस्व'
- वा० सं० १०.३१.
श० ब्रा० ५.५.४.२०.

सम्बन्धित किया गया है।[२८] चयन निरूपण के अन्तर्गत द्वितीय चिति अश्विनौ से सम्बद्ध होती है। इसमें उन्हें ब्राह्मण भिषक् के रूप में वर्णित कर अध्वर्यू की संज्ञा दी जाती है।[२९] यही नहीं वरन् अग्नि के विपरीत 'अश्विनावेव देवानामध्वर्यू इति'[३०] कहकर उन्हें अध्वर्यू के पद पर भी आसीन किया जाता है। जहाँ पहले ऋ० के समस्त सन्दर्भों में अग्नि को 'देवानाम् पुरोहित:', 'देवानाम् अध्वर्यु:' इत्यादि रूपों में बार-बार उपस्थित किया गया है वहीं इन अवान्तरकालीन सन्दर्भों में अश्विनौ का अध्वर्यु रूप में उपस्थित होना उनके महत्त्व की विकासात्मक भूमिका का परिचायक है। इस चयन निरूपण के अन्तर्गत वैश्वदेव इष्टिकाओं का चयन करते हुए अश्विनौ को ही मुख्य रूप से सम्बोधित किया जाता है और उन्हें ही मुख्य चयन कर्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है।[३१]

इसी चयन निरूपण के अन्तर्गत द्वितीय चिति के आधान के अन्तर्गत अश्विनौ की प्रजापति के साथ चर्चा है, जिसके अन्तर्गत यह कहा गया है कि प्रजापति ने यह कामना की कि वह प्रजाओं का सृजन करें। अत: उन्होंने ऋतुओं, बल, प्राणों, संवत्सर एवं अश्विनौ के साथ प्रजाओं को उत्पन्न किया।[३२] इस प्रकार सृष्टि के सृजन में अश्विनौ की भूमिका

---

२८. 'इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्या ओषधीभ्य इति सर्वदेवत्या वै कृषिरेताभ्यो देवताभ्य: सर्वान्कामान् दुहेत्येतदित्यग्ने कृषत्यथेति ।
- श० ब्रा० ६.२.२.१२.

२९. 'तस्मादाहुरश्विनावेव देवानामध्वर्यू' ।
- श० ब्रा० ८.२.१.३.

३०. वही ८.२.१. ३ ; ४.

३१. वही ८. २.२.२ ; ८. २. २. ३.

प्रजापति के साथ महत्वपूर्ण बन जाती है। जहाँ एक ओर कालचक्र, जल, प्राण, वायु सृष्टि के नियामक रूप में है, वहीं उनके साथ अश्विनों का तादात्म्य आकाश और पृथिवी के दो तत्त्वों के साथ तथा प्रजापति रूप सूर्य, जिसे 'आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'[33] कहा गया है, के साथ मिलकर समस्त सृष्टि की रचना प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इन सबके साथ सम्मिलित कारणों से उत्पन्न सृष्टि के कारण ही प्रजाओं को 'सबू:' कहा गया है।[34] इसी क्रम में ऋतुओं के साथ भी अश्विनों का सम्बन्ध सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में जोड़ा गया है।[35]

सौत्रामणि यज्ञ के[36] अन्तर्गत सोमक्रयण और सोमपावन के सम्बन्ध में अश्विनों का सम्बन्ध सरस्वती के साथ स्थापित किया गया है। इस प्रकार के अनेक सन्दर्भों की चर्चा पहले भी की जा चुकी है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात अश्विनों और नमुचि से सम्बन्धित सुरापान की है। सौत्रामणि यज्ञ के अन्तर्गत सुरा की भी आहुति दी जाती है। सोमरस और सुरा दोनों का ही एक साथ भक्षण किया जाता है जिसमें मधुमय सोम को वीर्य रूप में अथवा राजा के रूप में स्वीकार किया जाता है और वह पुण्य रूप होता है। वहीं सुरा पाप रूप होती है और इन

---

33. ऋ० १. ११५. १.
34. सयुग्भूत्वैता: प्रजा: प्रजनयति तस्माद् सर्वास्वेव सबू: सबूरित्यनुवर्तते ।।
 - श० ब्रा० ८. २.२. ६.
35. 'सबूर्ऋतुभिरिति। तदृतुभ्प्राजनयदृतुभिर्वै सयुग्भूत्वा प्राजनयत्।
 - श० ब्रा० ८. २. २. ८.
36. वही १२. ८. १. ३.

दोनों का सम्मिलित रूप सृष्टि के कारक रूप में है या समस्त सृष्टि का जो द्विधा-विभक्त स्वरूप है, मानो उसका प्रतिनिधित्व किया जाता है। अथवा सरस्वती के द्वारा वीर्य रूप सोम का अभिषव और अश्विनौ द्वारा रज रूप सुरा का आसवन सृष्टि में नारी और पुरुष के संयोग की प्रक्रिया का संकेतक है ; क्योंकि अश्विनौ पुरुष रूप में और सरस्वती नारी रूप में है, दोनों के द्वारा सुरा और सोम का सम्मिश्रण मिथुन भाव को द्योतित कर समस्त सृष्टि प्रक्रिया के आधार को प्रकट करता है। इसीलिये सौत्रामणि यज्ञ में सृष्टि की इस दार्शनिक भावधारा को ही परोक्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है।[37]

श० ब्रा० के अन्तिम काण्ड में बृहदारण्यक उपनिषद् के रूप में समस्त यज्ञीय कर्मों को दार्शनिकता के आवरण में आवेष्टित कर उन्हें एक नया रूप प्रदान किया गया है। चतुर्दश काण्ड के प्रारम्भ में ही अश्विनौ और दध्यङ् ऋषि से सम्बन्धित आख्यायिका का संकेत है।[38] अश्विनौ को अनुश्रुत कहा गया है अर्थात् वे पुरा कथा (आख्यायिकाओं) के ज्ञाता थे और दध्यङ् ऋषि के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे यज्ञ के ज्ञाता हैं। दोनों के सम्मिलित प्रयास से यज्ञ की पूर्णता की बात कही गयी है। ऋषि ने कहा कि जब तक यज्ञ के शीर्ष को न जाना जाये, जब तक उसका अर्थात् शीर्ष का आधान न किया जाय तब तक यज्ञ अपूर्ण रहेगा। यज्ञ के शीर्ष के आधान के लिए आवश्यक है कि उसके शीर्ष रूप [illegible] या सोम का ज्ञान प्राप्त किया जाये जिसे मधु-विद्या कहते हैं। अश्विनौ ने दध्यङ् आथर्वण से मधुविद्या का ज्ञान देने को कहा। ऋषि ने कहा कि इन्द्र ने उन्हें

----

३७. वही १२. ८. १. ६.

३८. वही १४. १. १. २०-२५.

वर्जित किया है और कहा है कि यदि किसी को यह ज्ञान दिया तो तुम्हारा शिरश्छेदन कर देंगे । अत: इस भय से मैं आप दोनों को इस विद्या को बतलाने में असमर्थ हूं । तब अश्विनौ ने कहा कि हम आपकी रक्षा करेंगे । ऋषि ने पूछा कि आप हमारी रक्षा किस प्रकार करेंगे ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि हम आपके सिर को काटकर दूसरे स्थान पर रख देंगे और आपके ऊपर अश्व का सिर आरोपित कर देंगे । उसी से आप हमें इस मधुविद्या का ज्ञान प्रदान कर दें । जब इन्द्र आपके इस सिर को काट देंगे तो हम आपके सिर को लाकर पुन: आरोपित कर देंगे । इस प्रकार उन्होंने वैसा ही किया और ऋषि ने उन्हें मधुविद्या का ज्ञान दिया ।[३९] इस प्रकार अश्विनौ ने मधुविद्या का ज्ञान प्राप्त कर यज्ञ को पूर्ण बनाया । इसीलिये प्रत्येक यज्ञ में सोम रस के माध्यम से अश्विनौ को आह्लादित किया जाता है और इसीलिये अश्विनौ को यज्ञ के शीर्ष रूप में स्थापित किया जाता है ।[४०] इसी सन्दर्भ में नमुचि के साथ अश्विनौ द्वारा सुरापान किये जाने और इन्द्र की रक्षा करने की चर्चा भी की गयी है ।[४१] इस प्रकार श० ब्रा० में यज्ञीय परिवेशों में जहां एक ओर अन्य देवताओं के साथ अश्विनौ की महत्ता का परिचय दिया गया है, वहीं दूसरी ओर मधुविद्या के ज्ञाता रूप में प्रतिष्ठित कर उनके भिषक् रूप का महत्व भी द्योतित किया गया है । यदि हम समस्त संहिताओं में व्याप्त अश्विनौ के स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में श० ब्रा० को रख कर अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भों की समीक्षा करें तो बहुत ही कम ऐसे तथ्य हैं जिनमें कुछ नवीनता दृष्टिगत होगी । किन्तु ऋ० से लेकर यजुर्वेद तक व्याप्त उनका देवशास्त्रीय रूप श०

---

३९. वही १४. १. १-२५ ; २. १. ११.
४०. वही १४. २. १. १६-२५.
४१. वही ५. ५. ४. २५.

ब्रा० में कुछ विकसित होता हुआ ही दृष्टिगत होता है और यही विकासात्मक परम्परा अन्य ब्राह्मणों में भी दृष्टिगत होगी ।

ऐतरेय ब्राह्मण मूलत: ऋ० की परम्परा का संवाहक है । ऋ० मंत्रों में जिस प्रकार अश्विनों के स्वरूप की चर्चा की गयी है ठीक वैसे ही ऐ० ब्रा० में वर्णित यज्ञ कर्मों में मूल मन्त्रों का उद्धरण देते हुए ऐ० ब्राह्मणकार ने अश्विनों के स्वरूप को प्रदर्शित किया है । ऋ० में अश्विनों देवताओं के भिषक रूप में है, ऐ० ब्रा० भी उसी को उपस्थित करते हुये कहता है -- अश्विनौ वै देवानां भिषजावश्विनावध्वर्यू तस्मादध्वर्यू घर्मं संभरत: इति[४२] -- यहां उन्हें अध्वर्यु रूप में उपस्थित करने से उनका यज्ञीय महत्व बढ़ा दिया गया है । इसी सन्दर्भ में अश्विनों सम्बन्धी ऋग्वेदीय ऋचाओं की भी चर्चा की गयी है जिनके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उनका ज्ञान प्राप्त करने वाला स्वर्ग गामी होता है । इसी सरणि में कक्षीवान् ऋषि का उल्लेख किया गया है जो उन ऋचाओं का ज्ञान प्राप्त कर अश्विनों के प्रिय धाम स्वर्ग में गये -- 'एताभिर्हाश्विनो: कक्षीवान्प्रिय: धामोपागच्छत्स परमं लोकमजयत्'[४३] इससे जहां एक ओर अश्विनो की महत्ता का प्रदर्शन किया गया है वहीं दूसरी ओर अश्विनो से सम्बन्धित ऋचाओं की प्रशस्ति भी कही गयी है । इसीलिये तो कहा गया है --

उपाश्विनो: प्रियं धाम गच्छति ।
जयति परमं लोक य एवं वेद,[४४]

उनके भिषक् कर्म की प्रशंसा प्रवर्ग्य कर्म के माध्यम से इस प्रकार की गयी है-

---

४२. ऐ० ब्रा० १. १८.
४३. वही १. २१.
४४ वही १ २१

प्रवर्ग्य कर्म से युक्त महावीरादि के साधन में देवताओं ने प्रवर्ग्य पुरुष को हिंसित कर दिया । इससे अश्विनौ से उन लोगों ने यह कहा कि आप इसका समाधान करें, क्योंकि आप देवताओं के मध्य भिषक् हैं । अत: हिंसित किये गये प्रवर्ग्य पुरुष को भेषज के द्वारा आप अहिंसित बनायें । इस प्रार्थना को स्वीकार कर अश्विनौ ने प्रवर्ग्य पुरुष को भैषज्य प्रदान किया और इस प्रकार देवताओं के यज्ञ में अश्विनौ को अध्वर्यु का स्थान मिला ।

अग्नि के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि जहाँ वह मन्त्रों के माध्यम से समिद्ध होता है वहीं अश्विनौ के साथ या उनके द्वारा भी समिद्ध होता है और पूर्वाह्णि सवन में अग्नि के साथ अश्विनौ का आह्वान किया जाता है । पूर्वाह्ण और अपराह्ण दोनों कालों में याज्या पाठों के माध्यम से अश्विनौ का यजन किया जाता है । इसलिये स्विष्टकृद् याग में अश्विनौ का मुख्य स्थान है ।[४५]

सोमपान के सम्बन्ध में एक आख्यायिका है - सोमपान का अधिकारी सर्वप्रथम कौन बने, इसके लिये देवताओं में स्पर्धा हुयी - सबने कहा कि पहले हम पियेंगे । इस प्रकार की कामना की । वहाँ एक निर्णय लिया गया कि युद्ध में सर्वप्रथम जो विजयी होगा वही प्रथम सोमपान का अधिकारी होगा और इस प्रकार विजय क्रम में इन्द्र और वायु, मित्र और वरुण, दोनों अश्विन्, प्रथम, द्वितीय और तृतीय सोमपान के अधिकारी माने गये अर्थात् यज्ञ में इसी क्रम से सोम ग्रहों या सोम कपालों की स्थापना

---

४५. तमश्विनेत्य पराह्ये यजत्यग्ने वीट्टीत्यनुवषट् करोति स्विष्टकृद्भाजनम् ।। - ऐ० ब्रा० १. १२.

की जाती है और इन देवताओं को सोमपान कराया जाता है।[४६]

अश्विनौ के युग्म रूप का तादात्म्य दो बाहुओं, दो अरणियों के साथ उपस्थित करते हुये यह कहा गया है कि यज्ञ में जो दो बाहुओं और दो अरणियों के द्वारा अग्नि मन्थन होता है वह अश्विनौ के कारण होता है, क्योंकि उनका युग्म स्वरूप है और अग्नि का यह आश्विन रूप है।[४७]

जिस प्रकार ऋ० के कुछ सन्दर्भों में अश्विनौ के रथ में गर्दभ को जुड़े हुये कहा गया है,[४८] वैसे ही यहाँ ऐ० ब्रा० में यह कहा गया है कि अश्विनौ ने गर्दभ द्वारा खींचे जाते हुये रथ से विजय प्राप्त की और इस प्रकार वे अपने को सर्वत्र व्याप्त करते हैं, और उन्हें 'मृतजवौ' कहा जाता है।[४६] इसी सन्दर्भ में उनका अश्व के तादात्म्य के साथ उन्हें द्विरेतस् अभिधान से युक्त किया गया है।[५०]

----

४६. देवा वै सोमस्य राज्ञोऽग्रपेये न समपादयन्नहं प्रथमः पिबेयमहं प्रथमः पिबेयमित्येवाकामयन्त ते संपादयन्तो ब्रुवन्हन्ताऽऽजिमयाम स यो न उज्जेष्यति स प्रथमः सोमस्य पास्यतीति तथेति त । अथ विजय-क्रमेण सोमपान क्रमं दर्शयति - तौ सहैवेन्द्रवायू उदजयतां सह मित्रा-वरुणौ सहाश्विनौ त एषामेते यथोज्जितं भक्षा इन्द्रवाय्वोः प्रथमोऽथ मित्रावरुणयोरथाश्विनोः इति ।

- ऐ० ब्रा० २. २५.

४७. अश्विनौ द्वित्वाद्धस्तद्वयेनारणि द्वयेन च मन्थनमस्याग्नेराश्विनं रूपम् - ऐ० ब्रा० ३. ४.

४८. ऋ० १. ३४. ६ ; १-११६. २ ; ८. ८५. ७.

४६. 'गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम्' - ऐ० ब्रा० ४. ६.
'तदश्विना उदजयतां रासभेन' - कौ० ब्रा० १८. १.

५०. ऐ० ब्रा० ४. ६.

अश्विनौ को सप्त छन्दों के साथ जोड़कर उनका तादात्म्य सप्त लोकों से उपस्थित किया गया है और ये सभी लोक देव लोक कहे जाते हैं, जो लोग उन सब छन्दों को अश्विनौ, उषस् और अग्नि को जानते हैं, वे लोग अपने देव लोक को समर्पित करते हैं - सर्वेषु देवलोकेषु राध्नोति[५१]। सप्त छन्दों के माध्यम से प्रातःकाल आगमन करने वाले अग्नि, उषस् और अश्विनौ देवता बुलाये जाते हैं इसलिये यहाँ उन्हें स्वर्गलोक से सम्बन्धित माना गया है[५२] - याज्या के अन्तर्गत त्रिष्टुप्, गायत्री आदि छन्दों के प्रतीक रूप में अश्विनौ और वायु का आह्वान किया जाता है[५३]।

इस प्रकार ऐ० ब्रा० में प्रायः ऋ० की मूल ऋचाओं के उद्धरण के पश्चात् ही अश्विनौ के स्वरूप के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है। वैसे हर विकासशील साहित्य की परम्परा से आकांक्षा यही रहती है कि उसमें कुछ नवीनता मिलेगी। किन्तु ऐ० ब्रा० तक आते-आते भी अश्विनौ के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई मूल बात नहीं प्राप्त होती जो ऋ० में न प्राप्त होती हो।

----

५१. ऐ० ब्रा० ४. ६.

५२. एते वाव देवाः प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ।
    न एते सप्तभिः सप्तभिश्छन्दोभिरा गच्छन्ति ।।
    - ऐ० ब्रा० २. १५.

५३. अश्विना वायुना युवं सुद -
    क्षाभा पिबतमश्विनोति,
    - वही ४. ११.

ऋग्वेद संहिता का दूसरा ब्राह्मण शांखायन ब्राह्मण है जिसमें अर्थवाद के माध्यम से अनेक दार्शनिक तत्वों का विवेचन किया गया है। उन्हीं दार्शनिक तत्वों के अन्तर्गत कुछ सन्दर्भों में अश्विनौ की चर्चा भी की गयी है। जैसे एक स्थान पर यह कहा गया है कि प्रजा या सन्तान की कामना वाला व्यक्ति अश्विनौ सम्बन्धी ऋचाओं का ध्यान करता है और उसे वीर पुत्रों की प्राप्ति होती है।[५४] अश्विनौ सम्बन्धी जिन ऋचाओं का ध्यान किया जाता है वह गायत्री छन्द में है। गायत्री या गान का सम्बन्ध प्राण से है। इस प्रकार प्राणों का सम्बन्ध अश्विनौ के साथ जोड़ा गया है। सम्पूर्ण शरीर में प्राण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है इसी के माध्यम से बल, वीर्य की उत्पत्ति होती है, इसीलिये परोक्ष रूप में प्राण ही सन्तान कारक या प्रजा कारक है। अत: प्राणों के साथ अश्विनौ को संलग्न कर उन्हीं के माध्यम से प्रजाओं की कामना की जाती है।

शां० ब्रा० के दूसरे सन्दर्भ में यज्ञ की समृद्धि के लिये अभिषुत सोम का सिंचन किया जाता है जिसमें जल और अश्विनौ का बहिष्पवमान के साथ सम्बन्ध औषधि और शान्ति की प्राप्ति के लिये उपस्थित किया गया है। सोम और जल दोनों शान्ति और भेषज के रूप में है, अश्विनौ भैषज्य को प्रदान करने वाले है, अत: 'सोम, जल और अश्विनौ' का त्रिकोणीय सम्बन्ध एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित है, इसीलिये शान्ति और भेषज की प्राप्ति के लिये अश्विनौ, सोम और जल की स्तुति की जाती है तथा बहिष्पवमान में अश्विनौ की स्तुति आप: या जल देवियों के साथ

---

५४. शां० ब्रा० ८. ५.

की जाती है और दोनो को सोमरस के साथ सिञ्चित किया जाता है[५५]।

इसी बहिष्पवमान के अन्तर्गत सोम का पूर्व दिशा में आहरण करते हुये वरुण और अश्विनो की स्तुति की जाती है जिसमें दोनों को 'राजन्' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। वरुण परम्परया 'राजन्' शब्द से अभिहित किये जाते हैं,जबकि अश्विनो का यह अभिधान बहुत प्रसिद्ध नहीं है। सोम को भी इसी सम्बन्ध में 'राजन' शब्द से सम्बोधित किया गया है। अत: यहां वरुण, सोम और अश्विनो - तीनों एक ही अभिधान को प्राप्त कर एक दूसरे के समीप पहुंच जाते हैं। यद्यपि मूलत: सभी देवता एक दूसरे के गुणों से युक्त हैं अथवा एक के गुण सभी पर आरोपित किये जाते हैं किन्तु ब्राह्मणों की यज्ञीय परम्परा विनियोगों के माध्यम से और अधिक समीप ला देती है[५६]। इसी सन्दर्भ में सोम राजा के रूप में है तो वहीं वह प्राण के रूप में भी कहा गया है, जबकि अश्विनो होतृ रूप में है, तो होतृ का तादात्म्य आत्मा के साथ उपस्थित किया गया है। इस प्रकार अश्विनो और सोम, आत्मा और प्राण के रूप में प्रतिष्ठित किये गये हैं -- आत्मा वै यज्ञस्य होता प्राण: सोमा - -- - ---[५७] शां० ब्रा० में 'विश्वेदेवा' सम्बन्धी शसंन कर्मों में कुछ युग्म देवताओं को स्थान दिया गया है,जिसमें अश्विनो भी है। इन सभी का तादात्म्य किसी न किसी वस्तु से उपस्थित किया गया है। प्रथमत: इनका तादात्म्य ऋतुओं तथा संवत्सर से, द्वादश मास, पंच ऋतु, तीन लोक और आदित्य मिल कर २१

---

५५. वही ८. ७.
५६. वही ६. ६.
५७. वही ६. ६.

तत्त्व होते हैं और इन्हीं इक्कीस तत्त्वों के अन्तर्गत समस्त सृष्टि समाहित है। अश्विनौ आदि अनेक देवताओं का युग्म इन तत्त्वों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। जो व्यक्ति इन समस्त तत्त्वों तथा देवताओं के सम्बन्ध को जानता है वह इनके सायुज्य को प्राप्त करता है।[५८]

शां० ब्रा० के अन्य सन्दर्भों में छन्दों के साथ देवताओं का सम्बन्ध जोड़ा गया है। जहां गायत्री, विराज, त्रिष्टुप आदि छन्दों के द्वारा वषट्कार किया जाता है और इस वषट्कार के द्वारा अश्विनौ, वायु आदि देवताओं को प्रसन्न कर यजमान को स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित किया जाता है क्योंकि अश्विनौ आदि देवताओं का सम्बन्ध स्वर्ग से है। इसी प्रकार त्रिष्टुप आदि छन्द, बल और वीर्य के रूप में है। जिससे इन छन्दों के माध्यम से इन देवताओं का आह्वान या वषट्कार करना यजमान में बल और वीर्य का आधान करना है।[५९] इस प्रकार शां० ब्रा० में अश्विनौ के दार्शनिक पक्ष का विवेचन अधिक है जिसमें उनके जागतिक या स्थूल रूप की परिकल्पना नहीं प्राप्त होती।[६०] कुछ अन्य सन्दर्भों में भी अश्विनौ का नाम आया है जो उद्धृत की गयी ऋचाओं के साथ संयुक्त है और उससे अश्विनौ के स्वरूप पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता।

यजुर्वेद की प्रथम शाखा शुक्ल यजुर्वेद का मुख्य ब्राह्मण शत० ब्रा० है जिसके अन्तर्गत हमने अश्विनौ के स्वरूप की विवेचना इसके पूर्व की है। इसी की दूसरी शाखा कृष्णयजुर्वेद की तै० सं० से सम्बन्धित ब्राह्मण तै० ब्रा० है जिसके अन्तर्गत अश्विनौ सम्बन्धी अनेक सन्दर्भों के माध्यम से

---

५८. वही १४. ५.

५९. वही १८. ५.

६०. वही ६. १४ ; १८. १ ; २६. १५.

हम अश्विनौ के स्वरूप को समझने का प्रयास कर सकते हैं। वैसे तो संहिताओं से लेकर ब्राह्मणों तक प्राय: कुछ ही विशिष्ट धाराओं का प्रवाह परिलक्षित होता है, जिसमें हम विभिन्न देवताओं के स्वरूप को शैलीगत आवर्तन के माध्यम से देख सकते हैं। उनके स्वरूप के अनेक मूल पक्षों का बार-बार आवर्तन बहुत कम नवीन सन्दर्भों को उपस्थित करता है, किन्तु पृथक्-पृथक् रूप में प्रत्येक संहिता या ब्राह्मण पर विचार करने पर देवताओं के सम्बन्ध में उस विशिष्ट ग्रन्थ में कुछ विशिष्ट धारणाओं की निष्पत्ति हो सकती है। इसलिये हम पृथक्-पृथक् रूप में ही यहाँ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

तै० ब्रा० में अश्विनौ के युग्म स्वरूप का प्रथमत: भिषक् रूप ही प्रस्तुत किया गया है। उन्हें ग्राम और सेना के रूप में प्रस्तुत करते हुये उनके लिये औषधियों को प्रदान किया जाता है। यहाँ ग्राम और सेना की बहुत अच्छी व्याख्या दी गयी है और कहा गया है कि --

'एक स्थान निवासी जनसंघ: ग्राम: ।[६१]
परराष्ट्रं गच्छ जनसंघ: सेना ॥

इस प्रकार जनसमूह और सेना के भिषक् रूप में अश्विनौ को एक नये सन्दर्भ के साथ जोड़ा गया है। अभी तक अश्विनौ सर्व सामान्य के भिषक् रूप में वर्णित किये गये थे किन्तु तै० ब्रा० में यह सन्दर्भ[६२] उन्हें जहाँ 'अश्वयुजौ' कहता है वहीं 'ग्राम: परस्तात्सेनाऽवस्तात्' कहते हुये उनके युग्म की एक नयी अवधारणा भी प्रस्तुत करता है। उन्हें ग्राम

---

६१. तै० ब्रा० १. ५. १. ५.
६२. वही १. ५. १. ५.

और सेना के साथ जोड़कर उनके व्यक्तित्व को सामान्य जन के समीप लाकर उपस्थित करता है । 'अश्व युजौ ' होने से ही वे सेना के साथ संयोजित किये गये हैं क्योंकि सेनाओं का सम्बन्ध सीधे-सीधे अश्वों के साथ जुड़ा रहता है और सेना में मनुष्यों तथा अश्वों दोनों की चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है, इसलिये चिकित्सक रूप में अश्विनौ का आह्वान किया जाता है ।

विभिन्न देवताओं के पुरोडाश आदि के विधान में तै० ब्रा० में अश्विनौ के लिये धान का विधान किया है क्योंकि धान औषधि रूप है जिसका भिषक रूप अश्विनौ से घनिष्ठ सम्बन्ध है । इसीलिये उन्हें पुरोडाश रूप में धान प्रदान किया जाता है ।[63] जहाँ वे मनुष्यों के भिषक रूप हैं वहीं देवताओं के अन्तर्गत अथवा देवताओं के भिषक् रूप भी है -- 'अश्विनौ वै देवानां भिषजौ ताभ्यामेवास्मै भेषजं करोति '[64] उन्हें धूम्र वर्ण की बलि दी जाती है । यह धूम्र वर्ण की औषधियों से सम्बन्धित है । अत: भेषज रूप है, इसलिये भिषक् रूप अश्विनौ के लिये धूम्र की बलि दी जाती है ।[65] इसी के साथ अश्विनौ के लिये छाग की बलि का भी

----

६३. तमश्विनौ धानाभिरभिषज्यताम् । पूषा करम्भेण । भारती परिवापेण । मित्रावरुणौपयस्यया ।

- तै० ब्रा० १. ५. ११. २.

यदश्विभ्यां धाना: - - - - - - तै० ब्रा० १. ५. ११. ३.

६४. वही १. ७. ३. ५.

६५. 'अश्विना धूम्रमालभते: '

- वही १. ८. ४. ६.

विधान किया गया है जिसमें घूम्र रंग या वर्ण की बात स्पष्ट होती है।[६६] इस होम में जहाँ एक ओर अश्विनौ का भिषक् रूप स्पष्ट होता है वहीं उनके साथ अग्नि, सरस्वती,इन्द्र,सोम, सवितृ, वरुण, वनस्पति आदि का सायुज्य अश्विनौ का इन देवों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्त करता है। इस सन्दर्भ में अग्नि को 'भेषज' वरुण को 'भिषजांपति' और वनस्पति को भेषज का प्रिय मार्ग कहकर अश्विनौ का इन सबके साथ भिषक् रूप में उपस्थित होना और अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अश्विनौ मूलरूप से भेषज के स्वामी हैं और उस भेषज को अन्य देवताओं के साथ सम्पृक्त करना उनसे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है।[६७]

यज्ञ को इन्द्र का स्वरूप माना गया है,जिसका औषधियों के माध्यम से विस्तार किया जाता है, औषधियों का सम्बन्ध अश्विनौ से है, इसीलिये औषधियों से विस्तार करने के कारण यज्ञ रूपी इन्द्र के विस्तारक अर्थात् उसके पोषक या संवर्धक रूप में अश्विनौ को स्वीकार किया गया है। इसीलिये तै० ब्रा० में कहा गया है -- अश्विना यज्ञ सविता सरस्वती। इन्द्रस्य रूप वरुणो भिषज्यन्।'[६८] जहाँ एक ओर छाग, मेषादि की बलि द्वारा अश्विनौ और सरस्वती को प्रसन्न किया जाता है वहीं अश्विनौ और सरस्वती सौत्रामणि यज्ञ में सोम और सुरा के द्वारा इन्द्र का संवर्धन करता है। इस क्रम को स्वीकार करने पर यह कहा जा सकता है कि प्रथमत: ऋत्विक या यजमान अश्विनौ और सरस्वती को संवर्धित करते हैं और उसके पश्चात् अश्विनौ और सरस्वती इन्द्र का संवर्धन करते हैं। इसलिये इन सबका आह्वान सोम रस के अभिषव के

----

६६. स्वाहा छागमश्विभ्याम् - - - - - - - तै० ब्रा० २. ६. ११. ६.

६७. वही २. ६. ११. ६.

६८. वही २. ६. ४. १.

पश्चात् एक साथ किया जाता है जिसमें सोमरस के बिन्दुओं को अमृत रूप में मानकर इन सबके लिये उसका धारण किया जाता है और तब इनका आह्वान मधुमय सोमपान के लिए और हर्षित होने के लिये किया जाता है।[६९]

सरस्वती के साथ अश्विनौ को जिह्वा को पवित्र माना गया है[७०] और उनके प्रत्येक अङ्ग भैषज्य से युक्त कहे गये हैं।[७१] वे अपने समस्त अङ्गों के द्वारा सरस्वती का आधान करते हैं अर्थात् अपने साथ उसको सम्पृक्त करते हैं और इस प्रकार दोनों मिलकर सोमरस के माध्यम से इन्द्र में अमृत और ज्योति का आधान करते हुए उसे शतायु बनाते हैं।[७२] इस प्रकार यहाँ इन्द्र का शतायु होना यजमान का ही शतायु होना है, जिसे अश्विनौ और सरस्वती अपने भैषज्य के माध्यम से स्वस्थ और दीर्घायु करते हैं, इसीलिए आगे यह कहा गया है कि अश्विनौ यज्ञ वर्धक और धनदाता के रूप में है। इसीलिये उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे यज्ञ को वर्धित करें, यजमान में धन का आधान करें और उसके समस्त पशु आदि

---

६९. शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः। प्रस्थिता वो मधुश्चुतः। तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा। जुषन्तां सौम्यं मधु। पिबन्तु मदन्तु वियन्तु सोमम्। होतर्यज, तै० ब्रा० २.६.११.१०.

७०. वही २. ६. ४. ४.

७१. वही २. ६. ४. ६.

७२. "इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुः। चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधाना"
- तै० ब्रा० २. ६. ४. ६.

की रक्षा करें। उनके साथ इस कर्म में पूषन का भी नाम जोड़ा गया है।[73]

अश्विनौ को तेजस् रूप कहा गया है या यह कहें यज्ञ कर्ता के तेजस् रूप में अश्विनौ और वीर्य रूप में सरस्वती और बल रूप में इन्द्र हैं। औषधियों में सोमरस के रूप में जो तेजस रहता है उसे अश्विनौ प्राप्त करते हैं, उसी तेजस् को वीर्य रूप में वह सरस्वती में निहित करते हैं, वह सरस्वती इन्द्र को सोमपान कराती है, जो इन्द्र में बल उत्पन्न करता है। इस प्रकार औषधियों, सोमरस, अश्विनौ, सरस्वती और इन्द्र का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।[74]

जिस प्रकार कोई कुशल बुनकर अपने दक्ष हाथों के द्वारा तसर बुनता है --'नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम'[75] - वैसे ही सरस्वती अपने मन के द्वारा सुन्दर प्रकाश या धन का वयन करती है और अश्विनौ के लिए अपने दर्शनीय शरीर को बुनती है अर्थात् उसको अनावृत करती है और तत्पश्चात् सोमरस का आस्राव करती है।[76] इस प्रकार अश्विनौ और सरस्वती सम्बन्ध पति-पत्नी के रूप में परिलक्षित होता है जो एक दूसरे के साथ सम्पृक्त होकर वृष्टि रूपी यज्ञ का संवर्धन करता है।

---

७३. वही २. ५. ४. ६.

७४. वही २. ६. १. ५.

वही २. ६. ३. १.

७५. वही २. ६. ४. २.

७६. सरस्वती मनसा पेशलं वसु। नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः।
रसं परिस्रुता न रोहितम् नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम -
- तै० ब्रा० २. ६. ४. २.

जहाँ अनेक सन्दर्भों में अश्विनी को अध्वर्यू रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और 'अश्विना अध्वर्यू'[77] या अश्विनाऽऽध्वर्यम्[78] जैसे अनेक वाक्यांशों का प्रयोग कर उनके आध्वर्यव कर्म पर विशेष बल दिया गया है वहीं ऋ० से लेकर अवान्तरकालीन परम्पराओं तक उन्हें 'दैव्या होतारा'[79] के रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया है।[80] उनका यह होतृ रूप यज्ञ के होत्र द्वारा यजन करने के कारण कहा गया है। जब-जब अध्वर्यू अपने कर्मों से अश्विनों को संलग्न करता है तब-तब वे अध्वर्यू के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं और जब होतृ कर्म से उनका सम्बन्ध होता है तब वे होता के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, किन्तु इन सब रूपों से उठकर उनका भिषक् रूप प्रत्येक सन्दर्भ में वर्तमान रहता है और वे 'दैव्या होताराभिषजा'[81] के रूप में वर्तमान रहता है।

वे नियमित काल में यज्ञ के वाहक हैं तथा अग्नि आदि देवताओं के साथ सोम पायी है। इसीलिये यज्ञ में उनके सोमपान के लिये 'अश्विन-ग्रह' की स्थापना की जाती है और इसी के साथ उनका आह्वान करते हुये कहा

---

७७. वही ३. २.३.१ ; ३. २. ४. ६.

७८. वही २. ६. १०. ५ ; ३. ६. १३. १.

७९. यजु० २१. १८ ; २७. १८ ; २६. ३२ इत्यादि.
ऋ० १. ७३. ८ ; १४२. ८ ; १८८-७.
२. ३. ७ ; ३. ४. ७ ; ७ ८
५. ५. ७ ; १० ; ६६. १३ ; ११०. ७.

८०. तै० ब्रा० २. ६. १२. ४.

८१. वही २. ६. १२. ३.

जाता है - अश्विना पिबत सुतम् । दीधग्नीं शचिव्रता ऋतुना यज्ञवाहसा,[८२] इस सोमपान के लिए वे रात्रि में उषस् के साथ दिन में इन्द्र के साथ और सायंकाल में इन्द्र से सम्बन्धित शक्तियों के साथ सोमपान के लिए आगमन करते हैं।[८३] किन्तु इसके साथ ही प्रात:काल में उनका आह्वान अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम, रुद्रादि देवताओं के साथ किया जाता है, जहाँ पुरोऽनुवाक्या के रूप में निम्नलिखित मन्त्र का पाठ किया जाता है --

> प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
> प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिम् प्रात: सोममुत रुद्रं हुवेम ।।[८४]

वे जहाँ एक ओर भिषक हैं, वहीं हव्य-वाहक, दूत यज्ञ के रक्षक आदि के रूप में भी उनके स्वरूप को उपस्थित किया गया है। देवताओं के हव्य-वाहक दूत आदि के रूप में प्राय: सर्वत्र अग्नि की प्रतिष्ठा है। ऐसी स्थिति में यह प्रतीत होता है कि उनके यह सभी अभिधान धीरे-धीरे अग्नि को स्थानान्तरित कर उनके ऊपर आरोपित किये गये हैं और उनके लिये यह कहा गया है कि --

> ' यो देवानां भिषजौ हव्यवाहौ विश्वस्य दूतावमृतस्य गोपौ ।
> तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयाताम् नमोऽश्विभ्यां कृणुमोऽश्वयुग्भ्याम् ।।[८५]

----

८२. वही २.७.१२.१.

८३. उषासा नक्तमश्विना । दिवेन्द्र सायमिन्द्रियै: । संजानाने सुपेशसा । सम जाते सरस्वत्या - तै० ब्रा० २. ६. १२. ३.

८४. वही २. ८. ६. ७.
यजु० ३४. ३४. ऋ० ७. ४१. १.

८५. तै० ब्रा० ३. १. २. ११.

अर्थात् जो दोनों देवताओं के भिषक् हैं और हवि का वहन करने वाले हैं, समस्त देवताओं के दूत हैं, अमृत के रक्षक हैं, वे दोनों नक्षत्र रूप सोम का सेवन करते हुये आगमन करें । अश्वयुक्त उन दोनों अश्विनौ को नमस्कार है ।

यहां 'नक्षत्रम् जुजुषाणा' एक विशिष्ट प्रयोग है ।
नक्षत्र नश् व्याप्तौ धातु से निष्पन्न है, जो सबको व्याप्त करे या सबमें व्याप्त है । यहां यह सोम के लिये प्रयुक्त हुआ है, सोम धीरे-धीरे चन्द्रमा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है,जो अपनी किरणों के माध्यम से आकाश और धरती में व्याप्त होता है । जिस प्रकार नक्षत्र नश् व्याप्तौ से है वैसे ही अश्विन् 'अशु व्याप्तौ' से है । अतः दोनों में एक ही अर्थ का साम्य होने के कारण यहाँ नक्षत्र का विशिष्ट रूप से प्रयोग कर अश्विनौ की सर्व व्यापकता को परोक्ष रूप से व्यक्त किया गया है ।

अश्विनौ के सुन्दर रूप की चर्चा बार-बार आयी है । उन्हें 'सुपेशस्' और 'हिरण्यवर्तनी' बार-बार कहा गया है । स्वर्णिम आभरणों से युक्त होकर वे गमन करते हैं और उनके साथ हविष्मति सरस्वती इन्द्र की शक्ति संवर्धन के लिए निरन्तर सलामिनी होती है।[८६] अश्विनौ को तेजस् स्वरूप और चक्षु का रक्षक कहा गया है।[८७] ऐसे ही सन्दर्भ धीरे-धीरे अश्विनौ के युगल रूप के साथ जुड़कर अवान्तरकाल में उन्हें तमाम युग्मों से सम्बद्ध करते गये हैं । जिनमें दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो नासिकायें, दो प्राण आदि अनेक युग्म शारीरिक स्तर पर उन्हें देवत्व प्रदान करती है । जो उनसे सम्बन्धित देवशास्त्र को और अधिक व्यापक बना देता है । तै० सं० में 'श्रोत्रं न कर्णयोर्यशः' मन्त्रांश के द्वारा दोनों

---

८६. वही २. ६. १३. २.

८७. वही २. ६. १४. १.

कानों से यश के श्रवण की बात अश्विनौ के साथ जोड़ी गयी है और धीरे-धीरे वे दो कानों के प्रतीक होते चले गये । जिस प्रकार श्रोत्र यश के सुनने के कारण या साधन होते हैं, वैसे ही देवताओं में यश के कारण के रूप में अश्विनौ को स्थान दिया गया है।[८८]

तै० सं० में एक स्थान पर देवताओं के लिये विभिन्न वनस्पतियों को हवि रूप में प्रदान करने की बात कही गयी है । इन्द्र के लिए वनस्पति, सरस्वती के लिये सुप्पिपल और अश्विनौ के लिये हिरण्य पत्र । उनके लिये हिरण्यपत्र का यह विधान तै० ब्रा० भी कर रहा है,[८९] जिससे सम्भवत: उनके हिरण्यवर्ण का साम्य है ।

श० ब्रा०, तै० ब्रा०, ऐ० ब्रा०, शां० ब्रा० आदि ब्राह्मणों के पश्चात् अन्य ब्राह्मणों में अश्विनौ सम्बन्धी जो अवधारणायें प्राप्त हैं, उनमें प्रथमत: तो कोई विस्तार नहीं मिलता और दूसरी बात यह है कि नयी बातें बहुत कम हैं ।

ताण्ड्य ब्राह्मण में अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भ नाममात्र के हैं ।[९०] एक सन्दर्भ में अश्विनौ के रथ की चर्चा है, जिसे 'अहिंसित' कहा गया है,[९१] दूसरे सन्दर्भ में पूर्व सन्दर्भों की भाँति उनकी बाहुओं की प्रशंसा है । इन सभी में एक सन्दर्भ अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है, जिसमें अश्विनौ को को देवताओं में प्रथम कहा गया है । इसलिये युद्ध में सर्वप्रथम उन्हीं को

---

८८. तै० ब्रा० २. ६. १४. २.
८९. वही २. ६. १४. ५.
९०. तां० ब्रा० १. ७. ७.
९१. वही १. ८. १.

दौड़ते हुये बतलाया गया है, जहाँ उनकी महत्ता का प्रदर्शन है[६२]। इसी सन्दर्भ में अश्विन शस्त्र सम्बन्धी आख्यायिका भी है, जहाँ देवताओं के द्वारा अश्विनों को अपने साथ यज्ञ में भाग प्रदान किये जाने की बात कही गयी है[६३]। अन्तिम सन्दर्भ[६४] दधीची के पुत्र च्यवन ऋषि की आख्यायिका से सम्बद्ध है, जिन्हें अश्विनों का प्रिय कहा गया है। वृद्ध च्यवन को अश्विनों ने सामन् के द्वारा जरा से मुक्त किया। जहाँ अन्य वैदिक सन्दर्भों में भेषज् या ह्रद स्नान आदि का उल्लेख है, वहीं ताण्ड्य ब्राह्मण में सम्भवत: सामवेद से सम्बन्धित होने के कारण अन्य परम्परागत आख्यायिकाओं से कुछ भिन्न होते हुये, सामन् की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये, च्यवन के जीर्णत्व का उसी के माध्यम से दूर करने की बात कही गयी है।

सामवेद से सम्बन्धित अन्य ब्राह्मण जै० ब्रा० में हमें अश्विनों सम्बन्धी च्यवन-सुकन्या आख्यान का सुव्यवस्थित रूप प्राप्त होता है[६५]। जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं[६६]। यह आख्यान श० ब्रा० में[६७] उद्धृत च्यवन-आख्यान के समान ही है, परन्तु श० ब्रा० से साम्य होते हुये भी यहाँ कुछ भिन्नता प्रतीत होती है, जिसका संक्षिप्तोल्लेख ही हम कर रहे

---

६२. वही ६. १. ३६.

६३. वही ६. १. ३६.

६४. वही १४. ६. १०

६५. जै० ब्रा० ३-१२१-१२८

६६. द्र० 'अश्विनों के कार्य' पृ० १२०-१६४

६७. श० ब्रा० ४. १. ५. सम्पूर्ण

हैं । श० ब्रा० के अनुसार शर्याति स्वयं अपनी कन्या च्यवन को प्रदान करता है, परन्तु जै० ब्रा० में शर्याति को अपनी प्रजा के कल्याण के लिये सुकन्या के साथ विवाह की च्यवन पुरस्कृत शर्त स्वीकार करनी पड़ती है । श० ब्रा० में च्यवन को पुनर्यौवन प्रदान करने की प्रार्थना स्वयं सुकन्या अश्विनौ से करती है,जबकि जै० ब्रा० में यह प्रार्थना स्वयं ऋषि की ओर से है । शेष आख्यान श० ब्रा० के समान हैं ।

अथर्व० से सम्बन्धित गो० ब्रा० में अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भ अत्याल्प है । एक स्थान पर अश्विनौ और पूषन् की बाहुओं के द्वारा सूर्य रश्मियों का ग्रहण करते हुये कहा गया है । सूर्य का दर्शन नेत्रों के द्वारा किया जाता है और उसमें यह भय उत्पन्न होता है कि दर्शन करते हुये कहीं सूर्य की रश्मियां नेत्रों का हनन न कर दें, इसलिये दोनों बाहुओं को उठाकर सूर्योपस्थान किया जाता है और बाहुओं का तादात्म्य अश्विनौ और पूषण देवता के साथ उपस्थित करते हुये सूर्य रश्मियों का ग्रहण किया जाता है ।[६८] अन्य सन्दर्भ में पूर्व सन्दर्भों की भांति उन्हें देवताओं का भिषक् कहा गया है --'अश्विनौ वै देवाना भिषजौ'[६६] इसी सन्दर्भ में अश्विनौ को सरस्वती के साथ समन्वित करते हुये सौत्रामणी यज्ञ में उन

---

६८. सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इत्यब्रवीन्न हि सूर्यस्य चक्षुः किंचन हिनस्ति सोऽबिभेत्प्रतिगृह्णन्तं मा हिंसिष्यतीति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूतः प्रशिषा प्रतिगृह्णामि इत्यब्रवीत् ।

- गो० ब्रा० २. १. २.

६६. वही २. ५. १०.

दोनों के माध्यम से इन्द्र का सोम रस से अभिषेचन किया जाता है, जिससे कि इन्द्र भैषज्य प्राप्त करके देवताओं में श्रेष्ठ हो गया और जो व्यक्ति इस रहस्य को जानते हुये सौत्रामणि यज्ञ में इन्द्र का अभिषेचन करता है वह मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है।[100]

इस प्रकार इन ब्राह्मणों में जहाँ एक और संहिताओं में प्राप्त अश्विनौ के स्वरूप के सातत्य का निर्वाह किया गया है, वहीं अनेक नयी बातें भी जुड़ती चली गयी हैं।

---

१००. ऽस्मा एतदश्विनौ च सरस्वती च यज्ञं समभरन्त्सौत्रामणिं भैषज्याय त्येन्द्रमभ्यषिञ्चंस्ततो वै स देवानां श्रेष्ठोऽभवच्-श्रैष्ठ्यं स्वानां चान्येषां च भवति य एवं वेद यश्चैवं विद्वान्त्सौत्रा-मण्याभिषिच्यते।

– वही २. ५. ६.

अष्टम अध्याय

-o-

आरण्यकों एवं उपनिषदों में अश्विनौ

ब्राह्मणगत सन्दर्भों में अश्विनौ के जिस रूप की प्रतिष्ठा है उसी का सूक्ष्म विस्तार हमें आरण्यकों में भी मिलता है। आरण्यकों में ऐ० आ० में मात्र एक सन्दर्भ में अश्विनौ की चर्चा है जिसमें अश्विनौ के माध्यम से वाणी का आधान और अन्न का अवरोहण कहा गया है[1]। ऋग्वेद का ही दूसरा आरण्यक शां० आ० है जिसमें मात्र एक सन्दर्भ में अश्विनौ सम्बन्धी बलि का विधान सारघ मृग के मांस के साथ मधु और दुग्ध की बलि का विधान है जिससे मधुमय वाणी को बोलने की कामना की जाती है[2]।

इसके अतिरिक्त मात्र तै० आ० में अश्विनौ सम्बन्धी कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं। वहां प्रवर्ग्य कर्म में अग्नि आदि देवताओं के साथ अश्विनौ का सोमपान के लिये आह्वान किया गया है[3]। अश्विनौ से प्रवर्ग्य द्रव्य या घर्म अथवा सोम रस की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है --

`अश्विनाघर्मं पातमिति वषट्कृते जुहोति`[4] - अश्विनौ को

----

१. ऐ० आ० १. १. ४.

२. अश्विना सारघेण मांसं मधान्मधुनऽपय: ।
यथा मधुमतीं वाचमा वदानि जनेषु ।। - शां० आ० १२. २.

३. तै० आ० ५. ८. ३.

४. वही ४. ६. २. ३.

जगत या विश्व का स्वामी कहा गया है। यह भूमि सहस्र वृच है और परम व्योम भी सहस्र वृच है और अश्विनौ इसके भोक्ता रूप में है। साथ ही इस विराट् विश्व के वे रक्षक भी हैं। इस प्रकार अश्विनौ का महत्व यहाँ समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त या उसकी धारक अथवा उसकी भोक्तृ शक्ति के रूप में है।[5] यही नहीं वे समस्त जगत के निधान और विचित्र रूप में आकाश और पृथिवी के ऊपर मित्र रूप में संचरण करते हैं। दोनों में एक रासभ रूप है और दूसरा अश्व रूप है।[6] वे समस्त शुभ के स्वामी हैं और सूर्या के साथ निवास करने वाले हैं। यहाँ अश्विनौ के गर्दभ और अश्व के दो रूपों का विभाजन ध्यान देने योग्य है, क्योंकि बहुत कम ऐसे सन्दर्भ हैं जहाँ इस प्रकार की विभाजन रेखा खींची गयी हो। अश्विनौ को मेघ के रूप में समस्त सृष्टि में गर्भ का आधानकर्ता कहा गया है। मेघ जल वृष्टि के द्वारा धरती पर वनस्पतियों तथा अन्नादि का उत्पादक है। जल बिन्दुओं के माध्यम से वह पृथिवी पर समस्त औषध्यादि में अपने वीर्य का आधान करता है। अश्विनौ मेघ रूप है इसलिये उनको भी सृष्टि का कारण माना गया है। इसीलिये उन्हें प्रतिदिन गर्भ का आधान करते हुये बताया गया है।[7] अश्विनौ को यज्ञ में औषधियाँ प्रदान की जाती है ; क्योंकि उन्हें देवताओं के भिषक् रूप में स्वीकार किया गया है[8] -- `अश्विनौ वै देवानां भिषजौ। ताभ्यामेवास्मै भेषजं करोति` इसी प्रकार अश्विनौ को देवताओं का अध्वर्यु भी कहा गया है --`अश्विनौ हि देवानामध्वर्यू[9]

---

5. सहस्रवृदियं भूमिः। परं व्योम सहस्र वृत अश्विना भुज्यु नासत्या। विश्वस्य जगतस्पती, इति - वही १.१०.१.
6. वही १.१०.२.
7. `एवमैतो स्थौ अश्विना। ते एते द्युः पृथिव्योः अहरहर्गर्भं दधाते ।।` - वही १.१०.४.
8. वही ५.७.३.
9. वही ३.३.१ ; ५.२.५ ; ५.७.१.

अश्विनौ को यज्ञ का शिरस् कहा गया है इसीलिये सर्वप्रथम उन्हीं दोनों का वषट्कार किया जाता है।[10] यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि आख्यायिकाओं के अन्तर्गत प्राय: अश्विनौ को यज्ञ में सोमपान का अधिकारी नहीं माना गया है और च्यवन ऋषि के द्वारा मधुविद्या प्राप्त करने पर ही उन्हें सोमपान का अधिकारी बनाया गया, जहां इन्द्र उनके प्रथम विरोधी के रूप में थे। किन्तु मन्त्रों में प्राय: यह बात स्पष्ट की गयी है कि अश्विनौ यज्ञ के बाहु रूप में है या अध्वर्यू रूप में है, अथवा उन्हें प्रथम वषट्कार प्राप्त होता है। इस प्रकार मूल मन्त्रों में और उनसे जुड़ी अवान्तरकालीन आख्यायिकाओं में भेद दिखायी देता है। जिसका परिणाम इस सन्देह को उत्पन्न करता है कि क्या अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों की रचना अवान्तरकालीन है। इन्द्र,अग्नि, सोमादि मुख्य देवताओं से सम्बन्धित मन्त्र पहले रचे गये और उसके पश्चात् अश्विनौ की प्रतिष्ठा देवताओं के साथ जुड़ जाने पर ही अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों का विकास हुआ। किन्तु यह बात भी सन्देहपूर्ण है। क्योंकि यजुर्वेद के यज्ञात्मक मन्त्रों का प्रारम्भ ही अश्विनौ की प्रतिष्ठा के साथ होता है, जहां उन्हें दो बाहुओं के साथ प्रतिष्ठित किया गया है। अत: हम कह सकते हैं कि उनके व्यक्तित्व के दो विभाजित रूप हैं, एक तो सूक्ष्म देवत्व शक्ति से समन्वित है और दूसरा स्थूल रूप में उन्हें भिषग् रूप में प्रतिष्ठित करता है। यही भिषक् रूप उनसे सम्बन्धित अनेक आख्यायिकाओं को जन्म देता है। जबकि उनका सूक्ष्म रूप ऋग्वेद के मूल मन्त्रों में सन्निहित है जिनकी धारा हमें तै० आ० तक प्रवाहित होती हुयी प्रतीत होती है।

यह आरण्यक उनके स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों की कल्पना

---

१०. वही ५.७.२०.

करता है जिसका कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में खोजा जा सकता है क्योंकि आख्यायिकाओं का विस्तार वहीं से प्रारम्भ होता है ।

तै० आ० में जो भी सन्दर्भ आये हैं उनमें अधिकांशत: मन्त्रात्मक है जिनका सम्बन्ध मूलत: संहिताओं से है संहिताओं के प्रारम्भिक अंशों में अश्विनी का सम्बन्ध मूलत: मुख्य देवताओं के साथ है । जबकि तै० आ० तक आते-आते वे यम और पितरों के साथ भी जुड़ गये हैं --'अदो यद्ब्रह्म विल्बम् । पितृणां च यमस्य च । वरुणस्याश्विनोरग्नेः । मरुतां च विहायसाम् '[११] इस प्रकार उनके व्यक्तित्व की विकासात्मक प्रक्रिया सतत् प्रवाहित प्रतीत होती है ।

उपनिषदों में अश्विनी--

उपनिषदों में अश्विनी सम्बन्धी चर्चा मधु विद्या के सन्दर्भ में की गयी है, इसके पूर्व हम मधु-विद्या से सम्बन्धित सन्दर्भों को अथर्ववेद एवं अन्य महनीय ग्रन्थों में देख चुके हैं, साथ ही उसके सम्बन्ध में जो आख्यायिकाएं हैं उन पर भी विस्तार से चर्चा हो चुकी है, शर्याति, दध्यङ्, च्यवन से सम्बन्धित अश्विनी की मधु-विद्या का सन्दर्भ ऋग्वेद काल से ही विकसित होता रहा है । उन सन्दर्भों में अश्विनी का यज्ञ में हवि न प्राप्त करना एवं अन्य देवताओं की तुलना में निम्न स्थान का ग्रहण करना आदि अश्विनी के विकासात्मक स्वरूप के परिचायक हैं । उसी के सातत्य में हमें कुछ उपनिषदों में अश्विनी सम्बन्धी चर्चायें प्राप्त होती हैं । बृहदारण्यकोपनिषद में दध्यङाथर्वण ऋषि द्वारा अश्विनी कुमारों को मधु-विद्या के उपदेश की आख्यायिका

---

११. वही १. २७. ६.

प्राप्त होती है । अश्विनौ दध्यङ. ऋषि के पास पहुंचते हैं, जिनसे ऋषि ने कहा कि जिस प्रकार मेघ वृष्टि करता है, उसी प्रकार इस मधु-विद्या की वृष्टि में तुम्हारे लिए कर सकता हूं किन्तु इसमें भय है कि यह मधु-विद्या इन्द्र के द्वारा प्रदत्त है और उन्होंने इसे अन्य किसी को प्रदान करने के लिये मना कर रक्खा है । यदि यह विद्या किसी अन्य को प्रदान की जाती है तो मेरा शिरश्छेदन कर दिया जायेगा, इसीलिए मैं भयभीत हूं । अत: जिस प्रकार से वह देव मेरा शिरश्छेदन न कर सकें वैसा कोई उपाय आप दोनों मेरे लिए अन्वेषित करें । उन दोनों ने ऋषि के त्राण का वचन दिया । उपाय के सम्बन्ध में ऋषि द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने यह कहा कि हम आपके सिर का छेदन करके उसे किसी अन्य स्थान पर ढक कर रख देंगे और उसके स्थान पर आपके ऊपर अश्व का सिर जोड़ देंगे । जिससे आप हम लोगों को उपदेश कर सकेंगे और जब इन्द्र आपके इस सिर को काट देंगे तो हम पुन: आपको आपका सिर लगा देंगे । इस प्रकार आपकी रक्षा हो जायेगी । उन दोनों ने इसी प्रकार किया और उपर्युक्त विधि से उन्हें मधुविद्या का दान मिला[१२] ।

मुख्य उपनिषदों के अतिरिक्त भी कुछ उपनिषदों में अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । जैसे सामवेद से सम्बन्धित जैमिनीय उपनिषद में साम गान के हिंकार, प्रस्ताव, प्रतिहार, उपद्रव निधन आदि की चर्चा करते हुये यह कहा गया है कि `वायु हिंकार रूप है, इन्द्र प्रस्ताव रूप है, सोम और बृहस्पति उद्गीथ रूप है और

----

१२. बृ० उ० २. ५. १६.

अश्विनौ प्रतिहार रूप में हैं।[१३] जो प्रतिहार को जानता है वह अश्विनौ का ज्ञान प्राप्त करता है[१४] — बृहज्जाबालोपनिषद में वामादि नौ शक्तियों की और सोलह देवताओं की चर्चा है। जहाँ नासत्य और दस्र को अलग-अलग अश्विनौ के दो नामों के रूप में ग्रहण किया गया अर्थात् एक नासत्य और दूसरा दस्र ये दोनों मिलकर अश्विनौ कहलाते हैं।[१५]

अथर्वशीर्ष या देव्युपनिषद्[१६] में यह कहा गया है कि वाग्देवी दोनों अश्विनौ का संभरण करती है। जिसका सम्बन्ध सीधे ऋग्वेद के वागाम्भृणी (वाक) सूक्त[१७] से है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

सुबालोपनिषद्[१८] में नारायण रूप परमात्मा की चर्चा है जहाँ उसे एक अधिदेव के रूप में मानकर आदित्य, रुद्र, मरुत, अश्विनौ आदि को उसी के द्वारा उद्भूत माना गया है।

—

---

१३. त्वे तदात्ममिरेव व्यकुर्वत। तेषां वायुरेव हिङ्कार वासाग्नि: प्रस्ताव इन्द्र आदि: सोमबृहस्पती उद्गीथोऽश्विनौ प्रतिहारौ विश्वेदेवा उपद्रव: प्रजापतिरेव निधनम्।

- जै० उ० १. ५८. ६.

१४. वही १. ५६. ६.

१५. वामादिनवशक्तीश्च एते षोडश देवता :।
नासत्यो दस्रकश्चैक अश्विनौ द्वौ समीरितौ।

- बृ० जा० ४. २०.

१६. दे० उ० (१)

१७. ऋ० १०. १२५. १.

१८. सु० जा० (६)

नवम अध्याय

नवम अध्याय

-0-

वेदाङ्‌गों में अश्विनौ का स्वरूप

वैदिक साहित्य की मूल धारा का विकास उपनिषदों में अपनी चरम सीमा को प्राप्त करता हुआ एक प्रकार से उन्हीं में तिरोहित हो जाता है। किन्तु उनमें निहित कर्मकाण्ड की व्यवस्था का विधिवत् विधान और सम्पूर्ण साहित्य के संरक्षण की प्रक्रिया विकसित होती रहती है, जिसका प्रस्फुटन वेदाङ्‌ग साहित्य के रूप में उभर कर अपने छः अङ्‌गों को विकसित करता हुआ 'शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष् और छन्द' के नाम से छः शास्त्रों के रूप में प्रवर्तित होता है। यद्यपि यहाँ अश्विनौ के स्वरूप का प्रत्यक्ष उल्लेख 'न' के बराबर कहा जा सकता है, किन्तु कर्मकाण्ड के विधान में कल्प सूत्रों में अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों का जो विनियोग किया है उनके माध्यम से यज्ञीय परम्परा में अश्विनौ का दिग्दर्शन होता है।

समस्त वेदाङ्‌गों में अश्विनौ के स्वरूप की दृष्टि से कल्प सूत्रों को प्रमुख स्थान दिया जा सकता है। इनके अन्तर्गत श्रौतसूत्र, धर्म सूत्र और गृह्य सूत्र प्रमुख हैं। इनमें कुछ कल्प सूत्रों में विनियोगों के माध्यम से जहाँ-जहाँ अश्विनौ की चर्चा की गयी है उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। आश्वलायन श्रौत सूत्र में प्रातः सवन में अश्विनौ सम्बन्धी ऋचाओं का विनियोग विहित है। वहाँ उनके साथ उषाओं से सम्बन्धित ऋचायें भी विनियुक्त हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि अश्विनौ का उषाओं के साथ सम्बन्ध निरन्तर बना हुआ है[1]।

---

१. आ० श्रौ० सू० ४. १५

इसी प्रकार अतिरात्र कर्म `आश्विन-शस्त्र' का प्रयोग होता है, जहां अश्विनौ की स्तुतियों का विधान किया गया है। अश्विनौ, उषस् और अग्नि — इन तीनों के लिये क्रमशः जगती, त्रिष्टुभ और गायत्री छन्दों में आबद्ध ऋचाओं के माध्यम से स्तुतियों का विधान किया गया है[2]।

सौत्रामणि कर्म में अश्विनौ, सरस्वति और इन्द्र सम्बन्धी पशु-बलि का विधान किया गया है। इसी के अन्तर्गत ग्रहों या चमसों में यहां अश्विनौ के लिये सुरा का भी विधान किया गया है जिसमें पुरोऽनुवाक्या के रूप में `होता यक्षदश्विनौ' ऋक्[3] का विनियोग किया जाता है। सौत्रामणि यज्ञ में सुरापान का अपना विशिष्ट महत्त्व है, जो अन्य यज्ञों में नहीं है। यहां समस्त देवताओं में इन्द्र का वर्चस्व होता है जो राजा के प्रतीक रूप में उपस्थित रहता है। इसीलिये राजा से सीधे सम्बन्ध होने के कारण यहां सुरापान का भी विधान किया जाता है, जहां सुरापान में अश्विनौ भी भागीदार होते हैं[4]। इस प्रकार आ० श्रौ० सू० में अन्य देवताओं के सान्निध्य में अश्विनौ को जो स्थान दिया गया है, उससे उनकी महत्ता का प्रतिपादन होता है। आ० श्रौ० सू० के समान ही शां० श्रौ० सू० में भी अश्विनौ सम्बन्धी मन्त्रों का विनियोग विहित किया गया है[5] जहां सुरापान आदि का वही रूप है, जो आश्वलायन श्रौत सूत्र में प्राप्त होता है।

---

२. वही ६. ५.

३. वही ३. ९.

४. वही ३. ९.

५. शां० श्रौ० सू० १५. १५. २ ; ६ ; १२ ; १३.

वाराह श्रौत सूत्र[6] मे० सं० से सम्बन्धित है जो कलान्द द्वारा सम्पादित किया गया है। उसमें भी तीन स्थानों पर अश्विनों की चर्चा है। जहां अश्विनों को अध्वर्यु और यज्ञ वाहक कहा गया है। वे दोनों सरस्वति के साथ सौत्रामणि यज्ञ में इन्द्र के लिये सोम का आह्वान करते हुये कहे गये हैं।

यजुर्वेद की संहिताओं से सम्बन्धित का० श्रौ० सू० और आपस्तम्ब श्रौ० सू० हैं जिनमें विनियोग के माध्यम से अश्विनों के यज्ञ भाग को ग्रहण करने की चर्चा है। यहां जो भी चर्चायें हैं, वे सभी वाजसनेयी संहिता के मन्त्रों को आधार मानकर ही की गयी हैं। इसलिये हमने संहिताओं के माध्यम से अश्विनों सम्बन्धी जो चर्चायें की हैं उनसे अधिक यहां कुछ कहने को शेष नहीं रह जाता है मात्र उसका पुनरावर्तन ही है[7]।

वैखानस श्रौ० सू० में अश्विनों से सम्बन्धित सन्दर्भों की कुल संख्या छः है[8]। जहां इन्द्र और अश्विनों एक साथ सोमपान और सुरापान में भागीदार होते हैं[9]। उनके लिये महावीर कपाल का विधान कर एक साथ उनका आह्वान किया जाता है। ऐसे सन्दर्भ बहुत कम हैं जहां इन्द्र

---

६. वा० श्रौ० सू० ३.२. २-१ ; ३.२.७.२७ ; ३.२.७-२८.

७. का० श्रौ० सू० ६.८.६ ; १२.६.६ ; १६.६.१५ ; १६ ; १६.६.१६ ; १६.६.२२ ; १६.६.२६ ; १६.५.६ ; १६.७.१ ; २६.५.६ ; २६.६.७ ; ८ ;
आप० श्रौ० सू० १४. ११-२ ; १४.३०.५ ;

८. वै० श्रौ० सू० ११.४ ; १३.१२ ; १५.२० ; १२५.२ ; १६६.८ ; २०२.६.

९. वही १३. १२.

के साथ सीधे अश्विनों को सोमपान में भागीदार बनाया गया हो । इन दोनों के साथ सवितृ, वरुण, सरस्वति के लिये भी ग्रहों का विधान है । इन्द्र के लिये एकादश कपाल, सवितृ के लिये द्वादश कपाल, वरुण के लिये दश कपाल का निर्वाप किया जाता है और उसके पश्चात् सरस्वती और अश्विनों का एक साथ कपालों का विधान किया जाता है।[10] यह कर्म सौत्रामणि यज्ञ में विहित है ।

अथर्ववेद के कौशिक सूत्र में अश्विनों सम्बन्धी जो सन्दर्भ है, उनका सम्बन्ध आथर्वण तन्त्र की क्रियाओं के साथ है । जैसे दुःस्वप्न नाशन में अश्विनो सम्बन्धी मन्त्र का प्रयोग कर उसके दुश्परिणामों से मुक्ति की प्रार्थना की जाती है --

> भद्राय कर्णः क्रोशतु भद्रायाक्षि वि वेपताम् ।
> परा दुःष्वप्न्यं सुव यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।
> अक्षिवेपं दुष्वप्न्यमार्तिं पुरुषरेषिणीम् ।[11]
> तदस्मदश्विना युवमप्रिय प्रति मुञ्चतम् ।।

इसी प्रकार अङ्गों के स्फुरण जैसे - नेत्र, स्फुरण, कर्ण-स्फुरण, अथवा अन्य अङ्गों का स्फुरण - के दुष्परिणामों से मुक्ति प्राप्ति हेतु भी अश्विनो सम्बन्धी मन्त्रों के विनियोग का विधान किया गया

----

१०. ऐन्द्रमेकादशकपालं सावित्रं द्वादश कपालं वारुणं दश कपालं च निर्वपति, तानासाद्य ततग्रैहस्ते प्रचरन्त्यश्विभ्या सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे - - - - - - -

- वै० श्रौ० सू० ११. ४.

११. कौ० सू० ५८. १.

है । जैसे एक सन्दर्भ में इस मन्त्र का विनियोग किया गया है --

यत्पाश्वादुरसो मे अङ्गादङ्गादवपेते ।
अश्विना पुष्करस्रजा तस्मान्न: पातमंहस: ।।[12]

'जो कुछ हमारे पार्श्व से उर स्थल से और अङ्ग-अङ्ग से कम्पन उठ रहा है, उस सबसे कमल की माला धारण करने वाले दोनों अश्विनी हमारी रक्षा करें।' इस प्रकार इस मन्त्र के माध्यम से अङ्गों के स्फुरण में कान में तीव्र स्वर से अनुमन्त्रण किया जाता है। इस प्रकार अथर्ववेदीय प्रक्रियाओं में अश्विनी सम्बन्धी मन्त्रों का प्रयोग या अश्विनी का आह्वान, मानवीय जीवन के साथ सीधे जुड़ा हुआ है, जैसे मानवीय जीवन के मुख्य कर्मों में कृषि भी एक मुख्य कर्म है जिसके विनियोग में कौशिक सूत्र ने 'हिरण्यस्रपुष्करिणी - - - - - - कृषिर्हिरण्यप्रकारा[13] - - - - - - - - - - - - रायेन सह पुष्ट्या न आ गहि' मन्त्र का विनियोग विहित किया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कौशिक सूत्र ने अश्विनी को सामान्य जन-जीवन के साथ जोड़कर उन्हें मानवीय जीवन के अधिक समीप लाने का प्रयास किया है।

श्रौत सूत्रों के पश्चात् गृह्य सूत्रों में भी जिन मंत्रों का विनियोग प्राप्त होता है उनमें प्रसंगवशात् अश्विनी सम्बन्धी कुछ सन्दर्भ प्राप्त हो जाते हैं। जैसे मानव गृह्य सूत्र में कुछ विशिष्ट संस्कारों में अश्विनी का नाम ग्रहण किया जाता है। नामकरण संस्कार के अन्तर्गत

---

१२. 'इति कर्णं क्रोशन्तमनुमन्त्रयते'
- कौ० सू० ५८.१

१३. कौ० सू० १०६. ७.

पिता अपने पुत्र का जब नामकरण करता है उस समय वह अपने दोनों बाहुओं से पुत्र के दोनों हाथों का ग्रहण करते हुये 'देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां' हस्तं गृहणामि'[14] इति मंत्र का पाठ करता है, जिसमें अपने दोनों बाहुओं को वह अश्विनो के दोनों बाहुओं के रूप में स्वीकार करता है। यही नही, गर्भाधान संस्कार के समय भी अश्विनो का आह्वान किया जाता है जहां यह कहा जाता है कि -

'गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनो देवावाधत्तां पुष्करस्रजा ।।'[15]

इसी प्रकार सिनीवालि और सरस्वति के साथ अश्विनो भी गर्भाधान में कारण बनते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य सन्दर्भों में भी देवताओं की आहुतियों में अश्विनो को भागीदार बनाया गया है।[16]

वाराह गृह्य सूत्र में अश्विनो के स्थान पर अश्विनी देवी की कल्पना है। कन्या के विवाह के समय पाणि-ग्रहण में उसके सौभाग्य की कामना करते हुये यह कहा जाता है कि इला देवी, घृतपदी इन्द्राणी, अग्नायी, अश्विनी देवियां उसे सौभाग्य से युक्त करें --

सौभाग्येन त्वा स सृजन्त्विला देवी
घृतपदीन्द्रा यग्नाय्यश्विनी[17]

---

14. भा० गृ० सू० १. १०.१५.
15. वही २. १८.२.
16. वही २. ६.४ ; २.१०.७ ; २. १५. ६.
17. वा० गृ० सू० १३. २.

कौषतकि गृ० सू० के एक स्थान पर अन्त में आश्विनी पौर्णमासी को, जिसे शरदपूर्णिमा कहा जाता है, पायस की हवि का विधान किया गया है जहां अश्विनी को हवि प्रदान की जाती है। जहां इन मंत्रों का विनियोग है --

'आश्व युज्यां पौर्णमास्यामैन्द्रः पायसोऽश्विभ्यां स्वाहाऽश्वयुग्भ्यां स्वाहाऽश्व युज्यै पौर्णमास्यै स्वाहा शरदे स्वाहा पशुपतये स्वाहा पिङ्गलाय स्वाहा।'[१८]

इस प्रकार कल्प सूत्रों में अश्विनी सम्बन्धी जो भी सन्दर्भ हैं उनके स्वरूप निरूपण पर कम और देवताओं के साहचर्य पर अधिक प्रकाश डालते हैं। अन्य वेदाङ्गों में केवल निरुक्त ही ऐसा है जहां अश्विनी की निष्पत्ति पर विचार किया गया है जिसकी चर्चा हम प्रारम्भ में ही कर चुके हैं।

-

----

१८. कौषी० गृ० सू० ४. १६.

दशम अध्याय

दशम अध्याय
-0-
रामायण, महाभारत तथा पुराणों में अश्विनौ

वैदिक साहित्य की आख्यायिकाओं कथाओं का विस्तार वैदिक साहित्य की धारा के साथ ही काल के अन्तराल में समा गया हो, ऐसा नहीं है। जिस प्रकार उस धारा का सतत् प्रभाव भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों को अपने में समाहित करता हुआ सम्पूर्ण रूप से उस पर छा गया है उसी प्रकार आख्यायिकाओं और कथाओं का प्रवाह अबाध गति से निरन्तर आगे बढ़ता हुआ चला गया है। वैदिक साहित्य के पश्चात् रामायण महाभारत जैसे महाकाव्यों का लौकिक साहित्य जहां एक ओर काव्यात्मक धारा को प्रवाहित करता है वहीं पौराणिक साहित्य पुरातन कथाओं को अपने अन्तर्गत समाहित करता हुआ भारतीय इतिहास की चिन्तन परम्परा को जन्म देकर उसके सृष्टि विकास, प्रलय और आनुवंशिक परम्पराओं की कथाओं का आकलन करता है। इसी आकलन के अन्तर्गत विभिन्न वैदिक विषयों से सम्बन्धित बातें भी संकलित हैं जिनमें हम अश्विनौ से सम्बन्धित विषयों का भी अवलोकन कर सकते हैं।

रामायण में अश्विनौ सम्बन्धी चर्चा बहुत कम है जो कुछ चर्चायें हैं वे कुछ देवताओं के नामों के सन्दर्भ में एवं उनके गुण रूप आदि की उपमाओं के साथ संयुक्त है। यहां अश्विनौ सम्बन्धी ऐसी कोई नवीन विशेषता नहीं मिलती जिसे हम परवर्ती विकास कह सकें। तृतीय काण्ड में आदित्य, वसु, रुद्र के साथ अश्विनौ को भी अदिति के गर्भ से उत्पन्न कहा गया है।

अदित्यो वसवो रुद्रा अश्विनौ च परं तप ।
दितिस्त्वजनयत्पुत्रान् दैत्यांस्तानयशस्विन: ।।[1]

एक अन्य सन्दर्भ में इनके साथ रुद्र को भी जोड़ दिया गया है[2] और उसी के साथ वरुण, सोम, आदित्य एवं अश्विद्वय से सिद्धि प्राप्त करने की प्रार्थना की गयी है[3]। मैन्द्र और द्विविद को रामायण में अश्विनो कुमारों का पुत्र कहा गया है[4] जिनके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि पितामह ब्रह्मा जी ने उन्हें अत्यन्त वीर्य युक्त होने का प्राचीनकाल में वरदान दिया था कि उन्हें कोई नहीं मार सकेगा । इस प्रकार वरदान पाने से उन्मत्त हो इन महाबलवान् दोनों वीरों ने देवताओं की बहुत भारी सेना को मथकर अमृत पान किया था । इस कारण ये दोनों लंकापुरी का नाश करने में समर्थ कहे गये हैं[5]। इससे यह संकेत मिलता है कि प्राचीन-काल में प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को भी इसी प्रकार का वरदान दिया होगा जिससे उनकी अन्य देवताओं से स्पर्धा हुयी होगी । यह अमृतपान की बात सम्भवत: वैदिक सोमपान के साथ जुड़ी हुयी है[6]।

इसके अतिरिक्त कुछ सन्दर्भों में अश्विनो से सम्बन्धित उपमाओं

---

१. रामा० ३. १४. १५.

२. वही ५. १३ ५५.

३. वरुण: पाशहस्तश्च सोमादित्यास्तथैव च ।
अश्विनौ च महात्मानौ मरुत: सर्व एव च ।।
- वही ५. १३. ६५.

४. वही १. १७. १४ ; ४. ३६. २५.

५. वही ५. ६०-४.

६. रामा० ५. ६०. ४.

की चर्चा है जहाँ राम-लक्ष्मण को अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर नेत्र वाले और रूपयौवन से सम्पन्न कहा गया है। साथ ही उनके सुन्दर भ्रातृत्व की तुलना भी अश्विनों से की गयी है[7]। अश्विनों की कथा पूरे वैदिक-कालीन साहित्य में परिव्याप्त होती हुयी अवान्तरकालीन भारतीय समाज में भी वह प्रविष्ट होती चली गयी है। वैदिक साहित्य के विषयों का नैरन्तर्य पुराणों और महाकाव्यों में भी बना हुआ है। सातत्य और परिवर्तन की परम्परा में अश्विनों सम्बन्धी आख्यान भी निरन्तर आगे बढ़ते गये हैं जिनका रूप हमें अवान्तरकालीन साहित्य में भी दृष्टिगत होता है। महाभारत में अश्विनों सम्बन्धी चर्चा बहुत कम है। किन्तु जो कुछ भी है वह महत्वपूर्ण है।

महाभारत में अश्विनों कुमारों के जन्म के सम्बन्ध में चर्चा करते हुये कहा गया है कि सवितृ की भार्या त्वाष्ट्री ने बड़वा (घोड़ी) का रूप धारण कर दोनों अश्विनी कुमारों को आकाश में उत्पन्न किया --

> त्वाष्ट्रीं तु सवितुर्भार्या वाडवारूपधारिणी।[8]
> असूयत महाभाग साऽन्तरिक्षेऽश्विनावुभौ ।

इसके अतिरिक्त अश्विनी कुमारों को, नकुल-सहदेव के रूप में उत्पन्न होते हुये कहा गया है और इस सम्बन्ध में माद्री के ध्यान की चर्चा है, जिसमें कहा गया है कि कुन्ती से स्वीकृति लेकर पांडु ने माद्री से यह कहा कि तू देवताओं का ध्यान कर जिससे तुम्हें पुत्र प्राप्ति होगी। जिस

---

७. वही १. १७.१४ ; ४८.३ ; २. ८. ३१.

८. म० भा० १. ६६. ३६.

देवता का तू ध्यान करेगी, उसी के अनुरूप तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी। इसके पश्चात् माद्री ने अपने मन में अश्विनी कुमारों का ध्यान किया जिससे उन्हीं के अनुरूप उसे पुत्र-युग्म की प्राप्ति हुयी।[९] पुत्र रूप में नकुल और सहदेव बल, रूप और गुणों में अश्विनी कुमारों से भी बढ़कर हुये।

इसके अतिरिक्त महाभारत में[१०] अश्विनी सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण आख्यान सुकन्या के साथ जुड़ा हुआ है। इसके पूर्व भी हमने श० ब्रा० में[११] इस आख्यान का उल्लेख किया है। परन्तु यहां पर आख्यायिका कुछ परिष्कृत हो गयी है। प्रस्तुत आख्यायिका में च्यवन अत्यन्त सक्रिय रूप में भाग लेते हैं, जबकि श० ब्रा० में वे अश्विनों के प्रति मात्र सुझाव देकर ही विरत हो जाते हैं। श० ब्रा० में शर्याति स्वयं सुकन्या को प्राप्त कर च्यवन से क्रोध शान्त करने की बात कहते हैं जबकि महा०भा० में च्यवन सुकन्या की मांग करते हैं। यहां पर अश्विनी कुमारों की प्रवर्ग्य विद्या आदि के ज्ञाता होने से सोमपान की योग्यता का कोई उल्लेख नहीं मिलता, वरन् यह च्यवन के प्रति किये गये उपकार का फल रूप है। इस प्रकार यहां कथा को बहुत ही सजीवतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। महाभारत वनपर्व के दो अध्यायों (१२३ तथा १२४) में च्यवन ऋषि से सम्बन्धित यह आख्यान प्राप्त होता है। पयोष्णी नदी के तट पर तपस्या में लीन च्यवन ऋषि के ऊपर मिट्टी तथा घास आदि जम जाती है। एक दिन शर्याति अपनी चार पत्नियों तथा पुत्री सुकन्या के साथ क्रीड़ा करता हुआ उधर आ पहुंचता है। सुकन्या अपनी सहेलियों

---

९. वही २. १२४. १६.

१०. वही वनपर्व अध्याय १२३-१२४

११. श० ब्रा० पृ० 215.

के साथ खेलती हुयी उस वल्मीक से आच्छादित शरीर वाले (च्यवन) के समीप पहुंचती है । वल्मीक के अन्दर से चमकती हुयी दो आंखों को देखकर आश्चर्यान्वित होकर उस सुकन्या ने उसे कांटे से बींध दिया । क्रोधित हुये च्यवन ऋषि ,राजा के सैनिकों का मल-मूत्र बन्द कर देते हैं । जब राजा को अपनी कन्या द्वारा च्यवन को पीड़ित करने का वृत्तान्त मालूम पड़ा तो वह अपनी पुत्री को साथ लेकर ऋषि के पास क्षमा-याचना करने के लिये पहुंचता तो ऋषि च्यवन उससे सुकन्या को स्वयं को प्रदान करने की बात कहते हैं । इस प्रकार राजा उन्हें अपनी पुत्री प्रदान करते हैं । परन्तु जब अश्विनौ सुकन्या को देखते हैं तो उसे अपने पति को त्याग कर अपने में से किसी एक को वरण करने की बात कहते हैं । परन्तु सुकन्या उन्हें नकारात्मक उत्तर देती है । इस प्रकार पति के प्रति अपार भक्ति देखकर उसके पातिव्रत से प्रसन्न हुये अश्विनीकुमार उसके पति को युवावस्था प्राप्त कराने के लिये एक सरोवर में प्रविष्ट कराते हैं और स्वयं भी उसी में प्रविष्ट होते हैं । सरोवर से तीनों एक ही आकृति के सुन्दर युवकों के रूप में निकलते हैं, लेकिन सुकन्या पुन: तरुण हुये अपने पति को पहचान कर प्राप्त कर लेती है ।

च्यवन अपने प्रति किये गये इस उपकार से प्रसन्न होकर अश्विनी कुमारों को यज्ञ में सोमपान का अधिकार प्राप्त कराने के विचार से अपने श्वसुर शर्याति[१२] से यज्ञ करवाते हैं और उसमें अश्विनी कुमारों को प्रदान करने के लिये सोम ग्रहण करते हैं । इन्द्र च्यवन को ऐसा करने से रोकते हैं, परन्तु च्यवन इन्द्र की बात का विरोध करते हैं,जिससे क्रोधित होकर इन्द्र वज्र प्रहार करने के लिये उद्यत होते हैं, परन्तु च्यवन वज्र सहित

---

१२. वाज० सं० ७. ३५.
जु० की० बै० उं० ब्रा० ४. ७. १. तथा ८.३.५.

उनकी भुजा को स्तम्भित कर देते हैं और इन्द्र के विनाश के लिये यज्ञ-कुण्ड से मद नामक दैत्य की सृष्टि करते हैं, जिससे इन्द्र भयभीत होकर अश्विनीकुमारों को सोमपान का अधिकारी मान लेते हैं और च्यवन मद को स्त्री, द्यूत, स्वर्ण तथा सुरा में विभक्त कर देते हैं ।

महाभारत में च्यवन सम्बन्धी आख्यायिका के अतिरिक्त अन्य दो सन्दर्भों[13] में भी अश्विनी कुमारों के भिषक् रूप का सजीव चित्रण हुआ है जिससे उनके श्रेष्ठ वैद्य होने का स्पष्ट संकेत मिलता है । एकबार आयोद धौम्य का शिष्य उपमन्यु अर्क के पत्ते खा लेने से अन्धा होकर एक कूप में गिर जाता है तब उसके गुरु उसे अश्विनी कुमारों की स्तुति करने की सलाह देते हैं --

अश्विनौ स्तुहि । तौ त्वां चक्षुष्मन्तंकरिष्यतो देवभिषजा-विति ।[14]

इस प्रकार उपमन्यु ने गुरु की बात मानकर अश्विनी कुमारों की स्तुति की । स्तोता द्वारा अपना आह्वान सुनकर अश्विनी कुमार शीघ्र ही उसके समीप आये और उसे खाने के लिये एक अपूप दिया जिससे उसे पुनः नेत्र ज्योति मिल गयी[15]।

इसके अतिरिक्त अश्विनी कुमारों से सम्बन्धित एक अन्य लघु आख्यायिका महाभारत के द्रोण पर्व[16] में मिलती है जहाँ अश्विनी कुमारों

----

१३. म० भा० आदि पर्व ३. ५८-७८.
वही द्रो० पर्व ६२. २-४.

१४. वही आदि पर्व ३. ५८.

१५. वही ३. ५८-७८.

१६. वही द्रो० पर्व० ६२. २-४.

के द्वारा मान्धाता को अपने पिता युवनाश्व के उदर से बाहर निकालने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

पुराणों में अश्विनौ का स्वरूप -

विभिन्न पुराणों के अन्तर्गत अश्विनौ सम्बन्धी जो कथायें प्राप्त होती हैं उनमें जहाँ एक ओर वैदिक साहित्य में प्राप्त तथ्यों को यथावत् स्थान दिया जाता है वहीं दूसरी ओर परम्परा और परिवर्तन के सातत्य ने अनेक नयी कल्पनाओं को जन्म देकर अश्विनौ के स्वरूप को और अधिक संवर्धित कर दिया। अनेक नयी-नयी रोचक कथाएं उनके साथ जुड़ती गयी हैं जिनका एक पुराण से दूसरे पुराण के साथ अनुवर्तन हुआ है -- विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, भागवत पुराण, वराह पुराण आदि में अश्विनौ सम्बन्धी अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं जिनका विवेचन हम यहाँ एक-एक पुराण के साथ कर रहे हैं।

विष्णु-पुराण में अश्विनौ --

विष्णुपुराण के अन्तर्गत अश्विनौ के जन्म का प्रतिपादन किया गया है। विवस्वान् से मन्वन्तर का प्रारम्भ होता है। अष्टम मनु भी दोनों विवस्वान् के ही पुत्र हैं। सप्तम मनु और अष्टम मनु भी दोनों विवस्वान् के पुत्र हैं किन्तु मातायें भिन्न हैं। इन दोनों मनुओं की माताओं की कथा के साथ अश्विनौ के जन्म की कथा का प्रसंग भी जुड़ा हुआ है। विष्णुपुराण के तृतीय अंश के द्वितीय अध्याय में इस कथा का संक्षिप्त रूप प्राप्त होता है। वहाँ यह कहा गया है कि विश्वकर्मा की संज्ञा नाम की पुत्री सूर्य की पत्नी थी जिसके मनु, यम और यमी तीन सन्तानें थीं।[१७] अपने पति सूर्य के तेज को सहने में असमर्थ वह अपनी

---

१७. प्रोक्तान्येतानि भवता सप्तमवन्तराणि वै।
भविष्याण्यपि विप्रर्षे ममाख्यातुं त्वमर्हसि ।।

प्रतिच्छाया को ही स्त्री रूप देकर, अपने पति की सेवा में नियुक्त कर वह वन में तपस्या करने चली गयी । सूर्य ने उसे ही अपनी पत्नी संज्ञा मानकर उससे पुन: तीन सन्तानें उत्पन्न की-जो एक अन्य मनु, शनैश्चर तथा तपती थी ।[18] एक दिन जब छाया रूपिणी संज्ञा ने क्रोधित होकर अपने पुत्र के पक्षपात से यम को शाप दिया, तब सूर्य और यम दोनों को यह ज्ञात हो पाया कि यह असली संज्ञा नहीं है ।[19] तब छाया के द्वारा ही सारा रहस्य खुल जाने पर सूर्य देव ने समाधि स्थित होकर देखा कि संज्ञा घोड़ी का रूप धारण कर वन में तपस्या कर रही है ।[20] अत: उन्होंने भी अश्वरूप होकर उससे दो अश्विनी

सूर्यस्यपत्नी संज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मण: ।
मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने ।।
- वि० पु० ३. २. १ ; २.

१८. असहन्ती तु सा भर्तुस्तेजश्छायां युयोज वै ।
भर्तृशुश्रूषणेऽरण्यं स्वयं च तपसे ययौ ।।

संज्ञेयमित्यथार्कश्च छायायामात्मजत्रयम् ।
शनैश्चरं मनुं चान्यं तपतीं चाप्यजीजनत् ।।
- वही ३.२.३. ; ४.

१९. छायासंज्ञा ददौ शापं यमाय कुपिता यदा ।
तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद्यमसूर्ययो: ।।
- वही ३. २. ५.

२०. ततो विवस्वानाख्याते तयैवारण्यसंस्थिताम् ।
समाधिदृष्ट्या ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम् ।।
- वही ३. २. ६.

कुमार और रेत: स्राव के अनन्तर ही रैवन्त को उत्पन्न किया[21]।

विष्णु धर्मोत्तरपुराण में इसी कथा को कुछ मोड़ देकर इस प्रकार कहा गया है-सूर्य अश्व का रूप धारण कर तपस्या करती हुयी अश्वा रूपा संज्ञा के पास पहुंचते हैं। संज्ञा ने उन्हें अन्य पुरुष मानकर विशेष प्रकार की चेष्टायें की। सूर्य ने अपनी दीप्त किरणों के द्वारा उसके मुख में काम की भावना की। उसके दोनों नासापुटों को वीर्य से पूर्ण किया जिससे नासत्यों की उत्पत्ति हुयी जिन्हें अश्विनो कहा गया है।[22] जो शेष रेतस् भूमि पर गिरा उससे रैवन्त की उत्पत्ति हुयी। इस प्रकार नासत्यो और अश्विनौ इन दोनों नामों में निहित अर्थों को ध्यान में रखकर इन पुराणों में उनकी विचित्र उत्पत्ति की बात कही गयी है[23]।

ब्रह्मपुराण में अश्विनौ --

ब्रह्मपुराण में भी इसी से सम्बन्धित कथा का विस्तार है।

---

२१. वाजिरूपधर: सोऽथ तस्यां देवावथाश्विनौ।
जनयामास रैवन्तं रेतसोऽन्ते च भास्कर: ॥
- वही ३. २. ७.

२२. मुखे च भावयामास तां सूर्यो दीप्तदीधिति:।
तस्या नासापुटौ पूर्णौ तदा शुक्रेण पार्थिव।
तथा तस्यास्तदा जातौ नासत्यावश्विनाकुभौ ॥
- वि०ध०पु० खण्ड १ ; अ. १०६ ; श्लो० ८४-८५

२३. भूमौ च पतितं यच्च ताभ्यां शुक्रं विमर्दितम्।
तस्मात् सोऽश्वात् समुत्पन्न: कुमार: सूर्यसन्निभ: ॥
रैवन्तेति तदा तस्य नाम चक्रे जगद्गुरु: ॥
- वि०ध०पु० खण्ड १,अ० १०६,श्लो० ८६ ; ८६.

कश्यप से विवस्वान् का जन्म दाक्षायणी द्वारा हुआ । विवस्वान् की स्त्री संज्ञा हुयी और उनसे त्वाष्ट्री देवी का जन्म हुआ जिनका नाम सुरेणु पड़ा जो भगवान सूर्य की स्त्री हुयी[२४]। रूप और यौवन सम्पन्ना वह अपने पति से सन्तुष्ट नहीं हुयी । इससे सुन्दर दीप्ति वाली वह संज्ञा नाम धारण कर तपस्या करने चली गयी[२५]। तपस्या करती हुयी संज्ञा ने तीन सन्तानों की उत्पत्ति की । जिनमें दो कन्यायें और एक प्रजापति हुये । इसी से यम और यमुना की उत्पत्ति हुयी[२६]। विवस्वान्

---

२४. विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः ।
तस्य भार्याऽभवत् संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ।।

सरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी ।
सा वै भार्या भगवती मार्तण्डस्य महात्मनः ।।

- ब्रह्म० पु० ६. १ ; २.

२५. भर्तृरूपेण नातुष्यद् रूपयौवनशालिनी ।
संज्ञा नाम सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता ।।

- वही ६. ३.

२६. त्रीण्यपत्यानि भो विप्राः संज्ञायां तपतां वरः ।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ।।

मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।
यमश्च यमुना चैव यमजौ संबभूवतुः ।।

- वही ६. ७. ; ८ ;

के श्याम वर्ण को देखकर वह संज्ञा उसे सहन न कर सकी और जब अपनी छाया को स्त्री रूप में प्रतिष्ठित कर तपस्या करने चली गयी तब इधर इस छाया से भी विवस्वान् ने सावर्ण मनु की उत्पत्ति की।[27] इसी प्रकार की अनेक बातों के साथ ही यह विवरण है कि संज्ञा जब तपस्या करने चली गयी तो उसके अरण्य निवास को सुनकर विवस्वान् उसे देखने की इच्छा से वन में गये। वह बिना किसी भय के वहाँ तपस्या कर रही थी। अश्वा का रूप धारण किये हुये निर्भय तपस्या करती हुयी देखकर विवस्वान ने अश्व रूप धारण कर उसके मुख में भावना की। जिससे उसमें मैथुन की तीव्र इच्छा जागृत हुयी। किन्तु पर पुरुष की शंका से उसने विवस्वान् के वीर्य को अपनी नासिकाओं के द्वारा वमन कर दिया। जिससे उसमें अश्विनौ का जन्म हुआ जिनके नाम नासत्य और दस्र कहे गये हैं।[28] अष्टम प्रजापति रूप मार्तण्ड के ये दोनों पुत्र हैं और भगवान भास्कर के रूप से सम्पन्न कहे गये हैं।[29] इस प्रकार अश्विनौ का यह विचित्र जन्म मात्र आख्यायिका

---

२७. श्यामवर्णं तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः।
असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः॥ - वही ६.६.

'सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः' - हरिवंश १.६.६.

पूर्वजस्य मनोर्विप्राः सदृशो यमिति प्रभुः।
मनुरेवा भवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते॥ - ब्रह्म पु० ६.११.

२८. वड़वा वपुषा विप्राश्चरन्तीम् अकुतोभयाम्।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत्॥
मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः॥

देवौ तस्यामजायेताम् अश्विनौ भिषजां वरौ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति॥ - वही ६.४२-४४.

२९. मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः॥
- वही ६.४५.

ही नहीं है वरन् भगवान सूर्य का उदित होना और रात्रि का चला जाना तथा दोनों सन्ध्यायों में या उषाकाल में दोनों का सम्मिलन होना और उनसे सूर्य और चन्द्रमा की उत्पत्ति होना आदि बातों का लाक्षणिक रूप में वर्णन किया गया है।

मत्स्यपुराण में अश्विनौ --

मत्स्य पुराण के एकादश अध्याय में अश्विनौ के जन्म की कथा कही गयी है। वह इस प्रकार है -- विवस्वान् के तीन पत्नियां थीं - संज्ञा, राज्ञि, प्रभा। राज्ञि रैवत की पुत्री थी और उसने रैवत को जन्म दिया प्रभा ने प्रभात को उत्पन्न किया और त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने मनु को उत्पन्न किया। उसी से यम और यमुना रूप में उत्पन्न हुये हैं। इसके पश्चात् विवस्वान् के तेजस को सहन न करती हुयी इस संज्ञा ने अपने शरीर से एक अनिन्दित नारी को उत्पन्न किया जो संज्ञा के ही समान उसकी छाया रूप थी। जिससे भगवान् भास्कर ने सावर्णि मनु, शनि, तपती और विष्टी को उत्पन्न किया। अपने पुत्र के वात्सल्य दोष के कारण छाया ने यम को शाप दिया --

शशाप च यमं छाया सक्रोधः कृमि संयुतः।[30]
पादोऽयमेको भविता पूयशोणित विस्रवः।।

वन में जाकर संज्ञा ने बड़वा का रूप धारण कर तपस्या करना प्रारम्भ किया। विवस्वान् वाजि का रूप धारण कर बड़वा रूपी संज्ञा के पास उपस्थित हुये। संज्ञा ने जब उन्हें देखा तो भयविह्वल होकर

---

३०. म० पु० ११. १२.

मन से क्षुब्ध हो गयी।[31] मैथुन में उसने पर पुरुष की शंका से उसके वीर्य का नासापुटों के द्वारा उत्सेक कर दिया। उस वीर्य से अश्विनौ की उत्पत्ति हुयी।[32] वीर्य का उत्सेक किये जाने के कारण उनका नाम दस्र पड़ा और नासिका के अग्र भाग से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम नासत्या पड़ा।[33] इसी प्रकार यहाँ उनके जन्म को सिद्ध करने के लिए यह कथा जोड़ी गयी है।

वायुपुराण में अश्विनौ--

अश्विनौ के जन्म सम्बन्धी कथा का विकास इसी रूप में वायु पुराण में भी प्राप्त होता है। वहाँ सवितृ की पत्नी त्वष्टा की पुत्री संज्ञा नाम से प्रसिद्ध है।[34] जिसने अपने तप के द्वारा विवस्वान् से ज्येष्ठ मनु को उत्पन्न किया[35] और उसके पश्चात् वडवा का रूप धारण कर वह

---

३१. संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद् भयविह्वला।
वही ११.३५.

३२. नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शंकया।
तद्रेतसस्ततो जातावश्विनाविति निश्चितम्॥
- वही ११. ३६.

३३. दस्रौ सुतत्वात् स जातौ, नासत्यौ नासिकाग्रत:॥
- वही ११. ३७

३४. त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या पुन: संज्ञेति विश्रुता॥
- वा० पु० ८४.२१.

३५. असूत तपसा सा तु मनुं ज्येष्ठं विवस्वत:।
यमौ पुनरसूतासौ यमं च यमुनां च ह
- वही ८४. २२.

कुरु प्रदेश में तपस्या करने चली गयीं और उसने अश्व रूपी सवितृ के साथ मैथुन भाव को प्राप्त कर नासापुटों के द्वारा नासत्यों को उत्पन्न किया।[36] अन्तरिक्ष में उसने मार्तण्ड के पुत्र रूप में नासत्य और दस्र को उत्पन्न किया जिन्हें अश्विना कहा गया है। इसी प्रकार यहां सभी बातें पूर्ववत् हैं। अन्तर है केवल संज्ञा का कुरु प्रदेश में जाना और अन्तरिक्ष में उसके द्वारा अश्विनौ का उत्पन्न होना। इसके साथ ही सीधे सूर्य के पुत्र रूप में उनका उत्पन्न होना ध्यान देने योग्य है क्योंकि पूर्ववृत्तान्तों में अश्विनौ का अन्तरिक्ष लोक से कोई सम्बन्ध प्रस्तुत नहीं किया गया और न ही कुरु-प्रदेश की कोई चर्चा है। वायुपुराण के इसी सन्दर्भ में अन्य पुराणों से सम्बन्धित बातों की चर्चा की गयी है। जिसमें संज्ञा का छाया रूप में उपस्थित होना, शनैश्चर आदि की उत्पत्ति समान रूप में वर्णित है। इसी में अश्व, वडवा आदि की भी बात कही गयी है।[37]

----

३६. सा तु गत्वा कुरून् देवी वडवारूपधारिणी।
सवितुश्चाश्वरूपस्य नासिकाभ्यां तु तौ स्मृतौ
असूत सा महाभागा त्वन्तरिक्षेऽश्विनौ किल
नासत्यं चैव दस्रं च मार्तण्डस्यात्मजावुभौ।
- वही ८४. २३-२४.

३७. विष्णोः सवितुः संज्ञाभार्यायां तु त्र्यं पुरा।
मनुर्यवीयान् सावर्णिः संज्ञायां च तथाश्विनौ।
शनैश्चरश्च सप्तैते मार्तण्डस्यात्मजाः स्मृताः॥

- वा० पु० ८४. ३०-३१.

वराह पुराण में अश्विनौ --

अन्य पुराणों की भाँति वराह पुराण में भी अश्विनौ के जन्म की कथा वर्णित है । ब्रह्मा के पुत्र मरीच और मरीच के पुत्र कश्यप प्रजापति रूप में प्रतिष्ठित हुये जो समस्त देवताओं के पिता हैं।[३८] उनके पुत्र द्वादश आदित्य हुये जिनकी प्रतिष्ठा मास और संवत्सर रूप में हुयी । इन्हीं आदित्यों में मार्तण्ड नामके आदित्य को त्वष्टा ने अपनी परम प्रभा युक्त कन्या संज्ञा को प्रदान किया । जिससे यम और यमुना नाम की दो सन्तानें उत्पन्न हुयीं ।[३९] मार्चण्ड के तेज को न सहन कर पाने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया को प्रतिष्ठापित कर कुरु देश में तपस्या के लिये गमन किया ।[४०] इधर छाया के भी सन्तानें उत्पन्न हुयीं । जिससे वह यम के प्रति पुत्र जैसा व्यवहार न कर सकी । यम ने दु:खी होकर यह बात अपने पिता मार्चण्ड को कही । जिससे मार्चण्ड को पता चल गया कि छाया उसकी पत्नी नहीं है उन्होंने ध्यानावस्थित होकर संज्ञा का पता लगाया । उस समय संज्ञा अश्वा का रूप धारण कर कुरु प्रदेश वन में तपस्या कर रही थी । मार्चण्ड ने भी अश्व का रूप धारण कर उसका सामीप्य प्राप्त किया[४१] और अश्वा रूपा उस त्वाष्ट्री के अन्तर्गत अपने तीव्र तेज के द्वारा अपने[४२] वीर्य का निर्वापन किया जो प्राण और अपान वायु के रूप में द्विधा विभक्त होकर संज्ञा के नासापुटों से बाहर गिरा वही पूर्व वरदान के कारण मूर्तिमान होकर ही

---

३८. व० पु० १६.१-३.
३९. वही १६. ४-६.
४० वही १६.७
४१. वही १६.७-१६.
४२. वही १६. १७

दो देवताओं के रूप में उपस्थित हुआ । अश्वा रूपा त्वाष्ट्री से निष्पन्न होने के कारण उनका नाम अश्विनौ पड़ा । प्रजापति की सन्तान होने के कारण और सूर्य एवं त्वाष्ट्री की शक्ति से सम्पन्न होने से उनको भी महत् शक्ति प्राप्त हुयी[४३] । प्रजापति के द्वारा वरदान प्राप्त कर उन्होंने सोमपान की अर्हता और भिषगत्व प्राप्त किया[४४] ।

भागवत-पुराण में अश्विनौ --

पुराणों में भागवत पुराण की महत्ता सर्वोपरि है । अनेक पौराणिक विषयों को भागवत पुराण में अनेक दृष्टियों से समीक्षित किया गया है । यहाँ अश्विनौ के जन्म की चर्चा ही नहीं है वरन् साथ-साथ उनसे सम्बन्धित च्यवन आदि की आख्यायिकाओं को भी कथा विस्तार में स्थान दिया गया है जहाँ तक उनके जन्म की कथा का प्रश्न है वह अन्य पुराणों की भांति विवस्वान् की दो पत्नियां, संज्ञा और छाया से सम्बन्धित, जिनमें संज्ञा का वडवा रूप धारण करना और अश्विनौ का उत्पन्न होना बताया गया है । यहाँ अन्तर केवल इतना है कि वडवा रूपी संज्ञा के मुख में वीर्योत्सेक की बात नहीं कही गयी । वरन् संक्षिप्त रूप में ही अश्विनौ के जन्म का निर्देश किया गया है[४५] ।

----

४३. वही १६. १८-२०.

४४. वही १६. ३३-३४.

४५. विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ।
संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ।।
तृतीयां वडवामेके, तासां संज्ञासुतास्त्रय: ।
यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुता शृणु ।।
सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ।
शनैश्चरस्तृतीयोऽभूद अश्विनौ वडवात्मजौ ।।
अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनु: ।। -भाग०पु० ८.१३-८-११.

अश्विनों का घनिष्ठ सम्बन्ध यहाँ विष्णु के साथ वर्णित किया गया है और उनके स्थूल रूप के ध्यान में नासापुटों के माध्यम से नासत्य और दस्र के ध्यान की बात कही गयी है - 'नासत्य दस्रौ परमस्य ' इस ध्यान निरूपण के अन्तर्गत आकाश और पृथिवी तथा रात्रि और दिन और अश्विनों के भेद का प्रतिपादन भी किया गया है । आकाश और धरती को विष्णु के दो नेत्र, रात और दिन को उनके पक्ष के रूप में वर्णित किया गया है । जबकि अन्यत्र अश्विनों को द्यावापृथिवी और रात्रि और दिन के साथ अन्वित किया जाता रहा है । सूर्य भगवान् विष्णु के नेत्र स्वरूप हैं और उसके उद्गमन में अश्विनों को कारण माना जाता है ।

अश्विनों का महत्त्व यौगिक क्रियाओं के साथ या योग साधना में भी प्रदर्शित किया गया है । नासिका के द्वारा प्राण और अपान वायु का संचरण और प्राणायाम के माध्यम से उनका सन्नियमन कर व्यक्ति दीर्घायु को प्राप्त होता है । क्योंकि प्राण-वायु के निग्रह से मन का निग्रह होता है और मन के निग्रह से चक्षु का निग्रह होता है । यह चक्षु सूर्य रूप में है और अश्विनौ सूर्य के प्रतीक हैं इसलिये जो प्राण-अपान रूपी अश्विनौ को अपने वश में कर लेता है वह मानो तेजस् स्वरूप सूर्य को प्राप्त कर लेता है । इसीलिये कहा गया है कि आयु की कामना वाला व्यक्ति अश्विनौ का यजन करें और पुष्टि की कामना वाला व्यक्ति इला का यजन करें तथा प्रतिष्ठा की कामना वाला पुरुष सृष्टि के माता-पिता प्रतिष्ठा स्वरूप रोदसी या द्यावापृथिवी का यजन करें ।

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ।[46]
प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोक मातरा ॥

---

४६. भाग० पु० २. ३. ५.

ऋग्वेद में हवि प्रदान करने वाले जिस ऋषि च्यवन की आख्यायिका अश्विनों के साथ जुड़ी हुयी है उसका विस्तार भाग० पृ० में प्राप्त होता है । भिषक् नियुक्त हुये अश्विनों को देवताओं ने सोमपान से बहिष्कृत कर दिया था जिन्हें च्यवन ने शर्याति के यज्ञ में सोमपान के योग्य बनाया । भागवत् पुराण के नवम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में च्यवन और सुकन्या आख्यान प्राप्त होता है ।

शर्याति नाम का एक ब्रह्मिष्ठ राजा हुआ जो अंगिरसों के यज्ञ में सम्मिलित होता था । उसकी सुकन्या नाम की बहुत सुन्दर कन्या थी जिसके साथ एक दिन वह वन में च्यवन के आश्रम में गया । वहाँ पर सुकन्या ने अपनी सखियों के साथ इधर-उधर घूमते हुये एक वल्मीक के रन्ध्र (बिल) में दो खद्योतों के समान ज्योति को देखा । भाग्य से प्रेरित उस सुकन्या ने मुग्ध भाव से उस ज्योति को कंटकों से बींध दिया । जिससे उससे रक्तस्राव होने लगा । च्यवन क्रुद्ध होकर राजा के सैनिकों का मलमूत्र बन्द कर देते हैं । सेना के उन पुरुषों को पीड़ित देखकर राजा शर्याति को विस्मय हुआ और उन्होंने उन लोगों से पूछा कि 'क्या तुम लोगों ने महर्षि च्यवन के प्रति कोई अभद्र व्यवहार करने की चेष्टा तो नहीं की अथवा हममें से किसी के द्वारा राजा के आश्रम को दूषित तो नहीं किया गया ।'[47] सुकन्या ने अपने पिता से भयभीत होकर कहा, 'न जानती हुयी मेरे द्वारा कंटक से दो ज्योतियों का भेदन किया

---

४७. अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ।
व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ।।
- वही ९. ३. ६.

गया ।[४८] अपनी कन्या की इस बात को सुनकर शर्याति ने तुरन्त ही वल्मीक के अन्तर्गत प्रविष्ट मुनि को धीरे-धीरे प्रसन्न किया । मुनि के अभिप्राय को समझ कर उन्हें उसने अपनी कन्या प्रदान कर दी[४९] । और पापों से मुक्त होकर मुनि को आमन्त्रित कर उन्हीं के साथ नगर में प्रविष्ट हुआ । सुकन्या पति रूप में अत्यन्त कोप वाले च्यवन को प्राप्त कर प्रमाद रहित होकर उनकी सेवा करते हुये चित्त को जानती हुयी उसे प्रसन्न किया । इस प्रकार कुछ समय बीत जाने पर उनके आश्रम में नासत्यौ आये, उनकी पूजा करके मुनि ने उनसे कहा --`ईश्वर रूप आप दोनों हमको वय प्रदान करें[५०] ।

यज्ञ में असोमपायी आप दोनों के लिये भी मैं सोमग्रह का ग्रहण करूंगा, आप दोनों मेरे लिए प्रमदाओं के द्वारा अभीप्सित वय और रूप को प्रदान करें ।[५१] वैद्यों में श्रेष्ठ उन दोनों ने विप्र का अभिनन्दन करके कहा कि `ऐसा ही हो `, उन्होंने मुनि से कहा, `आप सिद्ध लोगों द्वारा निर्मित इस झील में निमज्जित हो (डूब) जायें --

`निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते[५२]

यह कह कर जरा ग्रस्त मुनि को अश्विनौ द्वारा झील में प्रविष्ट करा दिया गया और उसके पश्चात् वनिताओं को प्रिय लगने वाले, कमल की माला पहने हुये,कर्ण-कुण्डल धारण किये,अत्यन्त सुन्दर रूप वाले,

---

४८. सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित कृतं मया ।
द्वे ज्योतिषी आजनन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ।। - वही ९.३.७.

४९. वही ९. ३. ९.
५०. वही ९. ३. ११.
५१. वही ९. ३. १२.
५२. वही ९.३.१३.

सुन्दर परिधान वाले, अनिन्दनीय समान आकृति वाले तीन पुरुष उस मनोल से ऊपर उठे।[५३] अत्यन्त रूपवान सूर्य के समान तेजस्वी उनको देखकर वह साध्वी सुकन्या अपने पति को न पहचानती हुयी अश्विनौ की शरण में गयी।[५४] उसके पातिव्रत से प्रसन्न होकर के अश्विनौ ने उसके पति को दिखला दिया। ऋषि को आमन्त्रित करके वे दोनों विमान से स्वर्ग चले गये।[५५] इसी बीच शर्याति ने यज्ञ करने की कामना की और वे च्यवन के आश्रम में गये। वहां पर अपनी कन्या के पार्श्व भाग में सूर्य के समान वर्चस्वी पुरुष को देखा। राजा ने प्रणाम किये जाने के पश्चात् अप्रसन्न होते हुये और आशीर्वाद न देते हुए ऐसे कहा, 'लोक द्वारा नमस्कार किये जाने वाले पति को क्या तुमने छोड़ दिया है जो तुम जराग्रस्त पति को छोड़कर मार्ग पर चलने वाले जार का सेवन कर रही हो। अच्छे कुल में उत्पन्न तुम्हारी मति कुल को दूषित करने वाली क्यों हो गयी है, जिससे कि तुम पिता और पति दोनों को अधोगति में ले जाते हुये जार का भरण-

---

५३. पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियः।
पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥
- वही ६.३.१५.

५४. तान् निरीक्ष्य वरारोहा स्वरूपान् सूर्यवर्चसः।
अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥
- वही ६.३.१६.

५५. वही ६.३.१७.

पोषण कर रही हो[५६]। इस प्रकार से कहते हुये पिता से कुछ पवित्र हंसी हंसती हुई वह बोली, `हे तात। ये तुम्हारे जामातृ भृगु नन्दन (च्यवन) ही हैं ; और इस प्रकार पिता से उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह डाला। अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न होकर पिता ने अपनी कन्या को गले लगाया। इस प्रकार असोमपायी अश्विनौ को च्यवन ने अपने तेज के द्वारा सोम से यजन करते हुए उन्हें सोम के वीर गृह को शर्याति के यज्ञ में प्रदान किया[५७]। इसके पश्चात् इस बात को जानकर अत्यन्त क्रोधित हुये इन्द्र ने ऋषि को मारने के लिए वज्र का ग्रहण किया। भार्गव च्यवन ने इन्द्र के वज्र से युक्त हाथ को स्तम्भित कर दिया। इसके पूर्व इस बात को सभी जानते थे कि अश्विनौ सोमपान से वर्जित थे। क्योंकि भिषक् होने के कारण वे सोम-की आहुति से बहिष्कृत थे[५८]।

----

५६. राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम्।
आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव।
चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः।
यत् त्वं जराग्रस्तमसत्यसम्मतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम्॥
कथं मतिस्ते ऽवगतान्यथा सतां कुल प्रसूते कुल दूषणं त्विदम्।
बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च न्यस्यधस्तमः॥

- वही ९. ३. १९-२१.

५७. वही ९. ३. २२-२४

५८. वही ९. ३. २५-२६.

इस प्रकार भागवत पुराण ऋग्वेदकालीन इस आख्यायिका में किंचित परिवर्तन के साथ अश्विनौ सम्बन्धी आख्यान के सातत्य को परम्परागत रूप में आगे बढ़ा रहा है । इस आख्यायिका में थोड़ी सी अपूर्णता दृष्टिगत होती है । जहाँ अन्य ग्रन्थों में इन्द्र के वज्र का स्तम्भन और उसके पश्चात् उनके द्वारा अश्विनौ के यज्ञ भाग की स्वीकृति आदि भी कथित है वहीं यह पुराण वज्र स्तम्भन पर ही कथा को समाप्त कर देता है ।

—

उपसंहार

अश्विनौ सम्बन्धी प्रस्तुत अनुसन्धान के अन्तर्गत जिन विशिष्ट पदार्थों को ग्रहण कर अश्विनौ के देवशास्त्रीय स्वरूप का विवेचन किया गया है उनसे हम कुछ विशिष्ट निष्कर्षों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं । समस्त वैदिक वाङ्मय में देवता युग्मों के साथ हमने अश्विनौ सम्बन्धी जो भी विचार व्यक्त किये हैं तथा मिथुनीकरण की जिस प्रक्रिया को ग्रहण किया है,उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि समस्त देवता युग्मों में अश्विनौ का अपना एक विशिष्ट रूप है जो युग्म के रूप में होते हुये भी व्यष्टि बन कर ही रह जाते हैं । उनकी यही व्यष्टि समस्त वैदिक साहित्य में उनके स्वरूप विवेचन का आधार बनती है । यद्यपि नासत्य और दस्र ये दो नाम अवान्तरकालीन साहित्य में उनके दो पृथक् रूपों का दिग्दर्शन कराते हैं, किन्तु समस्त वैदिक साहित्य में कहीं भी हम उनको अलग-अलग रखकर उनके स्वरूप का विवेचन नहीं कर पाते । उनकी उत्पत्ति के समस्त रूपों का आकलन भी उन्हें पृथक् रूप में उपस्थित नहीं कर पाता । सूर्य और चन्द्रमा, रात्रि और दिन, दोनों सन्ध्यायें आदि अनेक युग्मों के साथ उनकी उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा के विकास का आकलन किया गया है । किन्तु कहीं भी हम कोई निश्चित अवधारणा बनाने में समर्थ नहीं हो पाते जिससे कि हम यह कह सकें कि अश्विनौ यही है अथवा इसी विशिष्ट वस्तु के साथ उनका तादात्म्य है ।

वैदिक देवताओं से सम्बन्धित जो वर्गीकरण है उसके अन्तर्गत भी हमने अश्विनौ-सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं । प्राय: अनेक देवताओं के साथ उनका सम्बन्ध उपस्थित किया गया है एवं पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों लोकों में व्याप्त अनन्त शक्तियों के साथ उनका सह-अस्तित्व एवं उनकी सह-भागिता वर्णित की गयी है । किन्तु कहीं भी उनके एक निश्चित स्थान की परिकल्पना करना कठिन प्रतीत होता है । अपने मानवीय

रूप को धारण करते हुये जहाँ वे दोनों मानवीय-जीवन के सुख-दु:खों से जुड़े हुये हैं और इस प्रकार धरती या पृथिवी- स्थानीय अपने स्वरूप का निदर्शन करते हैं, वहीं द्युलोक की उषस, सवितृ, अन्तरिक्ष के इन्द्र आदि देवताओं के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होकर, तीनों लोकों में अपनी व्याप्ति की सूचना भी देते हैं। इस प्रकार यदि हम समग्र रूप में उनको देखें तो ऐसा प्रतीत होगा कि वे सर्वत्र सभी लोकों में व्याप्त है। इस प्रकार वे अपने नाम की सार्थकता बनाते हैं। जिसके अन्तर्गत `अशु(व्याप्तौ` धातु सन्निहित है। फिर भी हमने स्थान की दृष्टि से उन्हें आकाशीय देवता के रूप में स्वीकार किया है।

वैदिक साहित्य और उत्तर वैदिक साहित्य में अश्विनौ सम्बन्धी जो सन्दर्भ है उन्हीं सन्दर्भों के आधार पर हमने अश्विनौ के स्वरूप का आकलन किया है। इन समस्त सन्दर्भों में सर्वप्रमुख स्थान ऋग्वेदीय सन्दर्भों का है। ऋग्वेद में अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भ नवम् मण्डल को छोड़कर, प्राय: सभी मण्डलों में विकीर्ण हैं, इनमें भी सर्वाधिक सन्दर्भ प्रथम मण्डल में है और उसके बाद अष्टम मण्डल में है। प्रथम मण्डल की २१३ ऋचाओं में और अष्टम मण्डल की १६६ ऋचाओं में अश्विनौ की चर्चा है। अन्य मण्डलों में भी कुल मिलाकर लगभग २२४ ऋचायें हैं, इस प्रकार अश्विनौ ऋग्वेद के प्रमुख देवताओं में से है। फिर भी समस्त वैदिक साहित्य में उन्हें वह महत्व नहीं प्राप्त हो सका जो अग्नि,इन्द्र, वरुण, सूर्य आदि देवताओं को मिला। इसका कारण सम्भवत: उनका अत्यधिक मानवीय-करण है। देवताओं के वैद्य रूप में प्रतिष्ठित होने के कारण उन्हें यज्ञ में वह प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी जो उन्हें होनी चाहिये थी।

ऋग्वेद में अश्विनौ का स्वरूप अन्य विभिन्न देवताओं के स्वरूप से कुछ पृथक् रूप में विकसित हुआ है। जहाँ अन्य देवता अपनी व्यष्टि को

लिये हुये स्वतन्त्र रूप में देवशास्त्रीय परिकल्पना को विकसित करते हुये प्रतीत होते हैं वहीं अश्विनौ का देवशास्त्रीय स्वरूप एक व्यष्टि रूप युग्म में ही विकसित होकर हमारे सामने उपस्थित होता है। ऋग्वेद में अश्विनौ का सम्बन्ध अनेक देवताओं से है किन्तु उषाओं के साथ उनका विशिष्ट सम्बन्ध है जिनके साथ वे 'प्रातर्यावाणा' रूप में सोमपान के लिये उपस्थित होते हैं। प्रथमत: वह सभी देवताओं के साथ सोमपान करते हैं इसलिए वह उनके सहगामी हैं। दूसरे स्थान पर वे देवताओं के वैद्य हैं और अनेक ओषधियों के साथ उनकी सहायता करते हैं। तीसरे स्थान पर उनका सम्बन्ध सभी देवताओं के साहचर्य के रूप में है जो उनकी व्यापकता की ओर इंगित करता है।

ऋग्वेद में अश्विनौ के कार्यों के साथ भिषक् रूप में अनेक लोगों की सहायता आदि का वर्णन शल्य चिकित्सा आदि के रूप में किया गया है जिनके साथ अनेक आख्यायिकायें जुड़ी हुयी हैं। इन आख्यानों को हम तीन रूपों में विभाजित कर सकते हैं -- १- नैरुज्य प्रदान करने से सम्बन्धित आख्यान, २- शल्यतन्त्र सम्बन्धित आख्यान, ३- यौवन प्रदान करने से सम्बन्धित आख्यान। इन्ही कार्यों से सम्बन्धित आख्यानों का विकास सम्पूर्ण वैदिक और अवान्तरकालीन वैदिक साहित्य में हुआ है।

ऋग्वेद से भिन्न अन्य संहिताओं में अश्विनौ सम्बन्धी जो सन्दर्भ प्राप्त हैं उन पर ऋग्वेद की परम्परा का प्रभाव पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है। यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद में जहाँ-जहाँ भी अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, उन सब में एक ओर तो ऋग्वेद में वर्णित अश्विनौ के स्वरूप का निरन्तर आवर्तन है और दूसरी ओर विभिन्न आख्यायिकाओं के सांकेतिक रूप प्राप्त होते हैं। किन्तु इसके साथ ही यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि इन संहिताओं में अश्विनौ का महत्व यज्ञीय परम्परा की दृष्टि से अधिक संवर्धित और समुज्ज्वल है। अश्विनौ की सर्वव्यापकता यहाँ अधिक वर्धित हुयी है और यज्ञ के अध्वर्यु रूप में उनकी प्रतिष्ठा अधिक विकसित प्रतीत होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्विनौ सम्बन्धी जो आख्यान है उन पर संहिताओं का प्रभाव तो है ही, किन्तु आख्यायिकाओं की दृष्टि से वे अधिक मानवीय बनते चले गये हैं। यहाँ बहुत सी ऐसी नवीन बातें भी उनके सम्बन्ध में प्राप्त हो जाती हैं जो संहिताओं में अप्राप्य हैं। यज्ञों में उन्हें विशिष्ट स्थान देकर उन्हें अन्य देवताओं के समकक्ष लाने का प्रयास किया गया है।

आरण्यकों एवं उपनिषदों में अश्विनौ सम्बन्धी सन्दर्भों से दार्शनिकता अधिक झलकती है और कर्मकाण्डीय परम्परा कम। ऐतरेय, शांखायन, तैत्तिरीय आदि आरण्यकों और उपनिषदों में अश्विनौ विराट् विश्व के रक्षक होकर समस्त व्योम को व्याप्त करते हैं। आकाश और धरती के ऊपर संचरण करते हुये इसकी वे रक्षा करते हैं। मधुविद्या या प्राण विद्या के प्रणेता के रूप में अश्विनौ को जितनी महत्ता यहाँ आकर प्राप्त हुयी है उतनी इसके पहले कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

वेदाङ्गों में अश्विनौ को अनेक यज्ञीय परम्पराओं के साथ जोड़कर उनके महत्त्व की निरन्तरता को अव्याहत गति से बनाये रखा गया है। यहाँ उनके स्वरूप निरूपण की बात कम और देवताओं के साहचर्य की बात अधिक दृष्टिगत होती है।

रामायण, महाभारत और पुराणों में पूर्ववर्ती समस्त परम्पराओं का अनुगमन किया गया है। किन्तु इसके साथ ही अनेक आख्यायिकाओं एवं कथाओं के माध्यम से अश्विनौ के जीवन के विभिन्न पक्षों को उभारते हुये समस्त देवताओं के मध्य उनकी प्रतिष्ठा की गयी है। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर पुराणकाल तक अश्विनौ का महत्व देवताओं के मध्य कुछ उच्चावच्च के साथ निरन्तर प्रतिष्ठित प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(आधार ग्रन्थ सूची)

संहितायें -

1. ऋग्वेद संहिता - प्रथम भाग (सायण भाष्य सहित)
   वैदिक संशोधन मण्डल, पूना १९३६
   द्वितीय भाग ,,
   तृतीय भाग १९४१
   चतुर्थ भाग १९४६

2. ऋग्वेद संहिता - पंचम भाग (पद-सूची), वै० सं० मं०, पूना

3. ,, ,, - ४ भाग - वेंकट - माधव की ऋगर्थ दीपिका सहित - डा० ल० स्वरूप द्वारा संपादक मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर १९३९-५५

4. ऋग्वेद भाष्य - उद्गीथाचार्य, विश्वबन्धु शास्त्री द्वारा संपा, दयानन्द संस्कृत सिरीज़ १५, लाहौर १९३५

5. ऋग्वेद भाष्य - स्कन्द स्वामी सी० कु० राजा द्वारा संपा०, मद्रास यूनि० संस्कृत सिरीज़ ८, १९३५

6. ऋग्वेद-व्याख्या - माधवकृत - सी० कु० राजा द्वारा सम्पादित अड्यर पुस्तकालय, मद्रास १६३६

7. ऋक् सूक्त वैजयन्ती - प्रा० ह० दा० वेलणकर, वैदिक संशोधन मण्डल पूना, १६६५

8. ऋग्वेद भाष्य - दयानन्द सरस्वती, अजमेर

9. शुक्ल यजुर्वेद - उत्कट महीधर भाष्य सहित

10. वाजसनेयी संहिता - वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री द्वारा संपादित निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १६१२

11 काण्व संहिता - सातवलेकर द्वारा संपादित, औंध १६४१

12. कृष्णयजुर्वेद - तै० सं भट्ट भास्कर मिश्र - भाष्य सहित

13. तै० सं० - स्वाध्याय मण्डल पारडी, १६५७ आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज़

14. मैत्रायणी संहिता - सातवलेकर एस० डी० स्वाध्याय मण्डल, औंध, १६४२

15. काठक संहिता - औन्ध, १६४३

16. कपिष्ठल कठ संहिता - डा० रघुवीर द्वारा सम्पादित, दिल्ली, १६६८

17. सामवेद - देवीचन्द मालवा स्ट्रीट, नई दिल्ली १६६३

18. अथर्ववेद - गवर्नमेन्ट सेंट्रल बुक डिपो, बाम्बे १८६५-६८

19. अथर्ववेद - (शौनकीय) विश्व० संपा० - होशियारपुर १६६०

ब्राह्मण ग्रन्थ-

20. ऐतरेय ब्राह्मण - आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, १६३०

21. शांखायन ब्राह्मण - गुलाबराय बजेशंकर पूना, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली,१६११

22. शतपथ ब्राह्मण - (माध्यन्दिन) गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास कल्याण बम्बई १६४०

23. तैत्तिरीय ब्राह्मण - सम्पादक, महादेव शास्त्री तथा श्री निवासाचार्य मैसूर, १६०८-१६२१

24. ताण्ड्य महाब्राह्मण - कलकत्ता १८७० (भाग १)
१८७४ (भाग २)

25. कौषीतकी ब्राह्मण - सम्पादक बी० लिण्डनर, जेना १८८७
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी १९६

26. जैमिनीय ब्राह्मण - तिरुपति १९६७

27. ,, ,, - सं० रघुवीर तथा लोकेश चन्द्र नागपुर १९५४

28. गोपथ ब्राह्मण - लाइडेन १९१९

आरण्यक ग्रन्थ -

29. ऐतरेय आरण्यक - आनन्दाश्रम सीरीज़ १९२२

30. शांखायन आरण्यक - ,,

31 तैत्तिरीय आरण्यक - आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज़
सायण भाष्य सहित भाग १ - १८९७
भाग २ - १९६९

उपनिषद ग्रन्थ -

32. बृहदारण्यक उपनिषद मोती लाल बनारसी दास

33. ऐतरेय उपनिषद ,,

34. तैत्तिरीय उपनिषद मोती लाल बनारसी दास

35. जैमिनीय उपनिषद ,,

36. वृहज्जावालोपनिषद ,,

37. देव्युपनिषद ,,

38. सुबालोपनिषद ,,

वेदाङ्ग -

39. कात्यायन श्रौत सूत्र - चौखम्बा वाराणसी, १९४०

40. वाराह श्रौत सूत्र - डा० डब्ल्यू कलाद द्वारा सम्पा०,
मेहरचन्द, दिल्ली १९७१

41. शांखायन श्रौत सूत्र - हिलेब्रान्ट द्वारा सम्पादित
बेसलाउ १८८६

42. वैखानस श्रौत सूत्र - एशियाटिक सोसायटी
कलाद द्वारा १९२७

43. आपस्तम्ब श्रौत सूत्र - डा० गर्बे द्वारा सम्पादित, कलकत्ता
भाग १ - १८८२
भाग २ - १८८५

14. आश्वलायन श्रौत सूत्र - आनन्दाश्रम १६१७

45. कौशिक सूत्र - एम० ब्लूम फील्ड द्वारा सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १६७२

46. आश्वलायन गृह्य सूत्र - चौखम्बा सं० सी०, १६७० सरस्वती यन्त्रालय, कलकत्ता १८६३

47. वराह गृह्य सूत्र - डा० रघुवीर द्वारा सम्पा०, लाहौर १६३२

48. कौषीतकी गृह्य सूत्र - चौखम्बा, वाराणसी १४७०

49. मानव गृह्य सूत्र - बड़ौदा १६२६

50. निरुक्तम् - दुर्गाचार्य भाष्य सहित, श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई, सं० १६६६

महाकाव्य, पुराण -

51 रामायण (वाल्मीकि) निर्णय सागर 1921

52. महाभारत सातवलेकर

53. विष्णुपुराण चौ. सं. सी.

54. विष्णुधर्मोत्तरपुराण — मोती लाल बनारसी दास

55. मत्स्यपुराण — ”

56. वायुपुराण - आनन्द आश्रम पूना १६०५

57. वराहपुराण — मोती लाल बनारसी दास

58. ब्रह्मपुराण — ”

59. श्रीमदभागवतपुराण — बम्बई 1966

60. श्रीमददेवीभागवतपुराण — बनारस

अन्य ग्रन्थ -

61. वृहद्देवता (शौनक) — सं० ए० ए० मैकडानल, पुनर्मुद्रित दिल्ली, मोती० लाल बना० द्वितीय संस्करण, भाग १-२, १६६५

62. नीतिमंजरी - श्रीधाद्विवेद स्वोपज्ञ भाष्य सहित सं० सीताराम जयराम जोशी, बनारस, काल-भैरव हरिहर मण्डल, १६३३

63. पाणिनी अष्टाध्यायी

कोश ग्रन्थ -

64. वैदिक पदानुक्रम कोश(संहिता) होशियारपुर

65. ,, (ब्राह्मण आरण्यक) ,,

66. ,, (उपनिषद) ,,

67. ,, (वेदांग) ,,

68. वैदिक कोश - हंसराज डी० ए० वी० कालेज, लौहोर १६२६

69. वैदिक शब्द कोश - सूर्यकान्त, दिल्ली १६२४

70. उपनिषद वाक्य कोश - जी० ए० जेकब

71. रामायण कोश - सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट बुक डिपो, बम्बई १८६१

72. पौराणिक कोश - राणाप्रसाद

73. हिन्दू धर्म कोश - सम्पादक डा० राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १६७८

74. पुराण सन्दर्भ कोश - यशपाल टन्डन

75. वाचस्पत्यम् - सं० को - श्री तारानाथ वाचस्पति, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १६६२

76. पौराणिक इन साइक्लोपीडिया - मोतीलाल बनारसीदास

77. ए वैदिक कान्कोर्डेन्स - एम० ब्लूम फील्ड, हरवार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस- कैम्ब्रिज

78. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी - मॉनियर-विलियम्स

सहायक ग्रन्थ सूची

1. Agrawal, R.C., As'vins in Sculptures, J I H - 4 -I.

2. Bergaine, A., Histoire de la liturgie Vedique 1889
   Religion de Vedique, Paris 1881.

3. Bhattacharya, S. The Indian Theogony Cambridge 1970

4. Bloomfield, M., Rigveda Repetitions. Harvard University Press 1916

5. Chapekar, N.C. Nasatya, A B O R I, 45, Poona 1964

6. Chattopadhyaya, K.C., Vedic religion. 1975

7. Dandekar, R.N. Twenty five years of Vedic studies,
   in the progress of Indic studies, A B O R I,
   Vedic studies Retrospect and prospect,
   P A I O C (14th session) Poona 1948
   A decade of Vedic studies in India and abroad
   A B O R I 1975.

8. Dumont, P. E., L' As'vamedha, Louvain 1927.

9. Dume'zil, Comparative Mythology, Les dieux de
   Indo Europeens, Paris 1952.

10. Eliade Mirchea, Patterns in Comparative Religion,
    London- New York 1958.
    The two and the one, London 1965.

11. Griswold, H.D., The Religion of the Rgveda, Oxford 1923.

12. Gonda, Jan, Aspects of Early Visnuism, Utrecht, 1954
Epitnets in the Rgveda Amsterdam 1959
Four studies in the language of the Vedic Poets
The Hague 1959 change and continuity in Indian religion, The Hague 1965.
Gava yajnas Amster 1965
Stylistic Repetitions in the Veda, Hagye 1969.
The Vedic God Mitra, Leiden 1972
Loka in the Veda, The Hague 1972
The Dual Deities, The Hague 1974.

13. Hillebrandt, A., Vedische Mythologie I Berlin 1927
II, Breslau 1929.

14. Hopkins, E.W., Epic Mythology, strassburg 1915
Asvins J A O S 15.

15. Jacobi, H., Antiquity of Vedic culture J R A S 1909.

16. Jhala, G.C., Asvins, J B U- I, 1933.

17. Jog, K.P., The Asvins in the Rigveda, J B U 1964.

18. Kaegie, Adolf, Der Rigveda, leipzig 1881.

19. Keith, A. B., The Religion and Philosophy of the Veda, Cambridge, Massachuset 1925.

20. Lommel, Nasatya, Festschrift fuir W. Schuebring, Hamburg 1951.

21. Lueders, H. Varuna (I-II) Goetingeni 1951-59.

22. Macdonell, A.A., Vedic Mythology, strassburg 1879.

23. Machek, V. Origin of the Asvins, Archiv orientalani 15.

24. Mueller, Max, Lectures on the Origin and growth of the Religion London 1978.

25. Myhantheus, L., Die Asvins, Muenchen 1876.

26. Oldenberg, H., Veda Forschung, stuttgart 1965.
Die Religion des Veda, Berlin 1923

27. Prabhu, R.K. Asvins, J O I B No 15 1949.

28. Ren u, L, Elude Vedique et Paninine-66 Parts- panis, 1960.
Les Maitres de la Philologic Vedique, Paris 1928
Religions of Ancient India London 1953.

29. Renelm Ch, L' evolution dun Myth Asvins et dioscures, Paris 1896.

30. Schroeder. L.Von, Indians Literature and Culture in historischer ent urklung leipzig 1887.

31. Thieme, P., Der Fremdling in Rigveda, Leipzig 1938.
Mitra and Aryaman, New Haven 1957.

32x

32. Weber. A., Indishe studien 5 pts,

33. Wilkins. W.J. Hindu Mythology Vedic and Puranic
Indological Book House, Varanasi, 1972.

34. Zaehner, R.C. Dawn and Twilight of Zoroastrians, London 1961.

३५- वैदिक साहित्य और संस्कृति - बलदेव उपाध्याय, द्वितीय संस्करण, शारदा मन्दिर काशी, १९५८ ।

३६- वैदिक देवता-उद्भव और विकास - डा० गयाचरण त्रिपाठी
भाग १, १९८१
भाग २, १९८३

३७- वेदेऽश्विनौ - डा० तु० कु० कृष्णस्वामि (अय्यर) शर्मा, वा० सं० वि० १९७५

३८- ऋग्वेद वयनिका - डॉ० सिद्धनाथ शुक्ल भारत मनीषा, वाराणसी १९७४

JOURNALS

1. All India Oriental Conference, Poona.
2. Annals of the Bhandarker Oriental Research Institute, Poona, 1964, Vol XIV.
3. Indian Historical Quarterly, Calcutta, Vol XXVI Dec. 1950, PP 320-324.
4. Journal of the American Oriental Society.
5. Journal of the Bombay University.
6. Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society.
7. The Mythic society's Quartely Journal.
8. Journal of Oriental Research Institute Baroda.
9. Journal of Oriental Research Madras.
10. Journal of Indian History, Kerala 41 (1) April 63
11. Poona Orientalist.
12. Proceedings and Transactions of A.I. O.C.
13. Select papers of All India Oriental confrence.
14. Siddheswar Verma Commemoration Volume (1950)
15. Woolner Commemoration Volume Lahore (1940).